

ACINTSHEKTA

1077

G.K.R.

079 499

GOVERNMENT

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024



079499

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रांते जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

फरवरी १९७७

वर्ष ७, अंक ७, पूर्णांक ७९

सूची

माताजीके मंत्र वचन	१
भगवती मां	२६
सोसायटी समाचार	३०

माताजीकी शताब्दीका वर्ष शुरू हो गया है। आंतरिक प्रयास तो आप करेंगे ही साथ ही, जो सुनना चाहते हैं उन्हें माताजीका संदेश सुनाइये। 'पुरोधा' और 'अग्निशिखा' आपकी सहायता करनेके लिये तैयार हैं।

हमारे कुछ प्रकाशन

'पुरोधा'	वार्षिक ८.००,	आजीवन १५०.००
'अग्निशिखा'	वार्षिक ६.००,	आजीवन १००.००
श्रीमातृवाणी (१५ खंडों में)		३००.००
माताजी — एक झलक		४.००
हमारी मां		१.२५
बच्चोंके श्रीअरविंद		०.७५
श्रीअरविंद-जीवन और दर्शन		४.००
श्रीअरविंद और उनका आश्रम		१.५०
नर और नारी		१.५०
ऊसकी राहपर		१.५०
आजकी समस्या (वन्दे मातरम्के लेख)		१.५०
प्रेमकी विजय, दिलका अईना (प्रत्येक)		१.५०

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अभियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

माताजीके मंत्र-वचन

२१८. हर क्षण सृष्टि अपनी समग्रतामें और अपने प्रत्येक भागमें बनती रहती है।

४-११-५४

२१९. अगर हमारे अंदर सचमुच जीती-जागती श्रद्धा और भगवान्की सर्वसमर्थ शक्तिके लिये निरपेक्ष निश्चिति हो तो उनकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट हो सकती है कि उसके द्वारा समस्त धरती रूपांतरित हो जाय।

५-११-५४

२२०. सत्तामें सब कुछ मौन है लेकिन नीरवताके वक्षमें वह दीप जलता है जिसे कभी बुझाया नहीं जा सकता। वह भगवान्को जानने और समग्र रूपसे उन्हींमें रहनेके लिये एक तीव्र अभीप्साकी आग है।

६-११-५४

२२१. अभीप्साकी ज्वाला इतनी सीधी और इतनी तीव्र होनी चाहिये कि कोई बाधा उसे विसर्जित न कर सके।

७-११-५४

२२२. हमें एकाग्रता और नीरवतामें समुचित कार्यके लिये शक्ति जुटानी चाहिये।

८-११-५४

★

२२३. हमें अपने-आपको एक शांत निश्चय और अकम्प निश्चिति-
में एकत्र करना चाहिये ।

९-११-५४

२२४. हम भगवान्की ज्योतिकी प्रचुरताके लिये उनका आवाहन
करते हैं, वे हमारे अंदर उन्हें अभिव्यक्त करनेकी शक्ति
जगायें ।

१०-११-५४

२२५. प्रशांत और निष्कम्प चेतना जगत्की सीमाओंपर नित्यताकी
स्फिक्स् की तरह नजर रखती है । फिर भी वह किसी-
किसीको अपना रहस्य बता देती है ।

११-११-५४

२२६. इसलिये हमें यह निश्चिति प्राप्त है कि जो करना होगा
वह अवश्य किया जायगा और हमारी वर्तमान व्यक्तिगत
सत्ताको वास्तवमें इस महान् विजयमें, इस नूतन अभि-
व्यक्तिमें सहयोग देनेके लिये निमंत्रण मिला है ।

१२-११-५४

२२७. भगवान्से कोई यह नहीं कह सकता, "मैंने तुझे जान लिया
है," फिर भी सब उसे अपने अंदर लिये रहते हैं और
अपनी अंतरात्माकी नीरवतामें भगवान्की आवाजकी
प्रतिध्वनि सुन सकते हैं ।

१३-११-५४

प्राचीन मिस्रकी मान्यताके अनुसार एक प्राणी जिसके
रहस्यको जानना प्रायः असंभव है ।



२२८. इस भ्रांतिके जगत्को, इस आनंदरहित दुःस्वप्नको भगवान्ने अपनी परम सद्बस्तु प्रदान की है और जड़ पदार्थका प्रत्येक कण उनकी नित्यताका कुछ अंश लिये रहता है।

१४-११-५४

२२९. एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है वह लक्ष्य जिसे प्राप्त करना है। मार्गका कोई महत्त्व नहीं और प्रायः उसे पहलेसे न जानना ज्यादा अच्छा होता है।

१५-११-५४

२३०. सभी बाधाएं व्यक्तिके अपने अंदर होती हैं, सभी कठिनाइयां व्यक्तिके अपने ही अंदर होती हैं और व्यक्तिके अपने ही अंदर समस्त अंधकार और समस्त अज्ञान होते हैं।

१६-११-५४

२३१. बालकके सरल विश्वासमें बड़ी शक्ति होती है।

१७-११-५४

२३२. भगवान्के शब्द आराम पहुंचाते और असीसते हैं, शांत करते और ज्योति प्रदान करते हैं और भगवान्के उदार हाथ उस परदेकी एक तहको हटाते हैं जो अनंत ज्ञानको छिपाये हुए है।

१८-११-५४

२३३. भगवान्के चितनका वैभव कितना शांत, उदात्त और शुद्ध होता है !

१९-११-५४

२३४. हमें भगवान्‌के आगे हमेशा बिल्कुल कोरे कागजकी तरह रहना चाहिये ताकि हमारे अंदर भगवान्‌की इच्छा बिना कठिनाईके और बिना मिश्रणके लिखी जा सके।

२०-११-५४

२३५. कभी-कभी विगत अनुभूतियोंको भी विचारोंसे निकाल बाहर करना पड़ता है ताकि वे सतत पुनर्निर्माणके काममें बाधा न डालें, सापेक्षताओंके इस जगत्‌में वही चीज भगवान्‌की पूर्ण अभिव्यक्तिको संभव बनाती है।

२१-११-५४

२३६. हर क्षण हमारी मनोवृत्ति ऐसी हो कि भगवान्‌की इच्छा हमारे चुनावका निश्चय करे, ताकि भगवान् हमारे समस्त जीवनको मार्ग दिखा सकें।

२२-११-५४

२३७. एक नितांत नूतन जीवनके साथ भगवान्‌के अंदर निवास करो, जीवन एकमात्र भगवान्‌का बना हुआ हो जिसमें भगवान् ही परम प्रभु हो—इस तरह सब कठिनाइयां प्रशांततामें और सारी मनोव्यथा शांतिमें बदल जायगी।

२३-११-५४

२३८. हम अपने अंदर भगवान्‌को इतने जीवित-जाग्रत रूपमें अनुभव करते हैं कि हम घटनाओंके लिये शांतिके साथ प्रतीक्षा करते हैं। हम जानते हैं कि उनका मार्ग सब जगह है क्योंकि हम उन्हें हमेशा अपनी सत्तामें लिये रहते हैं।

२४-११-५४

२३९. हमें सभी अनिश्चित संभाव्यताओंकी चिंतासे मुक्त रहना चाहिये, हमें वस्तुओंके बारेमें सामान्य दृष्टिसे छुटकारा मिलना चाहिये।

२५-११-५४

२४०. हमें केवल भगवान्की आंखोंसे ही देखना और भगवान्की इच्छासे ही काम करना चाहिये।

२६-११-५४

२४१. भागवत प्रेम सबके अंदर वह शांति और संतोष उत्पन्न कर सकता है जो सद्भाव और परोपकारितासे आते हैं।

२७-११-५४

२४२. हमारा हृदय कष्ट और परितापसे शुद्ध हो गया है। वह दृढ़ और शांत है और हर चीजमें भगवान्को देखता है।

२८-११-५४

२४३. व्यक्तिगत सत्ता हर क्षण नया होनेवाला भजन है जिसे विश्व सदा-सर्वदा अचित्य भागवत वैभव और गरिमाको अर्पित करता रहता है।

२९-११-५४

२४४. केवल भगवान्की कृपा ही अपने सार और सत्य रूपमें शांति, सुख, शक्ति, ज्योति, ज्ञान, आनंद और प्रेम दे सकती है।

३०-११-५४

२४५. असफलतामें भी और सफलतामें भी भगवान्की कृपा हमेशा उपस्थित रहती है।

१-१२-५४

२४६. भक्ति और समर्पणकी सर्वांगीण और निरपेक्ष संपूर्णतामें ही हम अविच्छिन्न आनंदकी ओर ले जानेवाली पूर्ण शांति-की अनिवार्य स्थिति पाते हैं।

२-१२-५४

२४७. भगवान्के प्रति संपूर्ण समर्पणमें कोई भूल या दोष या कमी बाकी नहीं रह सकती क्योंकि इसमें व्यक्ति वही करता है जिसकी भगवान्ने इच्छा की है और यह उसी तरह किया जाता है जैसे भगवान्ने चाहा है।

३-१२-५४

२४८. प्रेमकी प्यासको कोई मानव संबंध नहीं बुझा सकता। केवल भागवत प्रेम ही इस प्यासको संतुष्ट कर सकता है।

४-१२-५४

२४९. बालकके विश्वासके साथ हमारा हृदय भगवान्से याचना करता है।

५-१२-५४

२५०. एक दिन आता है जब अंदर और बाहर समी बाधाएं टूट जाती हैं और हम उस पक्षीकी तरह अनुभव करते हैं जो एक निर्विरोध ऊंची उड़ानके लिये पंख खोलता है।

६-१२-५४

फरवरी १९७७

७

२५१. हम जो भी करें, हमें सदा अपने लक्ष्यको याद रखना चाहिये ।

१७-१२-५४

२५२. भूलें सोपान बन सकती हैं और अंधेरेमें टटोलना विजयमें बदल सकता है ।

८-१२-५४

२५३. भगवान्की महिमा पराजयोंको शाश्वतकी विजयमें बदल सकती है । छायाएं उनकी कांतिमय चमकके सामनेसे भागती हैं ।

९-१२-५४

२५४. सत्य शाश्वत रूपमें उस सबके परे है जो हम उसके बारे-में सोच या कह सकते हैं ।

१०-१२-५४

२५५. अमुक कालोंमें ऐसा लगता है कि समस्त पार्थिव जीवन चामत्कारिक ढंगसे उन अवस्थाओंसे गुजरता है जिन्हें पार करनेमें अन्य समय उसे हजारों वर्ष लग जाते हैं ।

११-१२-५४

२५६. हर क्षण तुम्हें यह जानना चाहिये कि सब कुछ पानेके लिये सब कुछ कैसे खोया जाता है — भूतको मृत शरीरकी तरह छोड़कर अधिक प्रचुरतामें कैसे जन्म लिया जाय ।

१२-१२-५४

२५७. भगवान्की उपस्थिति हमें बलमें शांति, क्रियामें प्रशान्ति

और सब परिस्थितियोंके बीच अपरिवर्तनशील सुख देती है ।

१३-१२-५४

२५८. सत्ताको अभिव्यक्तिकी समस्त संभावनाओंके समग्र प्राचुर्य-को पानेके लिये एक-एक करके सभी बाधाओंको गिराना होगा ।

१४-१२-५४

२५९. भगवान्को प्रकट करनेमें अक्षम होते हुए भी व्यक्ति भगवान्को जी सकता है, भगवान्का वर्णन कर सकने या उनके बारेमें समझा सकनेमें अक्षम होते हुए भी व्यक्ति भगवान्की नित्यताको उपलब्ध और चरितार्थ कर सकता है ।

१५-१२-५४

२६०. परम संकल्प हमेशा नित्य रहस्य बना हुआ हमारे समस्त आश्चर्य और विस्मयका पात्र रहता है ।

१६-१२-५४

२६१. जिसे भगवान्के साथ ऐक्य प्राप्त है उसके लिये हर जगह भगवान्का पूर्ण सुख और आनंद है । वह हर जगह और हर परिस्थितिमें हमारे साथ रहता है ।

१७-१२-५४

२६२. ऐसे बालककी तरह जो तर्क नहीं करता, जो चिंता नहीं करता, हम अपने-आपको भगवान्को सौंपते हैं ताकि भगवान्की इच्छा पूरी हो सके ।

१८-१२-५४

फरवरी १९७७

९

२६३. भगवान्की कृपाके आगे की गयी तीव्र और सच्ची प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती।

१९-१२-५४

२६४. परम पुरुष ही भागवत ज्ञान और पूर्ण ऐक्य हैं। हम दिन-के प्रत्येक क्षण उनका आवाहन करें ताकि हम स्वयं उनके सिवा कुछ और न हों।

२०-१२-५४

२६५. जब हम अपनी निराशामें भगवान्के आगे रोते हैं तो वह हमारी पुकारका हमेशा उत्तर देते हैं।

२१-१२-५४

२६६. भगवान् विशुद्ध सुख हैं, आनन्दपूर्ण सौभाग्य हैं। परंतु यह सौभाग्य पूर्ण तभी होता है जब समग्र हो।

२२-१२-५४

२६७. भगवान् वह मित्र, वह शक्ति, वह सहारा और वह मार्ग-दर्शक हैं जो कभी धोखा नहीं देते, भगवान् वह प्रकाश हैं जो अंधकारको तितर-बितर कर देते हैं, वह विजेता हैं जो विजयको निश्चित बनाते हैं।

२३-१२-५४

२६८. धरतीपर एक नया प्रकाश आयेगा, सत्य और सामंजस्यका प्रकाश।

२४-१२-५४

२६९. हम भगवान्की सेवामें हैं। स्वयं भगवान् ही निश्चय करते,

आदेश देते और गति प्रदान करते हैं। वही कार्यका निर्देशन करते और उसे चरितार्थ करते हैं।

२५-१२-५४

२७०. अंतरात्मा भगवान्को सोच नहीं सकती, लेकिन उन्हें निश्चिन्ता के साथ जानती है।

२६-१२-५४

२७१. हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी कृतज्ञता और आनंदमय, विश्वासपूर्ण लगनकी तीव्र ज्वालाको स्वीकार करें।

२७-१२-५४

२७२. हमें अपने जीवन और साथ ही अपने मरण, अपने सुख और अपने दुःखको देना जानना चाहिये।

२८-१२-५४

२७३. हमें यह जानना चाहिये कि हर चीजके लिये और हर चीजमें भगवान्पर कैसे निर्भर रहा जाय। केवल वे ही सब कठिनाइयोंको पार कर सकते हैं।

२९-१२-५४

२७४. वर्षके इस अंतिम दिन, आओ, हम सब यह निश्चय करें कि समाप्त होते हुए वर्षके साथ-ही-साथ हमारी सब दुर्बलताएं और हठीले अंधकार भी समाप्त हो जाएंगे।

३०-१२-५४

फरवरी १९७७

११

२७५. पिछले वर्षको विदा।
नये वर्षका स्वागत !

३१-१२-५४

२७६. किसी बाहरी शक्तिका मूल्य उसी अनुपातमें होता है जिसमें वह सत्यकी शक्तिकी अभिव्यक्ति हो।

१६-१-५५

२७७. एक गहरी और सच्ची चेतना है जिसमें सब प्रेम और सामंजस्यके साथ मिल सकते हैं।

९-४-५५

२७८. यह विरल है कि कोई एक-न-एक प्रकारकी कठिनाईका सामना किये बिना ही पूरी तरह भगवान्‌के आगे समर्पण करे।

२-५-५५

२७९. अपनी अभीप्साको स्थिर रखना और पूरी सचाईके साथ अपने-आपको देखना — बाधाओंपर विजय पानेके यह निश्चित उपाय हैं।

१०-५-५५

२८०. जिसने भगवान्‌के साथ युक्त होने तथा उन्हें प्रकट करनेके जैसा महान् लक्ष्य अपने सामने रखा है वह भला जीवनकी समस्त तुच्छ और मूर्खतापूर्ण चीजोंसे कैसे प्रभावित हो सकता है ?

३०-५-५५

१२

अग्निशिखा

२८१. अवसाद सदा अयुक्तिसंगत होता है, क्योंकि उससे हमें कोई लाभ नहीं होता। यह योगका सबसे सूक्ष्म शत्रु है।

३१-५-५५

२८२. अपने-आपको भूल जाना ही सब रोगोंकी महान् औषधि है।

१-६-५५

२८३. प्राण जगत्में आकर्षण और विकर्षण एक ही चीजके दो पहलू हैं और हमेशा आसक्तिका प्रमाण देते हैं।

२-६-५५

२८४. जब व्यक्ति अपने-आपको अन्धा महसूस करता है तभी वह ज्योतिके लिये तैयार होने लगता है।

३-६-५५

२८५. हम पथपर जितना आगे बढ़ते हैं उतने ही अधिक विनम्र बनते जाते हैं और उतना ही अधिक यह देखते हैं कि जो करना बाकी है उसकी तुलनामें हमने कुछ भी नहीं किया है।

४-६-५५

२८६. मेरा कार्य मनुष्योंपर बिल्कुल निर्भर नहीं है। सभी संभव प्रतिरोधोंके होते हुए जो करना है वह किया जायगा।

५-६-५५

२८७. समस्त भयपर विजय पानी चाहिये और उसके स्थानपर भगवान्की कृपापर पूरे विश्वासको प्रतिष्ठित करना चाहिये।

६-६-५५

फरवरी १९७७

१३

२८८. मुझे भावुक न होनेमें कोई बुराई नहीं दीखती; भावुकता-
से बढ़कर कोई और चीज सच्चे प्रेम, उस दिव्य प्रेमसे
अधिक दूर नहीं है।

७-६-५५

२८९. भगवान् के साथ एक होनेके दो तरीके हैं। एक है अपने
हृदयमें एकाग्र होकर उनकी उपस्थितिको पानेके लिये गहन
राईमें पैठना।

८-६-५५

२९०. भगवान् के साथ एक होनेका दूसरा तरीका है अपने-आपको
उनकी बांहोंमें सौंप देना, और पूर्ण समर्पणके साथ उस तरह
चिपक जाना जैसे बच्चा अपनी मांकी बांहोंमें चिपकता
है।

९-६-५५

२९१. भगवान् अनंत और असंख्य हैं, इसलिये उनके पास पहुंचनेके
तरीके भी अनंत और असंख्य हैं।

१०-६-५५

२९२. मनुष्य जिस तरीकेसे भगवान् के पास जाता है उसीके अनु-
सार वह भगवान् को पाता है और उनको जानता है।

११-६-५५

२९३. भक्त करुणा और स्नेहसे भरे भगवान् से मिलता है; ज्ञानी
ज्ञान और प्रज्ञासे पूर्ण भगवान् को पाता है। जो भगवान् से
डरता है वह एक कठोर भगवान् से मिलता है, और जिसमें
भगवान् पर विश्वास होता है वह भगवान् को मित्र और रक्षक-

के रूपमें पाता है . . . और इसी तरह संभावनाओंकी अनंत विभिन्नताएं मौजूद हैं।

१२-६-५५

२९४. भगवान् हर एकसे वही मांगते हैं जो उसके पास है, जो वह है, उससे ज्यादा कुछ नहीं, लेकिन उससे कम भी नहीं।

१३-६-५५

२९५. इसमें संदेह नहीं कि उदास और विषण्ण बने रहनेसे ही कोई भगवान्को नहीं पा लेता।

१४-६-५५

२९६. मनुष्यको सर्वदा अपने मनमें विजयके लिये दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने हृदयमें अटल विश्वास और निर्भरता बनाये रखनी चाहिये।

१५-६-५५

२९७. जो अंधकार तुम्हारे और भगवान्के बीचमें आ गया है और भगवान्को तुम्हारी आंखोंसे ओझल कर रहा है उसे दूर भगाओ। दृढ़ निश्चयके विशुद्ध प्रकाशमें ही तुम भगवान्की उपस्थितिके विषयमें सचेतन हो सकते हो।

१६-६-५५

२९८. भगवान् खिन्न नहीं हैं और भगवान्को पानेके लिये तुम्हें सारी खिन्नता और हृदयकी सारी दुर्बलताओंको अपने अंदर-से दूर फेंक देना होगा।

१७-६-५५

२९९. बिना आत्म-संयमके भौतिक स्तरपर कुछ भी सिद्ध करना असंभव है।

१८-६-५५

३००. यदि तुम्हारा हृदय, नियमित रूपसे और निरंतर, घड़कनेके कठोर संयमके अधीन होना न चाहे तो तुम भौतिक शरीर-में पृथ्वीपर जी ही न सकोगे।

१९-६-५५

३०१. जिन्होंने महान् सिद्धियां प्राप्त की हैं वे सदा महान् संयमी पुरुष थे।

२०-६-५५

३०२. यदि तुम शरीरसे मुझसे दूर रहो पर सदा मेरा चिंतन करते रहो तो तुम अवश्य उस समयकी अपेक्षा मेरे कहीं अधिक नजदीक होगे जब तुम बैठे तो मेरे पास हो पर सोचते कुछ और ही हो।

२१-६-५५

३०३. मेरे कहनेका मतलब यह था कि सचमुच मेरे निकट होने-के लिये केवल शारीरिक उपस्थिति ही काफी नहीं है। यह शारीरिक निकटता आंतरिक अभीप्सा और एकाग्रताकी अभिव्यक्ति होनी चाहिये।

२२-६-५५

३०४. मौन रहनेसे कोई बुराई होनेका खतरा नहीं रहता, जब कि बोलते समय दसमेसे नौ बार मूर्खतापूर्ण बातें करना संभव है।

२३-६-५५

३०५. एकाग्रताका अर्थ ध्यान नहीं है, बल्कि, एकाग्रता एक ऐसी अवस्था है जिसे हमें सतत रूपसे सिद्ध करना चाहिये, बाहरी कार्य चाहे कुछ भी क्यों न हो।

२४-६-५५

३०६. एकाग्रतासे मेरा मतलब यह है कि सभी शक्तियां, समूची संकल्प-शक्ति, सभी अभीप्साएं केवल भगवान्की ओर मुड़ने और हमारी चेतनामें उनकी संपूर्ण अनुभूति प्राप्त करनेमें लग जायें।

२५-६-५५

३०७. अधिक अच्छा तो यह है कि अपनेको न बड़ा समझा जाय न छोटा, न बहुत महत्त्वपूर्ण और न नगण्य, क्योंकि अपने-आपमें हम कुछ भी नहीं हैं। हमें तो बस वही बननेकी इच्छा करनी चाहिये जो भागवत इच्छा हमें बनाना चाहती है।

२६-६-५५

३०८. जबतक व्यक्ति अपने अंदर दुःख और कष्टको जीत नहीं लेता और अपनी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओंका स्वामी नहीं बन जाता तबतक वह दूसरोंके दुःख-कष्ट जीतनेमें सहायता नहीं कर सकता।

२७-६-५५

३०९. वर्तमान जीवनमें सभी कठिनाइयोंका साहसके साथ सामना करना और उनको जीत लेना भगवान्के साथ ऐक्य पानेका सुनिश्चित उपाय है।

२८-६-५५

३१०. कठोरतासे नहीं, बल्कि आत्म-संयमसे ही बच्चोंपर नियंत्रण
 रखा जा सकता है।

२९-६-५५

३११. अगर तुम किसीके हितकी बात नहीं सोच सकते तो
 तुम उसके बारेमें कुछ सोचो ही नहीं।

३०-६-५५

३१२. कोई चीज कठिन है इसलिये तुम्हें उसे छोड़ नहीं देना
 चाहिये। इसके विपरीत, चीज जितनी अधिक कठिन हो
 उसमें सफलता पानेके लिये तुम्हें उतना ही अधिक संकल्प
 करना चाहिये।

१-७-५५

३१३. भागवत चेतनाको भौतिक जगत्में उतारना सबसे कठिन
 चीज है। क्या इस कारण प्रयत्नको छोड़ना चाहिये?
 हाँगि नहीं।

२-७-५५

३१४. अगर तुम दर्शनशास्त्र और नीतिशास्त्र पढ़ो तो इन्हें अपने
 मस्तिष्कको थोड़ी कसरत देनेके लिये एक मानसिक व्या-
 यामके रूपमें लो। लेकिन यह देखना कभी न भूलो कि
 ये ज्ञानका स्रोत नहीं हैं और इस रास्तेसे तुम सच्चे ज्ञान-
 तक नहीं पहुँच सकते।

३-७-५५

३१५. हमें अपने अगले जन्मके बारेमें नहीं, बल्कि अपने वर्तमान

जन्मके वारेमें सोचना चाहिये जो हमें अंतिम श्वासतक अपनी सभी संभावनाएं प्रदान करता है।

५-७-५५

३१६. वही चाहता जो भगवान् हमारे अंदर और हमारे लिये चाहते हैं — यही एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है।

६-७-५५

३१७. बहुत ही कम हैं ऐसे लोग जो भगवान्पर श्रद्धा और विश्वासकी चट्टानपर मजबूतीसे खड़े रह सकते हैं।

७-७-५५

३१८. जो भगवान्की कृपापर विश्वास करता है उसके लिये कृपा अनंत है।

८-७-५५

३१९. भगवान्की इच्छाके प्रति हमेशा वफादार रहनेके लिये जो बल चाहिये वह हमेशा तुम्हारे साथ है।

९-७-५५

३२०. जब हृदय और मन शांत हों तो वाकी स्वभावतः अनुसरण करता है।

१०-७-५५

३२१. किसी कठिनाईको एक नयी प्रगतिके अवसरमें बदलना अच्छा है।

११-७-५५

३२२. अयोग्यताके सब विचार बाह्यात हैं। वे प्रगतिके सत्यका निषेध हैं—अगर अभीप्सा है तो जो आज नहीं किया जा सकता वह किसी और दिन किया जायगा।

१२-७-५५

३२३. निश्चय ही तुम यह नहीं मान सकते कि कुछ कठिनाइयोंका सामना किये बिना साधना की जा सकती है। लेकिन समय और अव्यवसायके साथ हर चीजको पार किया जा सकता है।

१३-७-५५

३२४. चूंकि तुम्हारी अभीप्सा सच्ची है इसलिये भागवत उपलब्धि-के रास्तेमें अवचेतनामें जो कुछ था वह रूपांतरित होनेके लिये ऊपरी तलपर आ गया है। तुम्हे प्रगतिके इन अवसरोंपर खुश होना चाहिये।

१४-७-५५

३२५. स्वयं विरोधी शक्तिको ही जीतना और नष्ट करना होगा, अन्यथा वह अपनी अभिव्यक्तिके लिये लोभ हमेशा पाती रहेगी।

१५-७-५५

३२६. आंतरिक और बाह्य मनोवृत्तिके संशोधनसे साधनामें प्रगति आती है—तुम किस तरहका काम करते हो इससे नहीं। कोई भी काम, चाहे बिल्कुल ही घटिया क्यों न हो, यदि सम्यक् मनोवृत्तिके साथ किया जाय तो भगवान्की उपलब्धितक ले जाता है।

१६-७-५५

२०

अग्निशिखा

३२७. भगवान् वस्तुओंमें भी हैं इसलिये उनका व्यवहार सावधानी-से करना चाहिये ।

१७-७-५५

३२८. तुम्हें वस एक ही चीज करनी है, शांति, अक्षुब्ध और भगवान्की ओर अभिमुख रहो । बाकी सब उनके हाथमें है ।

१८-७-५५

३२९. अच्छा भौतिक और नैतिक संतुलन बनाये रखनेके लिये अच्छा भौतिक काम सबसे अधिक उपयोगी होता है ।

१९-७-५५

३३०. केवल भगवान्के साथ ऐक्यमें और भगवान्में ही सामंजस्य और संतुलनकी स्थापना की जा सकती है ।

२०-७-५५

३३१. भगवान्का प्रेम एक शाश्वत सत्य है ।

२१-७-५५

३३२. नैतिक साहस और सहनशक्तिको पाना प्रायः भौतिक साहस और सहनशक्ति पानेकी अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है ।

२२-७-५५

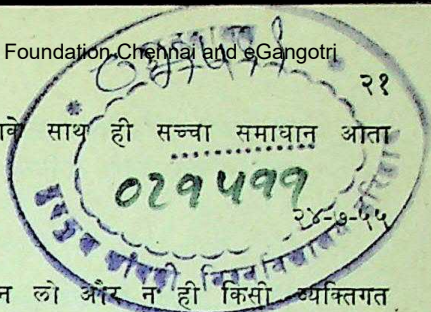
३३३. भगवान् हमेशा तुम्हारे हृदयमें विराजमान हैं, सचेतन रूपसे तुम्हारे अंदर रहते हैं ।

२३-७-५५

फरवरी १९७७

२१

३३४. वास्तविक आवश्यकताओं के साथ ही सच्चा समाधान आता है।



३३५. कभी किसीका पक्ष न लो और न ही किसी व्यक्तिगत झगड़ेमें पड़ो। केवल भागवत शांति, सामंजस्य, औचित्य और सुखके बारेमें सोचो और उनके अधिकाधिक शुद्ध और शांत यंत्र बनो।

२५-७-५५

३३६. हर एक अपने अंदर अपने सुखी रहनेकी क्षमता लिये रहता है। लेकिन एक बात निश्चित है, जो यहां सुखी नहीं रह सकते वे कहीं भी सुखी न रहेंगे।

२६-७-५५

३३७. स्वयं अपने ऊपर अधिकार ही सबसे पहली आवश्यक चीज है, और विशेष रूपमें अपनी जीभपर अधिकार !

२७-७-५५

३३८. शांत रहो और अपने अंदर बल तथा शक्ति जुटाओ, केवल काम करनेके लिये नहीं, रूपांतर उपलब्ध करनेके लिये भी।

२८-७-५५

३३९. अगर लोग चुप रहना सीख लें तो कितनी मुश्किलोंसे बचा जा सके !

२९-७-५५

३४०. हमें अपनी पूरी सत्ताके साथ अभिव्यक्तिके जल्दी और पूर्ण रूपसे आनेके लिये अभीप्सा करनी चाहिये।

३०-७-५५

३४१. जैसे-जैसे चेतना विकसित होगी, बढ़ेगी, विस्तृत होगी और प्रबुद्ध होगी वैसे-वैसे तुम अपने काममें अधिकाधिक पूर्ण बनते जाओगे।

३१-७-५५

३४२. समर्पणके साथ कार्य बहुत ज्यादा आसानीसे और खुशीसे किया जा सकता है।

१-८-५५

३४३. वह सब जो मानव संबंधोंपर आधारित होता है वह अस्थायी, क्षणिक, मिश्रित और असंतोषजनक होता है। केवल वही जो भगवान्‌में और भगवान्‌के द्वारा स्थापित होता है टिक सकता है और संतोष दे सकता है।

२-८-५५

३४४. अगर कभी कोई भागवत वस्तु स्थापित करनी हो तो सभी निचली गतिविधियोंको जीतना होगा।

३-८-५५

३४५. ज्योतिको चेतनामें प्रदीप्त होना चाहिये और अज्ञानकी छाया-को सबसेसें लुप्त हो जाना चाहिये।

४-८-५५

३४६. वफादारी शांति और सुरक्षाके लिये एक शर्त है।

५-८-५५

३४७. औरोंके साथ कड़े होनेसे पहले अपने साथ कठोर बनो।

६-८-५५

३४८. जगत् यह जान जाये कि भगवान् अभिव्यक्त हो रहे हैं।

७-८-५५

३४९. ईमानदार लोग हैं परंतु उनमें काम करनेकी क्षमता नहीं है। क्षमतावाले लोग हैं परंतु वे अपने काममें ईमानदार नहीं हैं। जब मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है जो ईमानदार और योग्य हो तो वह बहुत बहुमूल्य हो जाता है।

८-८-५५

३५०. लोग जब यहां रहते हैं तो उन्हें खुश रहना चाहिये, अन्यथा वे इस अपवादिक अवसरका पूरा लाभ नहीं उठा सकते।

९-८-५५

३५१. एकाग्रताके साथ काम बहुत ज्यादा आसानीसे और खुशीके साथ किया जा सकता है, लेकिन किसीसे जितना वह कर सकता है उससे ज्यादा प्रयास करनेके लिये न कहना चाहिये।

१०-८-५५

३५२. एक खतरनाक बीमारी है — आलस्य।

११-८-५५

३५३. तुम जितना ज्यादा बुझबुझाओगे तुम्हारा दर्द उतना ही ज्यादा बढ़ेगा।

१२-८-५५

३५४. जबतक तुम कड़ी मेहनत नहीं करते तबतक तुम्हें शक्ति नहीं मिलती, क्योंकि तब तुम्हें उसकी जरूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। शक्ति तुम्हें तभी मिलती है जब तुम उसका उपयोग करते हो।

१३-८-५५

३५५. भक्ति है प्रेम और आदरके साथ समर्पण। भक्ति मानव प्रेमसे श्रेष्ठ है। यह आत्म-दानकी ओर पहला पग है।

१४-८-५५

३५६. आत्म-दानके बिना प्रेम नहीं होता, लेकिन मानव प्रेममें आत्म-दान बहुत ही विरल होता है। वह तो स्वार्थपरता और मांगोंसे भरा रहता है।

१५-८-५५

३५७. यहां हर एक काम विश्वकी किसी चीजका प्रतिनिधित्व करता है।

१६-८-५५

३५८. यहां जब कोई नया काम शुरू किया जाता है तो संसारकी नयी समस्याएं घुस आती हैं। इसलिये मैं नयी समस्याओंको निमंत्रण नहीं देती, लेकिन अगर वे आ जायं तो उनसे बचती भी नहीं।

१७-८-५५

फरवरी १९७७

३५९. मुझे उच्चतम चेतनाको नीचे उतारना है और उसके लिये मुझे नीचेकी व्यवस्था करनी है और सब समस्याएं सुलझानी हैं।

१८-८-५५

३६०. मुझे विश्वास है नौकर वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा उनके साथ किया जाता है।

१९-८-५५

३६१. जल प्राणके अनुरूप है, वायु, मनके, अग्नि चैत्य पुरुषके, धरती जड़-तत्त्वके और आकाश आत्माके अनुरूप।

२०-८-५५

३६२. काम करना इतना आसान नहीं है। सच्चे काममें तुम्हें वह सब तो करना ही पड़ता है जो साधनाके लिये किया जाता है, उसके सिवा और भी बहुत कुछ।

२१-८-५५

३६३. तुम्हें वह सब करना होगा जो योगी करता है। तुम्हें उच्चतम ऊंचाइयोंतक पहुंचना और चेतना, प्रकाश और शांतिकी वह स्थितियां नीचे अपने रोजके काममें उतार लानी हैं। तुम्हारे लिये कोई आम नगण्य या तुच्छ नहीं है।

२२-८-५५

३६४. काममें व्यवस्था और सामंजस्य होने चाहिये। जो काम यूं देखनेमें बिलकुल नगण्य है उसे भी पूर्ण पूर्णताके साथ,

सफाई, सुंदरता, सामंजस्य और सुव्यवस्थाके साथ करना चाहिये ।

२३-८-५५

३६५. अगर तुम्हारे अंदर बलवान् और सचेतन संकल्प-शक्ति है और तुम्हारा संकल्प चैत्य पुरुषके इर्द-गिर्द व्यवस्थित है तो तुम स्वाधीनताका रस पा सकते हो । अन्यथा तुम सभी बाहरी प्रभावोंके दास रहते हो ।

२४-८-५५

भगवती मां

साधारण आदमी मुश्किलोंमें पड़ता है तो रोता है, भगवान्को या भाग्यको कोसता है, इधर-उधर हाथ पांव मारता है और जब मुश्किल दूर हो जाती है तो सब कुछ भूलकर फिरसे उसी चकर-घन्नीपर चढ़ जाता है और फिर जबतक कोई नयी मुसीबत नहीं आती तबतक अपनेमें मस्त रहता है और मुसीबतके आते ही फिरसे वही चक्कर चलने लग पड़ता है ।

काफी देरतक अपने दिमागमें उछल-कूद करनेके बाद वह मेरे यहां आ धमकी । मैं सतर्क हो गया कि कोई नयी फरमाइश है । सावधान होकर बैठ गया । इस बार उसने इधर-उधरकी बातें किये बिना सीधा ही प्रश्न दाग दिया, “अच्छा, आप यह बताइये कि मेरे चोट क्यों लगी और मुझे इतना कष्ट क्यों सहना पड़ा ?” प्रश्न करना आसान था और जवाब देना मुश्किल । मैंने टालनेके भावसे कहा, “तूने आवश्यक सावधानी नहीं रखी इसलिये गिर पड़ी, मांसपेशियोंमें इतनी क्षमता न थी कि इस चोटको सह सकें इसलिये मोच आ

गयी। यह तो भला हुआ कि हड्डी नहीं टूटी। यह तो स्पष्ट बात है, इसमें पूछना क्या है?"

"आप टालनेकी कोशिश न कीजिये। मैं इतनी आसानीसे नहीं जाऊंगी। आपने जितना बताया उतना तो मैं भी जानता हूँ — शायद इससे कुछ ज्यादा भी। यह जाननेके लिये मैं आपके पास नहीं आयी। मुझे तो यह जानना है कि मुझे ही नहीं, औरों-को भी चोटें लगती ही क्यों हैं, मुसीबतें आती ही किसलिये हैं? क्या कर्णसिन्धु भगवान् हमारी रक्षा नहीं करते या नहीं करना चाहते या फिर, जैसा नानी कहा करती हैं, यह पिछले जन्मके किसी कुकर्मका फल है?"

"अरे बाप रे बाप! आज तो तू दार्शनिक बनकर आयी है, नहीं-सी गुड़िया सारे संसारके रहस्य खोजने चली है। अच्छी बात है, ले मैं भी तुझे कुछ गहराईमें लिये चलता हूँ। वहां गये बिना इसे समझना कठिन है। इसके लिये हमें यह जानना होगा कि रोग, शोक, दुःख जीवनमें क्यों आते हैं और कहाँसे आते हैं। इसे जाननेके लिये हमें सृष्टिके आरंभकी ओर नजर डालनी होगी।

"यहां हमें भाषाकी कमजोरी खलती है। भाषाके द्वारा ऐसी बात करनी है जो भाषासे परेकी है। इस सृष्टिके पैदा होनेसे पहलेकी बात है। भगवान् अकेले थे। उनके अन्दर सब तरहकी शक्तियां थीं, सब तरहकी चीजें थीं परन्तु सब सोयी पड़ी थीं। भगवान्की इच्छा हुई कि अपने-आपको आईनेमें देखें। तूने देखा ही होगा, आईने बहुत प्रकारके होते हैं, किसीमें चेहरा ठीक-ठीक दिखायी देता है, किसीमें लंबा, किसीमें चौड़ा और किसीमें पट्कोण। इसी तरह भगवान् अपने-आपको सभी संभव रूपोंमें देखना चाहते थे।

"भगवान्की इच्छा पूरी होते क्या देर लगती है? उन्होंने अपनी चेतनासे ही सृष्टिको बनानेवाली आद्या शक्तिको जन्म दिया और उससे कहा 'सृष्टिका निर्माण करो।' उसने झट चार सत्ताओंको जन्म दिया जिनको हम चेतना, प्रेम या आनन्द, जीवन और

प्रकाश या ज्ञानकी सत्ताएं कह सकते हैं। हम कह सकते हैं कि यही भगवान्की सबसे पहली सृष्टि थी। इन चारोंमें बहुत अधिक शक्ति थी। इन्होंने समझ लिया कि हम ही सब कुछ हैं इसलिये रचना करनेवाली मांसे और भगवान्से अपना संबंध तोड़ लिया और स्वतंत्र हो गयीं। इनके स्वतंत्र होते ही दुनियाकी सबसे बड़ी दुर्घटना हुई। चेतना भगवान्से विछुड़कर अचेतना बन गयी, प्रकाश या जीवनने सोचा, 'मैं ही तो सब कुछ हूँ' — वह सत्ता अंधकार और मृत्युमें बदल गयी। सत्यने सोचा, 'सारा सत्य मेरे अंदर ही समाया हुआ है, मेरे अतिरिक्त और कोई सत्य नहीं' — वह असत्यमें बदल गया। प्रेम या आनंदने भी इसी तरह अपने-आपको सब कुछ मान लिया और वह दुःखमें बदल गया।

“भगवती मां जिस संसारको सुन्दर और प्रेममय बनाना चाहती थीं उसकी यह दशा हो गयी। उन्हें यह देखकर कष्ट हुआ। उन्होंने भगवान्को सहायताके लिये पुकारा। भगवान्ने कहा, 'कोई हर्ज नहीं, फिरसे शुरू करो, लेकिन इस बार इन सत्ताओंको इतनी अधिक शक्ति न देना कि वे तुमसे अलग हो जायें। तुम जो नयी सृष्टि करो, वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे द्वारा मेरे साथ जुड़ी रहे, तभी ठीक काम हो सकता है।' इस बार भगवतीने ऐसा ही किया। उन्होंने बहुत-सी नयी शक्तियां बनायीं। नयी शक्तियां इतनी घमंडी नहीं थीं। वे भगवान्की ओर मुड़ी हुई थीं। भगवती माताने इन्हें सृष्टि बनानेका हुकुम दिया। इन शक्तियोंको हम देवता कहते हैं और पहली सत्ताओंको असुर।

“बस, यहींसे लड़ाई शुरू हो गयी। असुरोंमें शक्तिकी कमी न थी। उन्होंने भी अपनी सृष्टि बनानी शुरू की और पग-पग-पर दोनोंमें लड़ाई शुरू हुई। इस लड़ाईमें ही सृष्टि आगे बढ़ती जाती है। हर एकको हर क्षण चुनाव करनेका पूरा अधिकार

रहता है, वह चाहे तो भगवान्की ओर चले और चाहे तो अमुरों-के पक्षमें हो जाय। यह एक प्रकारका नाटक है, क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि अंतमें भगवान्की ही विजय होगी। अमुरों-को या तो बदलना होगा या मंचसे हट जाना होगा।

“तू सोच रही होगी कि मैंने तेरे प्रश्नको भुला डाला और लग गया आध्यात्मिक कहानियां कहने। बात ऐसी नहीं है। सुख-दुःख अपने-आपमें सापेक्ष शब्द हैं। इनके बारेमें बातें करने लगें तो घंटे बीत जायेंगे। एक जरा-सा उदाहरण देख ले। तेरे हाथमें चोट लगी। हम सबने इसे दुःखकी बात माना। लेकिन ‘क्ष’ को रेलसे कहीं जाना था। उसके हाथमें चोट लगी और वह न जा सका। बादमें पता लगा कि वह रेल रास्तेमें ही उलट गयी थी। चोट लगनेके कारण ‘क्ष’ के प्राण बच गये। अब बोल, यह चोट सुखदायक थी या दुःखदायक ?

“कहा जा सकता है कि ऐसी बातें अपवाद स्वरूप होती हैं। वस। सुख-दुःखमें फर्क करना इतना मुश्किल नहीं। चलो यही सही। एक आदमीको बहुत मिर्च खानेकी आदत है और दूसरे-को मिर्च खानेकी आदत नहीं, जरा-सी मिर्च भी उसे रुला देती है, तो यहां सुख मिर्च खानेमें हुआ या न खानेमें ?”

अब वंदनासे न रहा गया। उसने कहा, “आप फिरसे विषयांतर कर रहे हैं। मेरा प्रश्न तो यह था कि मेरे चोट क्यों लगी और इस तरहकी मुसीबतोंसे बचनेके लिये हमें क्या करना चाहिये ?”

मैंने उत्तर दिया, “नहीं ठीक विषयांतर तो नहीं है यह। तेरा विषय बहुत बड़ा है और पूरे विषयके साथ न्याय करना संभव नहीं है इसलिये मैं इधर-उधरसे कुछ बातें लेता जा रहा हूं। ले, अब कूदकर सीधा तेरे विषयपर आता हूं। जैसा कि मैंने शुरूमें कहा था, दैवी शक्तियां हमें ठीक रास्तेपर चलाना चाहती हैं और आसुरी शक्तियां हमें रास्तेसे भटकाती हैं। आलस्य, प्रमाद, लापर-

वाही, सौंदर्यकी उपेक्षा आदि आसुरी सेनाके सिपाही हैं और हमें गिरानेके लिये हमेशा तत्पर रहते हैं। इनसे वचना और भगवान्-पर विश्वास रखना, अपने-आपको उनके हाथोंमें सौंप देना -- यही मुसीबतोंसे बचनेका सबसे अच्छा उपाय है। यूं भगवान्की रक्षा तो हमेशा हमारे साथ रहती है पर हम ही उस रेखासे बाहर निकल जाते हैं और परिणामस्वरूप गलेमें मुसीबतोंकी माला डाल लेते हैं। जब मुसीबत आ ही जाय तो रोने-धोनेकी जगह उन्हींकी शरणमें जानेसे उपचार हो सकता है। ले वस, आजके लिये इतना काफी है।”

सोसायटी समाचार

१२ और १३ दिसंबरको मध्य प्रदेशमें श्रीअरविंद सोसायटीके केंद्रों तथा शाखाओंकी पांचवीं वार्षिक सभा हुई। मध्य प्रदेशके शाखाओं और केंद्रोंने उसमें सक्रिय भाग लिया। चार भाषण दिये गये, तीन ओरोफिल्में दिखायी गयीं, सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ और आश्रमकी किताबों तथा चीजोंकी प्रदर्शनी और बिक्री हुई। व्यक्तिगत केंद्रीय तथा प्रादेशिक स्तरपर माताजीकी शताब्दी मनानेके लिये कार्यक्रमोंकी रूपरेखाएं बनायी गयी हैं। इनकी प्रति श्री-बी. एस. जड़ेसे मिल सकती है। पता है: बी. एस. जड़े, सी-एक, बड़ा बाग, हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी, रोवा (म. प्र.), ४८६००१।

२४ नवंबरको सोसायटीकी सिन्धी शाखाने 'मातृ भवन' की नींव रखी। श्री एल. शुक्ला, डा. के. पी. गुप्त इत्यादिने कार्यक्रममें भाग लिया।

मद्रासमें श्री एस. शंकरनारायणने एक भाषण दिया, विषय था : 'हमारी परंपरा और श्रीअरविंद।' फिर प्रोफेसर के. शेपाद्रिने श्रीअरविंदकी पुस्तक 'दिव्य जीवन' पर एक भाषण दिया।

श्री एम. पी. पंडितने मद्रासमें 'भूत, वर्तमान और भविष्य' के बारेमें भाषण दिया और दशावतारकी कहानी श्रीअरविंदके प्रकाशमें समझायी।

कन्या कुमारीके श्री विवेकानंद केंद्रमें श्री एम. पी. पंडितने श्री-अरविंदकी पुस्तक 'भारतीय संस्कृतिके आधार' पर आधारित दस दिनका अध्ययन कराया। यह अध्ययन उन युवकोंके लिये था जो स्वामी विवेकानंदके प्रकाशमें राष्ट्रीय पुनः निर्माणके लिये तैयारी कर रहे हैं।

कलकत्तेके श्रीअरविंद भवनमें ११ और १२ दिसंबरको 'यूथ कैंप' की व्यवस्था की गयी थी। कार्यक्रममें ध्यान, खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद-विवाद और भाषण हुए।

नई दिल्लीके 'यूनीवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन'ने भारतके सभी विश्व-विद्यालयोंको परिपत्र भेजकर यह प्रस्ताव रखा है कि श्रीमांकी जन्म शताब्दीके सिलसिलेमें वे बैठकों, सभाओं तथा सेमिनारोंकी व्यवस्था करें। कमीशन आर्थिक सहायता देनेके लिये तैयार है। उनकी ओरसे ये विषय दिये गये हैं: श्री मां — शिक्षाके बारेमें; श्रीमां — भारतके बारेमें; पृथ्वीपर अतिमानसिक आविर्भावके बारेमें श्रीमांके वचन। इन विषयोंपर 'अग्निशिखा' के विशेषांक निकल रहे हैं। जो शाखाएं, सदस्य और केंद्र इस क्षेत्रमें विश्वविद्यालयके अधिकारियोंकी मदद कर सकते हैं वे कृपया सीधा उनके साथ या हमारेद्वारा ठोस सुझाव प्रस्तुत करके पत्र-व्यवहार करें।

घोषणाएं :

उत्तर प्रदेशसे हमें यह सूचना मिली है कि ज्वालापुर (हरिद्वारके पास), चरथावल और तपोगिरीमें कुछ केंद्र बने हैं जहां साधक और साधिकाएं रहते और काम करते हैं। वहां शिविर तथा बैठकें करनेकी सभी सुविधाएं प्राप्त हैं। इसलिये जो लोग उसका लाभ उठाना चाहते हों (खासकर उत्तर प्रदेशके रहनेवाले) इस पतेपर चिट्ठी लिख सकते हैं : डा. इंद्रसेन, श्रीअरविंद योग मंदिर, ज्वालापुर, (यू. पी.) ।

न्यू स्कूल हैण्डिक्राफ्ट विभाग तीन महीनोंका एक कोर्स दे रहा है जिसमें जवान लड़कियोंको कलाएं, घरकी साज-सज्जा, हिसाब-किताब और प्रदर्शनीसे संबंधित सभी काम सिखाए जा रहे हैं। इस प्रशिक्षण कार्यक्रमके बारेमें जानकारी निम्नलिखित पतेसे मिल सकती है : विभागाध्यक्ष, हैण्डिक्राफ्ट विभाग, न्यू स्कूल, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

नये केंद्र और शाखाएं :

१. श्रीअरविंद केंद्र,

द्वारा श्री सुरेंद्र कुमार जे. जोशी,
वजूभाई भट्टकी बिल्डिंग, स्टेशन प्लॉट,
विसावदार-३६२१३०

(डा. शरद पी. देसाई तथा श्री सुरेंद्र कुमार जे. जोशी)

२. श्रीअरविंद सोसायटी केंद्र,

द्वारा श्री ठक्कर महेन्द्र सोमनाथ,
ऐट पोस्ट सर्वोदय केंद्र,

शामलाजी-३८३३५५

जिला साबरकांठा (गुजरात)

(श्री कनुभाई के. मलकानी तथा श्री ठक्कर महेंद्र सोमनाथ)

३. श्रीअरविंद साधना केंद्र

द्वारा श्री आर. एस. एद्लावड़कर,

सिविल लाइन्स, दरियापुर-४४४८०३

जिला अमरावती (महाराष्ट्र)

(डा. आर. एल. काले तथा श्री आर. एस एद्लावड़कर)

४. श्रीअरविंद सोसायटी,

द्वारा श्री के. चिन्नावसवप्पा,

'ओरो हाऊस' १२७, वेस्ट औफ कोर्ड रोड,

राजाजी नगर,

बंगलौर-५६००१०

(श्री के. चिन्नावसवप्पा तथा श्री एस. आर. मलगी)

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और स्थायी उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब खालीपन चला जायगा ।

—श्रीमां



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें :

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

वृत्तमास : २५४४७

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

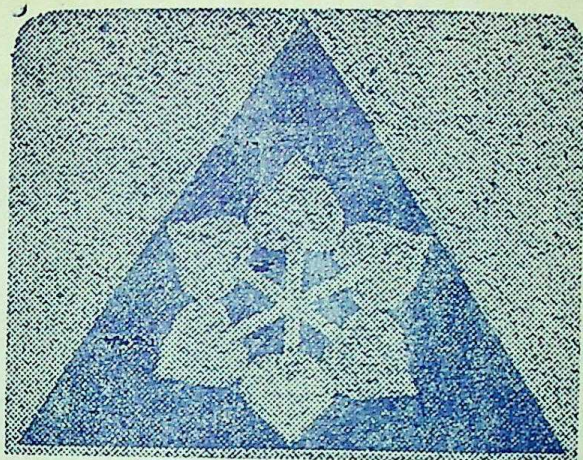
एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्रं. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,

अमरावती-४४४६०१



श्रीराम

नवीन उपकरण - श्रीराम पी०वी०सी०

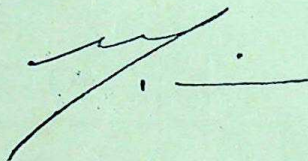
श्रीराम केमिकल्स आपको दो विशेष लाभ आमंत्रित करते हैं,
पहला - विभिन्न प्रकार के उपयोगों के लिये विभिन्न ग्रैंड में उत्तम
पी०वी०सी० - दूसरा श्रीराम पी०वी०सी० के नवीन उपयोगों के बारे में
निःशुल्क तकनीकी जानकारी।

श्रीराम केमिकल्स के आधुनिक अनुसंधान एवं विशेष तकनीकी सलाहकारों
की सहायता से आप विभिन्न प्रकार की नवीन उपयुक्ती वस्तुएं तैयार कर
सकते हैं।



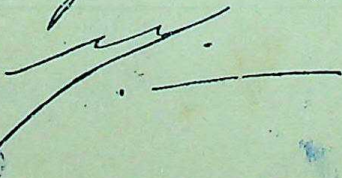
श्रीराम केमिकल्स

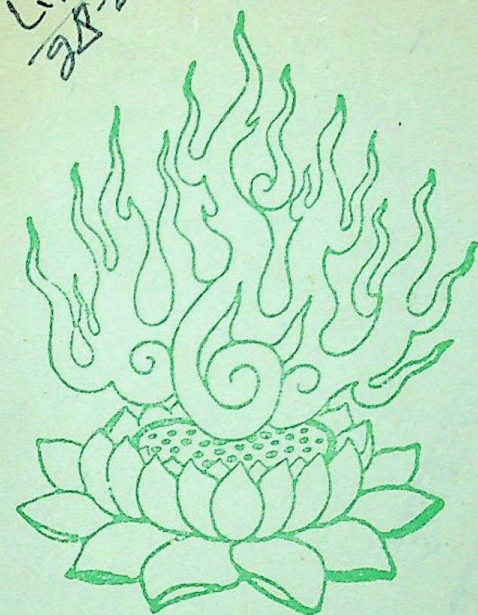
Let the Divine Presence
be always with you.
my blessings



It is by combined
and patient effort
that all good work
is done.

with my blessings





उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

मार्च १९७७

शिक्षा अंक

वर्ष ७, अंक ८, पूर्णांक ८०

(श्रीअरविंद सोसायटी और ऐक्शनकी सम्मिलित मासिक पत्रिका)

सूची

संपादकीय : शिक्षा — एक विहंगम दृष्टि	१
शिक्षाका उद्देश्य	१
शिक्षा	११
मनकी शिक्षा	१५
शिक्षाका आधार	२४
दो आवश्यकताएं	२६
अपने-आपको जानना	२७
अध्ययनमें मनोयोग	२९
सोसायटी समाचार	३२

(प्रायः सभी लेख श्रीमाताजीके हैं, जहां श्रीअरविंदके उद्धरण हैं वहां उनका नाम दे दिया गया है।)

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोहिता एवं अग्निशिक्षा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

संपादकीय :

शिक्षा — एक विहंगम दृष्टि

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो उसके कई रूप हमारे सामने आते हैं। ओनामासिधं, दो एकन दो, दो दूनी चारसे लेकर बड़े-बड़े विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के चित्र हमारी आंखों के आगे घूम जाते हैं। कहीं खेल-कूद को भी शिक्षा का अंग माना जाता है, यद्यपि गौण अंग, और कहीं “पढ़ोगे-लिखोगे तो होगे नवाब और खेलोगे-कूदोगे तो होगे गंवार” की सीख दी जाती है। एक बात में प्रायः सभी सहमत हैं : शिक्षा जीवन के शुरू के वर्षों में ही दी जाती है और अमुक समय तक चलती है; लेकिन माताजी सारे जीवन को ही शिक्षा मानती हैं। उनका आश्रम एक बड़ा शिक्षणालय है जिसमें स्त्री-पुरुष, सभी अपने-अपने ढंग की शिक्षा पा रहे हैं।

हमारे जीवन में चार तत्त्वों की प्रधानता है : शरीर, प्राण, मन और चैत्य। इनमें से हर एक को अपने-अपने ढंग की शिक्षा की जरूरत होती है। कोई भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बच्चों को खेल-कूद बहुत पसंद होता है इसलिये हम शारीरिक शिक्षा को ही सबसे पहले लेते हैं। माताजी ने इसपर बहुत बल दिया है। बरसों तक वे इसके लिये रोज कई-कई घंटे खर्च किया करती थीं। उनका कहना है कि शारीरिक शिक्षा के लिये कभी यह नहीं कहा जा सकता कि इसे शुरू करने का समय नहीं आया और कभी यह नहीं कहा जा सकता कि अब इससे क्या होगा। हां, हर स्तर पर रूप अलग हो सकते हैं। शारीरिक शिक्षा में तीन बातें जरूरी हैं : १—शरीर की क्रियाओं को नियंत्रित रखना, २—सभी अंगों को और उनकी क्रियाओं को पूरी तरह से विकसित करना, ३—शरीर में जो कमजोरी या विकार हो उसे दूर करना।

अगर शुरू से ही सावधानी बरती जाय तो बच्चे बहुत सारी

★

मुसीबतोंसे बच जाते हैं। कई बड़े-बड़े विकार जो बड़ी आयुमें बहुत कष्ट देते हैं बचपनकी बुरी आदतोंसे शुरू होते हैं, ठीक तरह उठना-बैठना, चलना आदि प्रारंभिक शारीरिक शिक्षणके अंग हैं। शरीरको अपनी स्वाभाविक स्थितिमें मालूम होता है कि उसके लिये क्या ठीक है और क्या गलत। लेकिन हम उसको सहज रूपमें फैसला करने ही नहीं देते।

माताजीके अनुसार प्राणकी शिक्षाके दो मुख्य तत्त्व हैं: पहला, इंद्रियोंका विकास; दूसरा, अपने स्वभावको जानना और बदलना। यूं तो हम पांच ही ज्ञानेंद्रियोंसे परिचित हैं पर जाननेवालोंका कहना है कि इनकी संख्या सातसे बारह तक हो सकती है। कुछ लोग हाथसे छूकर इंचके हजारवें हिस्सेतककी मोटाईका फर्क बता सकते हैं; आंखसे देखकर सैकड़ों फुट ऊंची दीवारकी ठीक-ठीक ऊंचाई बता सकते हैं। हाथमें उठाकर रस्ती-भर भारका फर्क बता सकते हैं। हमारी परिचित ज्ञानेंद्रियां भी ठीक प्रशिक्षण पायें तो बहुत कुछ कर सकती हैं। रेड इंडियन जमीनपर कान लगाकर जान लेते थे कि शत्रु सेना कितनी दूर है। कुछ लोगोंमें ये चीजें जन्मजात होती हैं और कुछ प्रशिक्षणके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

मन अपने उचित और अनुचित विचार शरीरपर लादता है। प्राण भी कहता है: "मुझे यह पसंद नहीं, वह मैं नहीं चाहता," और बेचारे शरीरको उनकी सहनी पड़ती है। छोटी अवस्थासे ही बच्चेको यह सिखाना चाहिये कि वह शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये खाता है, उसे भूखके अनुसार खाना चाहिये और ठूसनेकी प्रवृत्तिसे बचना चाहिये। कई बच्चोंमें यह आदत होती है कि अगर वे घर पर किसीसे नाराज हो जायें तो झट भूख-हड़ताल कर देंगे या अगर किसी कारण बहुत प्रसन्न हो गये तो भूखको देखे बगैर खूब खाते रहेंगे। कई ऐसे भी होते हैं जो क्रोधमें या दुःखमें अधिक भकोस लेते हैं। उन्हें सिखाना चाहिये कि भोजनका उपयोग पुरस्कार या दंडके रूप में नहीं करना चाहिये।

शिखा मार्च १९७७

३

आयुमें वचपनमें ही सफाईका ख्याल अच्छी आदतके रूपमें पैदा हो जाना चाहिये, बीमारी या दंडके भयसे नहीं। माताजी बताती हैं कि हम जिस चीजसे डरते हैं उसके लिये अपने दरवाजे खोल देते हैं। वच्चेको यह बताना चाहिये कि स्वस्थ शरीर बहुत बड़ी निधि है। ध्यान आकर्षित करने या सहानुभूति पानेके लिये बीमारीका बहाना करना या उसे पोसना बिल्कुल गलत है; दुर्बलता, कोमलता या नजाकतताका नहीं, हीनताका लक्षण है।

जैसे ही बालक अपने अंगोंका उपयोग करने लगे वैसे ही उसे थोड़ी-बहुत कसरतकी आदत डलवाना चाहिये, ताकि जोड़ोंमें सख्ती न आने पाये। खुली हवामें कसरत करना पचासों दवाएं खानेसे कहीं अधिक अच्छा है।

केवल कसरत काफी नहीं है, साथ ही आराम भी होना चाहिये। इस बातका ध्यान रखो कि कोई भी काम करते हुए तुम्हारी स्नायुओंमें तनाव न आये। वचपनमें कम-से-कम आठ घंटेकी नींद जरूरी है। आधी रातसे पहलेकी नींद पिछली रातकी नींदसे ज्यादा अच्छी होती है। बहुत देरतक जागना और उत्तेजनामें ही सो जाना कभी हितकर नहीं होता। घरका काम भी इस तरह न करो कि वह भार बन जाय। कामके लिये वच्चोंमें हीनताका भाव न होना चाहिये, लेकिन यह भी जरूरी है कि वह उनके लिये हौआ न बने।

स्वस्थ रखनेके साथ-साथ शरीरको सुन्दर भी बनाना चाहिये, लेकिन यह कपड़े-लत्तोंका या प्रसाधनका सौंदर्य न हो। शरीरके अंगोंमें संतुलन हो, सामंजस्य हो, उसकी त्रुटियोंको दूर किया जाय तो स्वाभाविक सौंदर्य निखर आता है। इन चीजोंको जितनी छोटी आयुमें शुरू किया जाय उतना ही अच्छा। बड़े होकर ज्यादा परिश्रम और ज्यादा धीरजकी जरूरत होती है।

अब आयी प्राणकी बारी। प्राण वह तत्त्व है जहांसे हमारी इच्छाएं, हमारे भाव, संवेदन, गुस्सा, घृणा, प्रेम, बहादुरी, डर आदि

निकलते हैं। अधिकतर कविता, चित्रकला, संगीत, नाच आदिकी प्रेरणा भी यहीसे आती है। माताजी कहती हैं कि प्राणकी शिक्षा सबसे ज्यादा जरूरी है लेकिन लोगोंने इसकी ओर सबसे कम ध्यान दिया है। बहुत-से लोग यह मानते हैं कि सुख पाना ही जीवनका लक्ष्य है — “यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।” वे चाहें जिस मूल्यपर इस समय सुख पाना चाहते हैं, भले उसके लिये पीछे रोना क्यों न पड़े। लेकिन यह सच्ची बात नहीं है। दुनिया जिसे सुख मानती है वह तो पशुओंका-सा जीवन है, उससे कुछ ज्यादा जटिल। साधारण जीवनका लक्ष्य है कर्तव्य-पालन और जरा ऊँचे जीवनका लक्ष्य है अपने अंदरकी चेतनाको जगाना और सत्य-को प्राप्त करना।

दूसरी बड़ी भूल यह है कि लोग समझते हैं कि मानव स्वभावको बदलना असंभव है। यह कुत्तेकी दुम बारह वर्ष गाड़नेपर भी टेढ़ी ही रहेगी, लेकिन यह भी गलत है। सचाईके साथ प्रयास किया जाय तो स्वभाव जरूर बदल सकता है। माताजी कहती हैं कि जैसे दुनियामें प्रकाश और छाया साथ-साथ रहते हैं उसी तरह आदमीके स्वभावमें परस्पर विरोधी चीजें साथ-साथ रहती हैं, कभी एक सामने आती है कभी दूसरी। हम देखते ही हैं कि कुछ लोग एक दिशामें बहुत उदार होते हैं और दूसरी दिशामें बहुत कृपण। ऐसे बहादुरोंकी बातें सुनी हैं जो बिल्लीसे डरते थे। जीवन हमारे अंगेरे पक्षको सामने लाकर उसे बदलनेका अवसर देता है। साधारण आदमी जिवर प्रकृति हांक दे उधर ही चल पड़ता है, लेकिन अगर प्राणको भली-भांति शिक्षा दी जाय तो वह बहुत सुन्दर बन सकता है।

स्वभाव बदलनेके लिये साधारणतः त्याग, निग्रह, कठोर तप आदिका प्रयोग किया जाता है। इनसे तुरंत लाभ भले दीख जाय पर त्रुटिका निराकरण नहीं होता। चीज नीचे धंस जाती है, फिर असावधानीके समय पत्थर फोड़कर निकलती है। हम

पुरानी कथाओंमें देखते हैं कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि काम और क्रोधके आवेगोंके बश हो जाते थे। इसका कारण निग्रह ही होता है। हमें निग्रह नहीं, शोधन करना चाहिये। इसके लिये कई तरीके हैं, कोई समझ-बूझके द्वारा अपने अंदर यह इच्छा जगाता है कि उसके अंदर अमुक प्रकारके आवेग न उठने पायें, कोई प्रतिष्ठा और स्व-मानके विचारद्वारा अपने-आपको छायाके क्षेत्रसे दूर रखता है। सबसे अच्छी तरकीब तो यही है कि अपने अंदर विद्यमान चैत्य पुरुषकी सहायतासे प्राणको शुद्ध किया जाय। ललित कलाएं प्राणके प्रशिक्षणके लिये उपयोगी होती हैं, पर उसकी शुद्धि तो चैत्य ही कर सकता है।

जैसे-जैसे बच्चेकी समझ बढ़ती जाय उसे यह भी सिखाना चाहिये कि वह सुन्दर, असुन्दर और कुरूपमें भेद कर सके, सामंजस्य लाने-वाली चीजोंका स्वागत करे और उल्टी चीजोंको दूर रखे। बच्चेके अंदर सुरुचि पैदा की जाय और यह आदत डाली जाय कि वह काम-चलाऊ वृत्तिसे कभी संतुष्ट न हो, हर काम ठीक जैसा होना चाहिये वैसा ही करे। सच्ची सौंदर्य-वृत्ति हमें बहुत-सी गंदी, कुत्सित वस्तुओंसे बचाती है, क्रूरता या अशिष्टता आदिको पास नहीं फटकने देती, उसके अंदरसे कुलीनता झलकती है।

अब आती है मानसिक शिक्षा। आजकल जिसे शिक्षा कहा जाता है उसे हम उसके अच्छे-से-अच्छे रूपमें भी लें तो भी वह मानसिक कसरतसे बढ़कर कुछ नहीं है। जानकारीयोंका ढेर लगा देना या तोता-श्रुत करना शिक्षा नहीं है। माताजी कहती हैं कि मनकी शिक्षामें पांच तत्त्व मुख्य होने चाहिये : १ — एकाग्रताकी क्षमता; २ — फैलाव, विस्तार और समृद्धिकी क्षमता; ३ — विचारोंको किसी विचारके इर्द-गिर्द इकट्ठा कर सकना; ४ — विचारोंका संयम, तुम जो सोचना चाहते हो वही सोचो; ५ — मनको शांत और नीरव करनेकी क्षमता, ताकि तुम ऊपरसे आनेवाली प्रेरणाको भली-भांति पकड़ सको।

यहां इन सबकी भली-भांति व्याख्या करना तो संभव नहीं है, पर मोटे रूपमें इन्हें समझनेकी कोशिश कर सकते हैं। साधारणतः बच्चेके अंदर, शायद अधिकतर लोगोंके अंदर, विचार तितलियोंकी तरह इधर-उधर उड़ते फिरते हैं और उन्हें एकाग्र करना बहुत कठिन होता है, लेकिन हर एकमें, कम या ज्यादा, यह क्षमता होती जरूर है। हम देखते हैं, बच्चेका किसी बातमें मन लग जाय तो वह वहांसे उठनेसे इनकार कर देता है। तुम्हें अपने मनको किसी-न-किसी तरीकेसे एकाग्र करना सीखना चाहिये। अगर तुम मनको एकाग्र कर सको तो फिर कोई भी विषय तुम्हारे लिये कठिन नहीं रहता। तुम हर समय, हर स्थितिमें कुछ-न-कुछ सीख सकते हो। इसके लिये तुम्हारे अंदर बारीकीसे देखनेकी क्षमता होनी चाहिये। तथ्य रटनेकी ऐसी आवश्यकता नहीं है। उन्हें समझ सकना ज्यादा जरूरी है। अगर तुम्हारे अंदर समझनेकी क्षमता है तो हर विषय रोचक हो सकता है, तुम जीवनमें हर कदमपर कुछ-न-कुछ सीख सकते हो। विभिन्न विषयोंका सीखना बहुत उपयोगी है पर साथ-ही-साथ एक ही चीजको अनेक पहलुओंसे भी देखनेकी आदत डालो ताकि हाथी और सात अंघोंवाली कहानी न दोहरायी जाय। इससे दिमागकी कट्टरतासे बचा जा सकता है, हम हमेशा जिद्दी बनकर मुरगीकी एक टांगपर नहीं डट जाते। मन ज्यादा उदार और नमनीय बनता है।

अपने मनको बाजार न बनने दो जहां विचारोंकी बेतहाशा भीड़ लगी रहा करे। मनको नीरव रहना सिखाया जाय। उसमें वही विचार प्रवेश पा सकें जिन्हें तुम अनुमति दो। शांतिसे मनको आराम मिलता है, उसकी काम करनेकी शक्ति बढ़ती है और वह अच्छी तरह विकसित हो सकता है। दिनमें कुछ समय नियमित रूपसे शांत और नीरव रहनेकी कोशिश करो।

और अंतमें आती है चैत्य और आध्यात्मिक शिक्षा। कहीं, किसी शिक्षा-प्रणालीमें इसकी बात नहीं की जाती। इसके बारेमें कुछ

कहना है भी ज्यादा कठिन। हम संक्षेपमें इसे भी छूते चलेंगे। जिनमें ज्यादा जाननेकी रुचि हो वे माताजीकी पुस्तक "शिक्षा" देख सकते हैं।

हर आदमीके अंदर एक अंगुष्ठमात्र सत्ता या चैत्य पुरुष होता है। यह एक प्रकारका प्रकाश है जिसपर मन, प्राण एक मोटा-सा परदा डाले रहता है और हमें इसका पता भी नहीं होता। कई वच्चोंमें यह प्रकाश बहुत स्पष्ट होता है लेकिन दुर्भाग्यवश माता-पिता और अध्यापक अपने अज्ञानके कारण इसे आगे नहीं आने देते। चैत्य सच्चे ज्ञानको पा सकता है, जो चीजें मनके द्वारा नहीं जानी जा सकतीं उन्हें यह आसानीसे जान सकता है और इसके द्वारा हम वहांतक पहुंच सकते हैं जो हमारे जीवनका आधार है, जीवनका सत्य है, जिसे धार्मिक लोग भगवान् कहते हैं। चैत्य ही अपनी नियतिका स्वामी होता है। इसे पानेके लिये हरएकको अपना ही रास्ता बनाना पड़ता है। अगर कोई सच्चा गुरु मिल जाय तो यह सौभाग्यकी बात है।

साधारण आदमी अपने जीवनमें सबसे अलग-थलग, अहंके छोटे-से घेरेमें बंद रहता है, लेकिन चैत्यके साथ परिचय हो जाय तो सीमाएं टूट जाती हैं, मनुष्य हर चीजको अपने अंदर और अपने-आपको हर चीजमें अनुभव करता है। तब पत्थर जड़ नहीं रह जाता, पशु-पक्षी मूक नहीं रहते, वनस्पति भी अपना रहस्य खोल देती है। इसे पाना कठिन है, यह भय भी रहता है कि हम किसी गलत चीजको ही न पकड़ बैठें।

आध्यात्मिक बातोंके बारेमें फैसला कर लेना असंभव है इसलिये अपने मनको हठ करनेका अवसर न दो। माताजीने कुछ छोटे-मोटे गुर बताये हैं जो प्रारंभके लिये बहुत उपयोगी हैं। अपने निजी सुख-सुविधाको ही जीवनका लक्ष्य न बना लो। तुम्हारे अंतर-में एक छोटी-सी ज्वाला है, उसे प्रज्वलित करो और उसकी सहायतासे अंधकारको चीरकर आगे बढ़ो। यह ज्वाला विकासमें सहायता

देगी और अवांछनीय चीजोंको जलाकर भस्म कर देगी। तुम्हारे सामने कोई अप्रिय वस्तु आ जाय तो दुःखी या क्रुद्ध होनेकी जगह शांत रहो और यही मानो कि यह तुम्हें समता सिखानेके लिये आयी है। जो भी काम करना हो उसे खुशीसे करो, लेकिन खुशीको लक्ष्य मानकर कोई काम न करो। चीजोंके बाहरी रूपको देखकर ही अपनी राय न बना लो, यह जानो कि इनके पीछे एक महान् प्रजा छिपी हुई है।

अपने लक्ष्यको हमेशा याद रखो। तुम्हें सत्यकी खोज करनी है, उसे पाना है। खाना खाओ तो पहले यह सोच लो कि यह तुम्हारे शरीरको पुष्ट बनायेगा और तुम्हें अपनी खोजमें सहायता देगा; सोने लगे तो पहले याद कर लो कि तुम्हें उस ओर जाना है, नींद तुम्हारी स्नायुओंको बल दे और सोते समय भी तुम अपने मार्गपर आगे बढ़ सको; बोलनेसे पहले तुम्हारी यही चाह हो कि तुम व्यर्थ-के शब्द न बोल जाओ। पग-पगपर तुम्हें यह ख्याल रहे कि तुम्हें उस ओर बढ़ना है। तुम्हारे जीवनका लक्ष्य एक ज्योतिर्मय गहड़-की तरह तुम्हारे सिरपर घूमता रहे और तुम्हारी हर गति-विधिको मार्ग दिखा सके। इस तरह करनेसे तुम्हारे अंदरके दरवाजे खुल जायेंगे।

लेकिन माताजी शिक्षाका कहीं अंत नहीं मानतीं। ये तो नीचेसे ऊपर उठनेवाली शिक्षा हुई। इसके बाद आयेगी अतिमानसिक शिक्षा जो ऊपरसे उतरकर हमारी उंगली पकड़कर अतिमानवताके मार्गपर ले जायेगी।

तो अभीतक जो हमने किया है और कर रहे हैं वह तो जो करना है उसकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।

श्रीअरविंद और माताजीने शिक्षाके बारेमें बहुत कुछ कहा है। हम पाठकोंके आगे उनमेंसे कुछ उद्धरण रख रहे हैं।

शिक्षाका उद्देश्य

श्रीअरविंद :

“मानव मनकी दिव्य पूर्णता हमारा लक्ष्य है । इसलिये हमें पहले यह जानना चाहिये कि समग्र पूर्णता कौन-से तत्त्वोंसे बनती है । दूसरी चीज यह कि हमारी सत्ताकी मानव पूर्णतासे पृथक् ऐसी कौन-सी चीज है जिसे हम दिव्य पूर्णता कहते हैं। सारी चितनशील मानव जातिमें हर एक व्यक्ति अपने मनके द्वारा सोचकर एक आदर्श निश्चित कर सकता है और वहांतक पहुंचनेके लिये अपने-आपको विकसित कर सकता है । यद्यपि ऐसे बहुत ही कम होते हैं जो जीवनके इस महत्वपूर्ण लक्ष्यकी ओर ध्यान भी देते हों।”
(योग-समन्वयके आधारपर)

माताजी :

“जाननेके लिये सीखना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंको जाननेके लिये अध्ययन करना, अपनी चेतनाको विकसित करनेके लिये अपने-आपको शिक्षा देना, अपना स्वामी बननेके लिये, अपनी कमजोरियों, अक्षमताओं, और अज्ञानपर विजय प्राप्त करनेके लिये, जीवनमें ज्यादा उत्कृष्ट, विशाल, उदार और सच्चे लक्ष्यकी ओर बढ़ सकनेके लिये तैयारी करना . . .।”

★

“सफलताको लक्ष्य मत बनाओ, हमारा लक्ष्य है पूर्णता । याद रखो कि तुम एक नये जगत्की देहलीपर हो, उसके जन्ममें भाग ले रहे हो और उसके सर्जनमें यंत्र-रूप हो। रूपांतरसे बढ़कर महत्वपूर्ण चीज कुछ नहीं है । कोई लाभ इससे बढ़कर मूल्यवान नहीं है।”

★

माताजीने श्रीअरविदाश्रममें एक शिक्षा-केन्द्रकी स्थापना की थी। उसके बारेमें किसीने पूछा :

प्र. हमारे शिक्षा-केंद्रका उद्देश्य और सच्चा लक्ष्य क्या है ? क्या केवल श्रीअरविदकी रचनाएं पढ़ाना ही हमारा उद्देश्य है ? सभी या कुछ रचनाएं ? या विद्यार्थियोंको श्रीअरविद तथा माताजीकी पुस्तकें पढ़ सकनेके लिये तैयार करना ही हमारा लक्ष्य है ?

माताजीका उत्तर था : “ये किताबें या कुछ और किताबें पढ़ सकनेके लिये तैयार करनेका सवाल नहीं है। सवाल है उन सबको विचार, भावना और क्रियाकी सामान्य मानवी रुढ़िसे बाहर खींचनेका जो इसके लिये समर्थ हों। जो लोग यहां हैं उन्हें मानवी ढंगसे सोचने और कार्य करनेके तरीकेकी गुलामीसे छुटकारा पानेके अवसर प्रदान करना। जो लोग सुनना चाहते हैं उन्हें यह सिखाना कि जीनेका एक दूसरा ज्यादा सच्चा तरीका है, कि श्रीअरविदने हमें यह सिखाया है कि कैसे जीया जाय और सच्ची सत्ता बना जाय, कि यहांकी शिक्षाका लक्ष्य है बच्चोंको उस जीवनके लिये तैयार करना और उसके योग्य बनाना।

“बाकी सबके लिये, मानवी ढंगसे सोचने और रहनेके लिये संसार बहुत बड़ा है और वहां सबके लिये जगह है।

“हमें सख्या नहीं चाहिये — हमें चाहिये चयन। हमें प्रतिभाशाली विद्यार्थी नहीं चाहिये, हम जीती-जागती आत्माएं चाहते हैं।”
१०.२.६० (एक अध्यापकको लिखी गयी चिट्ठीसे)

★

इसी विषयपर माताजी एक और जगह कहती हैं :

“हम यहां केवल उन्हींको चाहते हैं जो एक ज्यादा ऊंचे और अच्छे जीवनके लिये अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णताकी

प्यास है, जो तीव्रताके साथ एक ज्यादा समग्र रूपसे सच्चे भविष्यकी ओर ताकते हैं।”

★

“हमें यह जानना चाहिये और इसकी घोषणा करनेमें संकोच नहीं करना चाहिये कि हमारा विद्यालय ऐसे लोगोंको खोजने और प्रोत्साहित करनेके लिये है जिनमें प्रगतिकी आवश्यकता जीवनके मार्ग-दर्शनकी हृदयक सचेतन हो गयी है।”

★

“हम एक ऐसी जाति चाहते हैं जिसमें अहम् न हो, जिसमें अहम्की जगह दिव्य चेतना हो।

“हम यही चाहते हैं। वह दिव्य चेतना जो जातिको विकसित होनेका और अतिमानसिक सत्ताको जन्म लेनेका अवसर देगी।”

शिक्षा

मनुष्यकी शिक्षा उसके जन्मकालसे ही आरंभ हो जानी चाहिये और उसके समूचे जीवन-भर चलती रहनी चाहिये। बल्कि, सच पूछा जाय तो, यदि शिक्षाको अत्यधिक मात्रामें फलदायक होना हो तो उसे जन्मसे पहले ही आरंभ हो जाना चाहिये। वास्तवमें स्वयं माता ही इस शिक्षाका प्रारंभ द्विविध क्रियाके द्वारा करती है: सबसे पहले यह अपनी निजी उन्नतिके लिये उसे स्वयं अपने ऊपर आरंभ करती है, और फिर उस बच्चेके ऊपर आरंभ करती है जिसे

वह अपने अंदर स्थूल रूपमें गड़ती है। यह बात निश्चित है कि जन्म लेनेवाले बच्चेका स्वभाव बहुत कुछ उसे उत्पन्न करनेवाली मातापर, उसकी अभीप्सा और संकल्पपर निर्भर रहता है और जिस भौतिक वातावरणमें वह निवास करती है उसका प्रभाव तो पड़ता ही है। जो शिक्षा मांको प्राप्त करनी है उसके लिये यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि उसके विचार सदा सुंदर और शुद्ध हों, भाव उच्च और सूक्ष्म तथा चारों ओरका वातावरण यथासंभव सुसमंजस और अत्यंत सादगीसे भरा हुआ हो। और अगर इसके साथ ही वह चेतन और निश्चित रूपमें यह इच्छा भी रखे कि वह जिस ऊंचे-से-ऊंचे आदर्शको धारण कर सकती है उसीके अनुसार वह बच्चेको बनायेगी तो बच्चेको संसारमें आनेके लिये खूब उत्तम अवस्थाएं प्राप्त होंगी और उसके लिये अधिक-से-अधिक संभावनाएं खुल जायेंगी। भला ऐसी अवस्थामें कितने अधिक कठिन प्रयासों और निरर्थक जटिलताओंसे बचा जा सकता है !

शिक्षाके पूर्ण होनेके लिये उसमें पांच प्रधान पहलू होने चाहिये। इनका संबंध मनुष्यकी पांच प्रधान क्रियाओंसे होगा — भौतिक, प्राणिक मानसिक, आंतरात्मिक और आध्यात्मिक। साधारणतया शिक्षाके ये सब पहलू व्यक्तिके विकासके अनुसार, एक-के-बाद-एक करके, कालक्रमसे आरंभ होते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि एक पहलू-दूसरेका स्थान ले ले, बल्कि सभी पहलुओंको, जीवनके अतकालतक परस्पर एक-दूसरेको पूर्ण बनाते हुए जारी रहना चाहिये।

.... इस विषयके विस्तारमें जानेसे पहले मैं माता-पिताओंको एक सलाह देना चाहती हूं। इनमें अधिकतर लोग विभिन्न कारणोंसे बच्चोंकी सच्ची शिक्षाके विषयमें बहुत कम सोचते हैं। जब उन्होंने संसारमें एक बच्चेको जन्म दे दिया, उसके भोजनका प्रबंध कर दिया तथा उसका स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये लगभग काफी अच्छे ढंगसे देखभाल रखते हुए उसकी विभिन्न भौतिक आवश्यकताएं पूरी कर दीं, तब वे समझ लेते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभा

मांच
दिया
उसकी
कु
शिक्षा
हैं।
और
कि व
कर्तव्य
अपने
सामने
के द्वा
उदाह
केवल
बहुत
निष्का
स्थिर
अपेक्षा
जाते
उसी
बच्चा
जो-जो
आप
अपने
एकदम
होते
करनेव
बहु
विचार

दिया है। कुछ दिन बाद वे उसे स्कूलमें प्रविष्ट करा देंगे और उसकी मानसिक शिक्षाका भार अध्यापकके हाथोंमें सौंप देंगे।

कुछ माता-पिता ऐसे भी हैं जो यह जानते हैं कि उनके बच्चोंको शिक्षा मिलनी चाहिये और वे उसे शिक्षा देनेकी चेष्टा भी करते हैं। पर उनमेंसे बहुत थोड़े लोग — जो इस विषयमें अत्यंत तत्पर और सच्चे होते हैं उनमेंसे भी बहुत थोड़े लोग — यह जानते हैं कि बच्चोंको शिक्षा देनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सबसे पहला कर्तव्य है अपने-आपको शिक्षा देना, अपने विषयमें सचेतन होना और अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित करना जिससे कि हम अपने बच्चोंके सामने कोई बुरा उदाहरण न पेश करें। क्योंकि एकमात्र उदाहरणके द्वारा ही शिक्षा फलदायी बनती है। यदि हम अपने जीवन्त उदाहरणके द्वारा अपनी सिखायी बातोंका सत्य उसे न दिखा दें तो केवल अच्छी बातें कहने और बुद्धिमानोंका परामर्श देनेका बच्चेपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है; सच्चाई, ईमानदारी, स्पष्टवादिता, साहस, निष्कामभाव, निःस्वार्थता, धैर्य, सहनशीलता, अध्यवसाय, शांति, स्थिरता, आत्म-संयम आदि सभी ऐसे गुण हैं जो सुंदर भाषणोंकी अपेक्षा अनंतगुना अधिक अच्छे रूपमें अपने उदाहरणके द्वारा सिखाये जाते हैं। माता-पिताओ! एक ऊंचा आदर्श अपने सामने रखो और उसी आदर्शके अनुकूल सर्वदा कार्य करो। तुम देखोगे कि तुम्हारा बच्चा भी धीरे-धीरे उस आदर्शको अपने अंदर ला रहा है और जो-जो गुण तुम उसके स्वभावमें देखना चाहते हो उन्हें वह अपने-आप अभिव्यक्त कर रहा है। यह अत्यंत स्वाभाविक है कि बच्चे अपने माता-पिताके प्रति आदर और भक्ति-भाव रखते हैं, अगर वे एकदम अयोग्य ही न हों तो, वे अपने बच्चोंको देवता जैसे प्रतीत होते हैं और बच्चे यथाशक्ति उत्तम-से-उत्तम रूपमें उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा करते हैं।

बहुत थोड़े लोगोंको छोड़कर, प्रायः सभी माता-पिता इस बातका विचार नहीं करते कि उनके दोषों, आवेगों, दुर्बलताओं और आत्म-

संयमके अभावका उनके बच्चोंपर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा तुम्हारा आदर करे तो अपने लिये आदर-भाव रखो और प्रत्येक मुहूर्त सम्मानके योग्य बनो। कभी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, असहिष्णु और क्रोधित मत होओ। जब तुम्हारा बच्चा तुमसे कोई प्रश्न पूछे तब तुम, यह समझकर कि वह तुम्हारी बात नहीं समझ सकता, उसे जड़ता और मूर्खताके साथ कोई उत्तर मत दो। अगर तुम थोड़ा कष्ट स्वीकार करो तो तुम सदा ही उसे अपनी बात समझा सकोगे। इस प्रसिद्ध उक्तिके होते हुए भी कि सत्य बोलना सदा अच्छा नहीं होता, मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूँ : "सत्य बोलना सदा अच्छा होता है।" चतुराई केवल इस बातमें है कि उसे इस ढंगसे कहा जाय कि सुननेवालेका मस्तिष्क उसे ग्रहण कर ले। जीवनके प्रारंभिक कालमें बारहसे चौदह वर्षकी अवस्थातक, बच्चोंका मन सूक्ष्म भावनाओं और सामान्य विचारोंतक नहीं पहुँच पाता। फिर भी तुम ठोस उपमा, रूपक या दृष्टांत द्वारा ये सब चीजें समझनेका अभ्यास उसे करा सकते हो। काफी बड़ी उम्रतक और जो लोग मानसिक रूपसे सदा ही छोटे बने रहते हैं उन लोगोंके लिये सैद्धांतिक विवेचनके एक ढेरकी अपेक्षा एक आख्यान, एक कथानक, यदि अच्छे ढंगसे कहा जाय तो, अधिक शिक्षाप्रद होता है। एक भूलसे तुम्हें और बचना होगा। जबतक कोई निश्चित उद्देश्य न हो और एकदम अनिवार्य न हो जाय तबतक कभी अपने बच्चेको बुरा-मला मत कहो। बार-बार डाँट-फटकार खानेसे बच्चा उसके प्रति कुंद हो जाता है और फिर वह शब्दों और स्वरकी कठोरताको बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता। विशेषकर इस बातकी सावधानी रखो कि ऐसे अपराधके लिये, जिसे तुम स्वयं करते हो, उसे कभी मत डाँटो। बच्चेकी दृष्टि बड़ी पैनी और साफ होती है, वे बहुत जल्दी तुम्हारी दुर्बलताओंका पता लगा लेते हैं और उन्हें बिना किसी दया-भावके नोट कर लेते हैं।

जब बच्चा कोई भूल कर बैठे तो अपनी ओरसे ऐसा वातावरण

मार्च १९७७

उत्पन्न कर दो कि वह अपने-आप सरलता और सच्चाईके साथ उसे स्वीकार कर ले। और जब वह स्वीकार कर ले तब तुम दयालुता और प्रेमके साथ उसे समझा दो कि उसके कार्यमें क्या भूल थी और उसे फिर दुबारा वैसा नहीं करना चाहिये। किसी भी हालतमें उसे बुरा-भला मत कहो, स्वीकार किये हुए अपरात्रको अवश्य क्षमा कर देना चाहिये। तुम्हें अपने और अपने बच्चेके बीच किसी प्रकारका भय नहीं घुसने देना चाहिये, भयके द्वारा शिक्षा देना बड़ा खतरनाक तरीका है, यह सदा ही छल-कपट और असत्य-को उत्पन्न करता है। स्पष्टदर्शी, सुदृढ़, पर साथ ही कोमल प्रेम और पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान विश्वासका बंधन पैदा करते हैं जो तुम्हारे बच्चेकी शिक्षा फलदायी बनानेके लिये अत्यंत आवश्यक होता है। और फिर यह कभी न भूलो कि तुम्हें अपने कर्तव्यके शिखर-पर स्थित रहने तथा उसे वास्तविक रूपमें निभानेके लिये सदा और निरंतर ऊपर उठना होगा। बच्चेको जन्म देनेके नाते ही तुम्हें उसके प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिये।

(‘शिक्षा’ पुस्तकसे)

मनकी शिक्षा

सब प्रकारकी शिक्षाओंमें सबसे अधिक प्रचलित है मनकी शिक्षा। तो भी, कुछ एक अपवादोंको छोड़कर, साधारणतः इसमें ऐसे छिद्र रह जाते हैं जो इसे बहुत ही अपूर्ण और अंतमें एकदम निरर्थक बना देते हैं।

मौटे तौरपर हम कह सकते हैं कि शिक्षाका अर्थ लोग समझते हैं मनकी आवश्यकीय शिक्षा। बच्चेको कुछ वर्ष एक कठोर शिक्षा-पद्धतिके अनुसार शिक्षा दे चुकनेपर, जो मस्तिष्कको प्रबुद्ध करनेकी

अपेक्षा कहीं अधिक उसमें ज्ञान-सामग्रीको ठूस देती है, हम समझ लेते हैं कि उसके मानसिक विकासके लिये जो कुछ करना आवश्यक था वह पूरा हो गया। पर बात ऐसी नहीं है। अगर शिक्षा समुचित मात्रामें और विचार-विवेकके साथ दी भी जाती है और वह मस्तिष्कको कोई हानि नहीं भी पहुंचाती, तो भी वह मानव मनको वे सब क्षमताएं नहीं दे पाती जो उसे एक इच्छा और उपयोगी यंत्र बनानेके लिये आवश्यक हैं। साधारणतया जो शिक्षा बच्चोंको दी जाती है वह, अधिक-से-अधिक, शारीरिक व्यायामकी तरह मस्तिष्ककी नमनीयताको बढ़ा सकती है। इस दृष्टिकोणसे देखें तो, मानवी विद्याकी प्रत्येक शाखा ही एक विशेष प्रकारका मानसिक व्यायाम होती है, और इन सब शाखा-प्रशाखाओंमेंसे प्रत्येकके अंदर जिस शब्दावलीका प्रयोग किया जाता है वह उस शाखाकी अपनी विशेष और सुनिश्चित भाषा होती है।

मनकी सच्ची शिक्षाके, उस शिक्षाके जो मनुष्यको एक उच्चतर जीवनके लिये तैयार करेगी, पांच प्रधान अंग हैं। साधारणतया ये अंग एक-के-बाद एक आते हैं, पर विशेष व्यक्तियोंमें वे अदलबदलकर या एक साथ भी आ सकते हैं। वे पांच अंग, संक्षेपमें, इस प्रकार हैं:

१. एकाग्रताकी शक्तिका, मनोयोगकी क्षमताका विकास करना।
२. मनको व्यापक, विशाल, बहुविध और समृद्ध बनानेकी क्षमताएं विकसित करना।
३. जो केंद्रीय विचार या उच्चतर आदर्श या परमोज्ज्वल भावना जीवनमें पथप्रदर्शकका काम करेगी उसे केंद्र बनाकर समस्त विचारोंको सुसंगठित, सुव्यवस्थित करना।
४. विचारोंको संयमित करना, अनिष्ट विचारोंका त्याग करना जिससे मनुष्य अंतमें, जैसा चाहे तैसा और जब चाहे तब विचार कर सके।
५. मानसिक निश्चलताका, परिपूर्ण शांतिका और सत्ताके उच्च-

मार्च १९७७

तर क्षेत्रोंसे आनेवाली अंतःप्रेरणाओंको अधिकाधिक पूर्णताके साथ ग्रहण करनेकी क्षमताका विकास करना ।

शिक्षाके इन अंगोंको कार्यान्वित करनेके लिये भिन्न व्यक्तियोंके लिये जिन पद्धतियोंका व्यवहार किया जा सकता है उन सबका पूरा व्योरा देना तो यहाँ संभव नहीं है, पर फिर भी कुछ व्याख्यात्मक सूचनाएं दी जा सकती हैं ।

यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि बच्चेकी मानसिक उन्नतिको जो चीज सबसे अधिक बाधा पहुंचाती है वह है उसके विचारोंका निरंतर विक्षिप्त होते रहना । बालकका विचार तितलीकी तरह इधर-उधर उड़ता रहता है और उसे एकाग्र करनेके लिये उसे अपनी ओरसे महान् प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है । और फिर भी यह क्षमता उसमें गुप्त रूपसे विद्यमान है । क्योंकि जब तुम किसी चीजमें उसकी दिलचस्पी पैदा कर पाते हो तब वह काफी हदतक ध्यान जमानेमें समर्थ हो जाता है । अतएव, यह शिक्षककी चतुराईपर निर्भर है कि वह धीरे-धीरे बच्चेके अंदर ध्यान जमानेके लिये निरंतर एक समान प्रयास करने और कोई कार्य करते समय उसमें अधिकाधिक पूर्णताके साथ डूब जानेकी क्षमता और योग्यता पैदा करे । ध्यान एकाग्र करनेकी इस क्षमताको विकसित करनेवाले सभी साधन अच्छे हैं; आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार खेलेसे आरंभ कर पारितोषिकतक सभी काममें लिये जा सकते हैं । पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण चीज है मनोवैज्ञानिक क्रिया । सर्वप्रधान साधन यह है कि जो चीज हम बच्चेको सिखाना चाहते हैं उसमें उसकी दिलचस्पी उत्पन्न कर दें, कार्य करनेकी रुचि, उन्नति करनेकी इच्छा जगा दें । बच्चेको देने योग्य सबसे मूल्यवान् उपहार यही है कि हम उसमें सीखनेका अनुराग, सर्वदा और सर्वत्र सीखनेका अनुराग पैदा कर दें । उसके लिये जीवनकी सभी परिस्थितियां, सभी घटनाएं अधिक और

सदा अधिकाधिक सीखते रहनेके लिये नित्य नवीन अवसर बन जायं।

इसके लिये सजगता और एकाग्रताके अतिरिक्त निरीक्षण, यथार्थ अंकन तथा विश्वस्त स्मरण-शक्ति भी पैदा करनी चाहिये। निरीक्षणकी क्षमताका विकास विभिन्न प्रकारके और स्वाभाविक अभ्यासोंके द्वारा, बच्चेके विचारको सजग, सतर्क और स्फूर्तिमान बनाये रखनेमें सहायता देनेवाले सभी सुअवसरोंका उपयोग करके किया जा सकता है। स्मरण-शक्तिकी अपेक्षा उसकी बोध-शक्ति बढ़ानेपर बहुत अधिक बल देना चाहिये। मनुष्य केवल वही कुछ जानता है जिसे वह समझता है। जो चीज मनुष्य यंत्रकी तरह रट लेता है वह धीरे-धीरे धुंधली होती जाती है और अंतमें विलीन हो जाती है। जो कुछ तुम समझ जाते हो उसे तुम कभी नहीं भूलते। कोई भी चीज कैसे और क्यों होती है यह बच्चेको समझानेमें तुम्हें कभी आनाकानी नहीं करनी चाहिये। अगर तुम स्वयं न समझ सको तो तुम्हें उसे किसी ऐसे व्यक्तिके पास भेज देना चाहिये जो उसका उत्तर देने योग्य ज्ञान रखता हो। अथवा उस प्रश्नसे संबंध रखनेवाली पुस्तकें दे देनी चाहिये। वस, इसी तरह तुम धीरे-धीरे बच्चेमें सच्चे अध्ययनकी रुचि तथा ज्ञान-प्राप्तिके लिये अथक प्रयत्न करनेकी आदत जगा सकते हो।

इस तरह स्वभावतः ही हम विकासके दूसरे स्तरमें आ जायेंगे जहांपर मन अपनेको विस्तारित और समृद्ध बनायेगा।

जैसे-जैसे बच्चा उन्नति करे वैसे-वैसे तुम उसे यह दिखलाओगे कि किस प्रकार प्रत्येक चीज अध्ययनका सुन्दर विषय बन सकती है बशर्ते कि प्रश्नपर ठीक ढंगसे विचार किया जाय। प्रत्येक दिन, प्रत्येक मुहूर्त्तका जीवन समस्त पाठशालाओंसे बढ़कर होता है; वह होता है बहुविध और जटिल, अदृष्टपूर्व अनुभवोंसे, समाधानके लिये प्रस्तुत समस्याओंसे, स्पष्ट और प्रभावक उदाहरणोंसे तथा प्रत्यक्ष परिणामोंसे भरा पूरा। अगर तुम बच्चोंके पूछे हुए असंख्य प्रश्नोंका बुद्धिमानी तथा स्पष्टताके साथ उत्तर दे सको तो उनमें बड़ी

मार्च १९७७

आसानीसे एक स्वस्थ-सुन्दर खोजकी वृत्ति जगायी जा सकती है। कोई भी मजेदार उत्तर अपनी शृंखलामें अन्यान्य चीजोंको खींच ले आता है और बच्चा, अपना ध्यान आकृष्ट होनेके कारण, बिना किसी प्रयासके ही बहुत अधिक, पाठशालामें बैठकर साधारणतया जो कुछ सीखता है उससे बहुत अधिक सीख जाता है। सावधानी तथा बुद्धिमानीके साथ पुस्तकोंका चुनाव करनेसे ही बच्चेमें लाभदायी चीजें पढ़नेकी रुचि उत्पन्न होती है जो कि एक साथ ही शिक्षाप्रद और आकर्षक होती है। फिर तुम्हें ऐसी किसी चीजसे डरना नहीं चाहिये जो बच्चेकी कल्पना-शक्तिको जगाती है और संतुष्ट करती है : वास्तवमें कल्पना ही वह चीज है जो सर्जनशील मानसिक वृत्तिको विकसित करती है तथा यही वह चीज है जो अध्ययनको एक सजीव वस्तु बना देती है और जिससे मन आनन्दके साथ वर्द्धित होता है।

मनकी नमनीयता और विशालता बढ़ानेके लिये हमें केवल अनेक और बहुविध विषयोंके अध्ययनकी ओर ही नहीं, बल्कि विशेषकर, एक ही विषयपर विभिन्न दिशाओंसे विचार करनेकी ओर ध्यान देना चाहिये। ऐसा करनेसे बालक व्यावहारिक तरीकेसे यह समझ जायगा कि एक ही बौद्धिक समस्याका सामना, निपटारा तथा समाधान करनेके बहुतेरे रास्ते हैं। इस तरह उसका मस्तिष्क सब प्रकारकी कठोरताओंसे मुक्त हो जायगा। और साथ-ही-साथ उसकी चिंतन-शक्ति अधिक समृद्ध तथा नमनीय हो जायगी और कहीं अधिक बहुमुख एवं व्यापक समन्वयके लिये तैयार हो जायगी। इस तरीकेसे बच्चेमें यह भाव भी भरा जा सकता है कि मानसिक ज्ञान अत्यंत आपेक्षिक वस्तु है और फिर धीरे-धीरे ज्ञानके एक अधिक सच्चे उद्गमके लिये उसमें अभीप्सा जगायी जा सकती है।

निःसंदेह जैसे-जैसे बच्चा अपने अध्ययनमें अग्रसर होता है और उम्रमें बड़ा होता है, वैसे-वैसे उसका मन भी परिपक्व होता है और सामान्य भावनाओंको ग्रहण करनेमें अधिकाधिक सक्षम होता है; और फिर इसके साथ-साथ सदैव निश्चयात्मक भावकी आवश्यकता

उपन्न हो जाती है, एक ज्ञानकी आवश्यकता महसूस होती है जो इतना अधिक स्थायी हो कि उसे आधार बनाकर एक मानसिक रचना तैयार की जा सके — ऐसी रचना तैयार की जा सके जो मस्तिष्कमें एकत्र हुई सभी भिन्न और अस्त-व्यस्त और बहुधा विरोधी भावनाओंको सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध करने दे। निश्चय ही, यदि हम अपने विचारोंकी अस्त-व्यस्ततासे बचना चाहें तो उन्हें इस प्रकार क्रमबद्ध करना बहुत ही आवश्यक है। सभी विरोधी चीजें प्रतिपूरक चीजोंमें रूपांतरित हो सकती हैं; पर उसके लिये हमें एक ऐसी उच्चतर भावनाको ढूँढ निकालना होगा जो उन्हें सुसमंजस बनानेमें समर्थ हो। यह सदा ही अच्छा है कि सभी समस्याओंपर संभाव्य सभी दृष्टिकोणोंसे विचार किया जाय; इससे हम पक्षपात और संकीर्णतासे बच जाते हैं। पर अगर हमारे विचारको सक्रिय और सृष्टिक्षम होना हो तो उसे, प्रत्येक क्षेत्रमें, गृहीत सभी दृष्टिकोणोंका एक स्वाभाविक और युक्तिसंगत समन्वय होना चाहिये। अगर तुम्हें अपने सभी विचारोंको एक साथ शक्तिशाली तथा निर्माणकारी शक्तिका रूप देना हो तो तुम्हें अपने मानसिक समन्वयकी केंद्रीय भावनाको चुननेमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये; क्योंकि उसीके ऊपर तुम्हारे समन्वयका मूल्य निर्भर करेगा। जितनी ही ऊंची और विशाल तुम्हारी केंद्रीय भावना होगी और जितनी ही अधिक वह विश्वजनीन होगी, काल और देशसे ऊपर उठी हुई होगी, उतनी ही बहुसंख्यक और जटिल भावनाओं, धारणाओं और विचारोंको वह सुव्यवस्थित और सुसमंजस बनानेमें समर्थ होगी।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि व्यवस्थित करनेका कार्य तुरत पूरा-का-पूरा नहीं किया जा सकता। मनको, अगर उसे अपने बल और यौवनको बनाये रखना है, तो नित्य-निरंतर उन्नत होना होगा, सभी नये-नये ज्ञानोंके प्रकाशमें अपनी मान्यताओंको सुधारते रहना होगा, नयी मान्यताओंको शामिल करनेके लिये अपने क्षेत्रको बढ़ाना होगा और उसके लिये अपने विचारोंको फिरसे श्रेणीबद्ध और सुसंगठित

करना होगा जिससे कि उनमेंसे प्रत्येक विचारको, दूसरोंके साथ उसके संबंधको देखते हुए, अपना समुचित स्थान प्राप्त हो और इस तरह समूचा विचार-समुदाय सुसमंजस और सुव्यवस्थित हो जाय।

परंतु हमने अबतक जो कुछ कहा है वह सब चिंतनशील मनसे संबंध रखता है, उस मनसे संबंध रखता है जो ज्ञानार्जन करता है। पर ज्ञानार्जन मानसिक कार्यका केवल एक अंग है। कम-से-कम इतना ही प्रधान दूसरा अंग है रचनात्मक वृत्ति, रूप देखनेकी क्षमता और इसलिये कार्यके लिये तैयारी करनेकी क्षमता। मानसिक कार्यके इस अंशको, यद्यपि यह है बहुत ही महत्त्वपूर्ण, बहुत कम लोगोंने ही विशेष अध्ययन या अनुशीलनका विषय बनाया है। केवल वही लोग जो किसी कारणवश अपनी मानसिक क्रियाओंपर कठोर नियंत्रण करना चाहते हैं, इस रचनात्मक वृत्तिका निरीक्षण और अनुशासन करनेकी बात सोचते हैं। और फिर, जब वे इसके लिये प्रयास करने लगते हैं तब ऐसी महान् कठिनाइयां उनके सामने खड़ी हो जाती हैं जो अलंघ्य प्रतीत होती हैं।

फिर भी मनकी इस रचनात्मिका क्रियाके ऊपर संयम स्थापित करना आत्म-शिक्षणका अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। यहांतक कहा जा सकता है कि इसके बिना किसी भी प्रकारका मानसिक प्रभुत्व पाना संभव नहीं। अध्ययनका जहांतक संबंध है, सभी विचार स्वीकार करने योग्य हैं और उन सबको उस समन्वयके अंदर ले आना चाहिये जिसका कार्य ही होगा अधिकाधिक समृद्ध और बहुविध होना; पर, कार्यका जहांतक संबंध है, बात इससे एकदम भिन्न होगी। जिन विचारोंको हम स्वीकार करेंगे उन्हें कार्य रूपमें परिणत करनेके लिये हमें उनपर कठोर संयम स्थापित करना होगा। हमारे मानसिक समन्वयके आधारभूत केंद्रीय विचारका साधारण झुकाव जिस ओर हो, उसीके साथ मेल खानेवाली भावनाओंको हमें कार्य रूपमें अभिव्यक्त होने देना चाहिये। इसका अर्थ होता है कि हमारी मानसिक चेतनामें जो भी विचार प्रवेश करे उसे हमें केंद्रीय भावना-

के सामने ला रखना चाहिये; और अबतक एकत्र किये हुए विचारों-को बीचमें अगर उस विचारको अपना समुचित स्थान प्राप्त हो जाय तो उसे समन्वयके अंदर शामिल करना चाहिये; अगर उसे अपना समुचित स्थान प्राप्त न हो तो उसे बाहर फेंक देना चाहिये जिससे कि वह कार्यके ऊपर कोई भी प्रभाव न डाल सके। मानसिक पवित्रीकरणका यह कार्य खूब नियमित रूपसे करना चाहिये और तभी अपने कार्योंके ऊपर हमारा पूर्ण अधिकार सुरक्षित रह सकता है।

उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उत्तम यह है कि थोड़ा-सा समय दैनिक रूपमें नियत रखा जाय जब कि हम अपने विचारोंको चुपचाप देखें और अपने समन्वयके भीतर यथास्थान सजाकर रखें। एक बार जहां इस बातकी आदत पड़ गयी कि फिर तुम अपने विचारोंके ऊपर, कार्यादिके भीतर भी, संयम बनाये रख सकोगे और इस योग्य हो जाओगे कि जो कार्य तुम कर रहे हो उसके लिये जो विचार उपयोगी नहीं हैं उन्हें सामने न आने दें। विशेषकर, यदि सजगता और एकाग्रताकी शक्तिको निरंतर बढ़ाया जाय तो हमारी बाह्य सक्रिय चेतना केवल उन्हीं विचारोंको आने देगी जिनकी आवश्यकता होगी और तब वे सब-के-सब अधिक शक्ति-संपन्न और फलोत्पादक हो जायेंगे। अगर, एकाग्रता तीव्र हो जाने-पर, यह आवश्यक हो कि चित्तन विलकुल किया ही न जाय, तो समस्त मानसिक प्रकंपन बंद करके प्रायः पूर्ण निश्चल-नीरवता प्राप्त की जा सकती है। इस निश्चल-नीरवताके अंदर मनुष्य धीरे-धीरे उच्चतर मानस क्षेत्रोंकी ओर खुल सकता है और वहांसे जो अंतः-प्रेरणा आती है उन्हें स्मरण रखना सीख सकता है।

परंतु इस अवस्थाके प्राप्त होनेसे पहले भी निश्चल-नीरवता अपने-आपमें अत्यंत उपयोगी चीज है। जिन लोगोंका मन कुछ विकसित और क्रियाशील होता है उनमेंसे अधिकांशका मन कभी शांत नहीं रहता। दिनके समय, उसकी क्रियापर एक प्रकारका संयम रहता है,

मार्च १९७७

पर रातके समय, शरीरकी निद्राकी अवस्थामें, जाग्रत अवस्थाके संयमके प्रायः संपूर्ण रूपमें हट जानेपर, मन अत्यधिक क्रियाशील हो जाता है और उसकी सारी क्रियाएं बहुधा असंबद्ध होती हैं। इसके कारण मनपर एक प्रकारका जोर पड़ता है जो अंतमें थकावट ले आता है और मानसिक शक्तियोंको कम कर देता है।

असली बात यह है कि मानव सत्ताके अन्य सभी भागोंकी तरह मनको भी विश्रामकी आवश्यकता होती है और उसे यह विश्राम तबतक नहीं मिल सकता जबतक कि हम यह न जान लें कि यह दिया कैसे जाता है। अपने मनको विश्राम देनेकी कला एक ऐसी चीज है जो हमें अवश्य आयत्त करनी चाहिये। मनको विश्राम देनेका एक तरीका है मनके कार्यको बदलते रहना; परंतु सबसे अधिक विश्रामकी संभावना विद्यमान है निश्चल-नीरवताके अंदर। जहांतक मानसिक वृत्तियोंका संबंध है, निश्चल-नीरवताकी शांतिमें कुछ मिनट बितानेका अर्थ होता है घंटों सोनेकी अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायी विश्राम लेना।

जब हम अपनी इच्छानुसार मनको निश्चल-नीरव बनाना और ग्रहणशील निश्चल-नीरवतामें उसे एकाग्र करना सीख जायंगे तब ऐसी कोई समस्या नहीं रह जायगी जिसे हम हल न कर सकें, कोई ऐसी मानसिक कठिनाई नहीं रह जायगी जिसका कोई समाधान न प्राप्त हो जाय। जब विचार चंचल होता है तब वह अस्त-व्यस्त और शक्तिहीन हो जाता है; सजग शांतिके अंदर ही ज्योति प्रकट हो सकती है और मनुष्यकी क्षमताओंके नवीन क्षेत्रोंको उन्मुक्त कर सकती है।

शिक्षाका आधार

एक और गुण है जिसे बच्चोंमें बचपनसे ही विकसित करना चाहिये। वह है अस्वस्थताकी, नैतिक असंतुलनकी वह भावना जो तब आती है जब उसने अमुक चीजों की हों। यह भावना सजाके डरसे नहीं बल्कि सहज रूपसे आती है। उदाहरणके लिये, एक बच्चा शराबतसे अपने एक मित्रको चोट पहुंचाता है। अगर वह अपनी सामान्य और स्वाभाविक अवस्थामें है तो उसे अपनी सत्ताकी गहराईमें दुःख महसूस होगा क्योंकि उसने अपने आंतरिक सत्यके विरुद्ध काम किया है।

क्योंकि सारी शिक्षाओंके वावजूद, सभी विचारोंके वावजूद, गहराईमें कोई ऐसी चीज है जिसमें पूर्णताकी, उत्कृष्टताकी और सत्यकी भावना रहती है और दुर्भाग्यवश इस सत्यकी विरोधी सभी गतिविधियां उस चीजका खंडन करती हैं। बच्चा अपने वातावरणसे, अपने इर्द-गिर्दके बुरे उदाहरणोंसे विकृत न हुआ हो, अगर वह अपनी सामान्य सहज अवस्थामें हो तो अपनी सत्ताके सत्यके विपरीत कोई चीज करनेपर उसे बेचैनी महसूस होती है। और बादमें चलकर ठीक इसी जगह उसे प्रगतिके प्रयासका आधार बनाना चाहिये।

क्योंकि अगर तुम किसी ऐसी शिक्षा या ऐसे सिद्धांतको खोजना चाहो जो तुम्हारी प्रगतिका आधार बने तो तुम्हें कभी कुछ न मिलेगा। बल्कि तुम्हें कोई और चीज मिलेगी क्योंकि जलवायु, काल और सभ्यताके अनुसार शिक्षाओंमें परस्पर विरोध होता है। जब एक तुमसे कहता है: "यह ठीक है," तो दूसरा कहता है: "यह बुरा है," — और वह भी उसी तर्क और आग्रहके साथ। फलस्वरूप उसको नींव नहीं बनाया जा सकता। धर्मने हमेशा एक सिद्धांत स्थापित करनेकी कोशिश की है। वह तुमसे कहेगा कि अगर तुम सिद्धांतके अनुसार चलो तो तुम सत्यके पक्षमें होओगे

वरना मिथ्यात्वके पक्षमें। लेकिन यह चीज कहीं नहीं पहुंचाती केवल गड़बड़ ही पैदा करती है।

एक ही सच्चा पथप्रदर्शक है और वह है 'आंतरिक पथप्रदर्शक' जो मानसिक चेतनामेंसे नहीं गुजरता।

स्वभावतः अगर किसी बच्चेको हानिकारक शिक्षा मिली है तो वह अपने अंदर उस सच्ची चीजको अधिकाधिक बुझानेकी कोशिश करेगा। कभी-कभी तो वह इतना सफल हो जाता है कि उस चीजके साथ और विवेकके साथ सारा संपर्क खो बैठता है। इसीलिये मैं उसपर जोर दे रही हूं और कहती हूं कि एकदम छोटी उमरसे बच्चोंको यह सिखाया जाना चाहिये कि एक आंतरिक सद्वस्तु है — उनके अपने अंदर, पृथ्वीके अंदर और विश्वके अंदर। उन्हें यह भी सिखाया जाना चाहिये कि वे खुद, पृथ्वी और विश्व इस सत्यके क्रिया-कलाप हैं, कि यह सत्य न हो तो वे टिक न सकेंगे, जितनी देर रहते हैं उतनी भी नहीं और हर एक चीज आकार लेते ही धूल जायगी। और चूंकि यही विश्वका प्रभावशाली आधार है इसलिये स्वभावतः इसीकी जीत होगी। और जो कुछ उस सनातन वस्तुका विरोध करता है, जो विश्वकी नींव है, वह इसके सामने टिक नहीं पाता।

स्वभावतः बच्चेको दार्शनिक व्याख्याएं देनेसे काम न चलेगा। लेकिन हम उसे भली-भांति इस प्रकारके आंतरिक सुखकी, संतोषकी और कभी-कभी एक ऐसी खुशीकी भावना दे सकते हैं जो इस अंतःस्थित मौन और छोटी वस्तुकी बात माननेपर जागती है। वह वस्तु उसे अपने विरुद्ध कोई चीज करनेसे रोकेगी। हम इस प्रकारकी अनुभूतिको शिक्षाका आधार बना सकते हैं।

दो आवश्यकताएं

यदि धीमे क्रमविकासके स्थानपर हठात् कोई ऐसी चीज प्रकट हो जाय जो अतिमानसिक जगत्की हो तो मनोमय जीव, मनुष्य उसे चमत्कार कह सकता है, क्योंकि वह एक ऐसी चीजका हस्तक्षेप होगा जिसे वह अपने अंदर ज्ञानपूर्वक धारण नहीं करता और जो उसके सचेतन जीवनमें हस्तक्षेप करती है। और यथार्थमें, चमत्कारों-के प्रति जो यह रुझान है, जो बहुत प्रबल है — जो लोग मानसिक रूपमें बहुत अधिक विकसित हैं उनकी अपेक्षा बच्चोंमें तथा बच्चों जैसा हृदय रखनेवालोंमें बहुत अधिक प्रबल है — उसकी ओर यदि तुम दृष्टिपात करो तो तुम्हें पता चलेगा कि यह 'परम अद्भुत' — सामान्य जीवनमें प्राप्त होने योग्य किसी भी चीजसे बहुत अधिक ऊंची किसी चीज — की अभीप्साकी सिद्धिमें विश्वास है।

वास्तवमें, शिक्षामें हमें सर्वदा दो समानांतर प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहित करना चाहिये। पहली है, 'परमाश्चर्यमय'के लिये तरसनेकी प्रवृत्ति, उस चीजकी प्यास जो अप्राप्य प्रतीत होती है, जो तुम्हें दिव्यत्वकी भावनासे भर देती है। परंतु इसके साथ-ही-साथ, जब हम संसारकी ओर, जैसा कि यह है, देखें तो हमें यथार्थ शुद्ध, सच्चे निरीक्षणको उत्साहित करना चाहिये, पूरे व्योरेकी यथार्थताके लिये समस्त कल्पनाओंको दूर करने, निरंतर संयम रखने, एक अत्यंत व्यावहारिक, अत्यंत सतर्क विवेकशीलतापर जोर देना चाहिये। ये दोनों बातें समानांतर चलनी चाहिये। सामान्यतया, तुम इस विचारसे एकको मार देते हो कि यह दूसरेको बढ़ानेके लिये आवश्यक है। परंतु यह एकदम गलत है। ये दोनों साथ-साथ रह सकती हैं और एक ऐसा क्षण भी है जब मनुष्यको यह देखनेका पर्याप्त ज्ञान रहता है कि ये दोनों एक ही वस्तुके दो पक्ष हैं और वही है दिव्य दृष्टि, उच्चतर विवेक। उस समय एक सीमित दर्शन और दिव्य दृष्टिके

स्थानपर हमारा विवेक एकदम सच्चा, शुद्ध, यथातथ्य बन जाता है, पर वह विशाल होता है और अपने अंदर एक ऐसे समूचे क्षेत्र-को लिये रहता है जो अभीतक ठोस अभिव्यक्तिका अंग नहीं है।

शिक्षाके दृष्टिकोणसे यह बात बहुत महत्वपूर्ण होगी।

संसार जैसा है, उसे ठीक-ठीक वैसा ही स्थूल रूपमें, अत्यंत पार्थिव और ठोस ढंगसे देखना तथा जैसा वह हो सकता है उसे एक अत्यंत मुक्त, अत्यंत ऊंची, अत्यधिक आशा और अभीप्सा और अद्भुत निश्चयतासे भरी हुई सूक्ष्म-दृष्टिसे देखना — ये दोनों विवेक-शक्तिके दो ध्रुवके समान छोर हैं। हम अत्यंत महान्, अत्यंत अद्भुत, अत्यंत सशक्त, अत्यंत अर्थपूर्ण और अत्यंत संपूर्णके रूपमें जिसकी कल्पना कर सकते हैं वह उसके मुकाबले कुछ नहीं है जो यह हो सकता है और इसके साथ-ही-साथ व्योरेमें जो हमारी छोटी-से-छोटी यथार्थता होगी वह कभी पर्याप्त यथार्थ नहीं होगी। और ये दोनों एक साथ रहने चाहिये। जब मनुष्य इसे (नीचेकी ओर संकेत) जानता है और उसे (ऊपरकी ओर संकेत) जानता है तब वह दोनोंको साथ रखनेमें समर्थ होता है।

मातृवाणी, खंड १० (विचार और सूत्र, पृ० १७०)

अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना

हर एक जीवंत प्राणीके लिये अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना बहुत मूल्यवान है। “अपने-आपको जानना”से मेरा मतलब है अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका उद्देश्य जानना,

अपने अंदर जो कुछ चल रहा हो उसके क्यों और कैसेको जानना आत्म-संयमका मतलब है अपने आवेगों, इच्छाओं और सनकोंपर कान न देकर, उनकी बात न मानकर वही करना जो तुमने निश्चय किया है।

यह स्पष्ट है कि बच्चेको नैतिक विधान देना बहुत ठीक नहीं है। लेकिन उनकी उपेक्षा करना भी कठिन है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाय, उसे नैतिक और सामाजिक विधानोंकी सापेक्षता सिखानी चाहिये। उसे यह भी सिखाना चाहिये कि वह अपने अंदर एक ज्यादा सच्चा और ऊंचा विधान ढूँढ सकता है। लेकिन यहां सावधानीसे आगे बढ़ना चाहिये और इस सच्चे विधानको ढूँढनेकी कठिनाईपर जोर देना चाहिये। अधिकतर मनुष्य जो मानवी विधानोंको अस्वीकार करते हैं, जो यह कहते हैं कि अपना जीवन बितानेके लिये उन्हें खुली छूट है, वे केवल अपने प्राणकी सबसे साधारण गति-विधियोंका ही अनुसरण करते हैं, वे प्राणको लुब्ध रूप देकर न्यायोचित ठहरानेकी, अपनी आंखोंमें नहीं और न दूसरोंकी आंखोंमें कोशिश करते हैं। वे नीतिको केवल इसी कारण लात मारते हैं क्योंकि वह उनके आवेगोंकी पूर्तिमें बाधा डालती है।

तुमहें नैतिक और सामाजिक विधानोंका मूल्यांकन करनेका अधिकार तभी प्राप्त होता है जब तुम उनसे परे जा चुके हो। और उन्हें तभी छोड़ा जा सकता है जब उनके स्थानपर कोई और ज्यादा ऊंची चीज हो। यह आसान नहीं है।

हर हालतमें बच्चेको देने लायक सबसे बढ़िया उपहार है उसे अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना सिखाना।

अध्ययनमें मनोयोग

माताजी, यह प्रश्न इसलिये उठता है कि हम अपने स्कूलकी पढ़ाई में कभी-कभी बहुत अधिक अरुचि अनुभव करते हैं, और अपने-आपसे कहते हैं: इस सबका क्या उपयोग है? अतः, किस मनोभावके साथ हमें अध्ययन करना चाहिये?

मैंने हमेशा कहा है कि अध्ययनका मस्तिष्कपर वही प्रभाव पड़ता है जो व्यायामका मांसपेशियोंपर पड़ता है। उदाहरणार्थ, अपनी मानसिक क्रियाशीलताको सुनम्य बनाने, उसे सशक्त और विस्तारित करने तथा उसे समझनेकी एक ऐसी बारीक शक्ति देनेके लिये जिसे वह तुम्हारे इन व्यायामोंके किये बिना प्राप्त न कर पाती, मानसिक व्यायाम बहुत आवश्यक है। अभी कुछ दिन पहले (निस्संदेह काफी दीर्घकाल पहलेसे ही), मैंने ध्यान दिया है, उदाहरणार्थ, कि यदि दुर्भाग्यवश मुझे दार्शनिक शब्दोंसे भरी कोई चीज तुम्हारे सामने पढ़नी पड़ती है या किचित् दार्शनिक दृष्टिकोणके बारेमें तुमसे चर्चा करनी पड़ती है तो तुम समझ नहीं पाते। और इसका कारण महज यह है कि तुमने दार्शनिक व्यायाम नहीं किया है। इसका कारण यह नहीं है कि तुम बुद्धिमान् नहीं हो, इसका कारण यह नहीं कि तुम्हारे अंदर समझनेकी योग्यता नहीं; इसका कारण यह है कि तुमने समुचित व्यायाम नहीं किया है। मैं इसी बातको दूसरे ढंगसे कह सकती हूँ: तुमने भाषा नहीं सीखी है। परंतु वास्तवमें शब्द वे ही व्यवहृत होते हैं, केवल उनके बीच थोड़ा-सा भिन्न संबंध होता है। वाक्योंका मोड़ कुछ भिन्न होता है, वस्तुओंके प्रति एक प्रकारका भिन्न मनोभाव होता है। परंतु मनोभावके इस अंतरको तुम तबतक नहीं पकड़ सकते जबतक कि तुम तदनुरूप व्यायाम नहीं कर लेते। और इस दृष्टांतको समझना तुम्हारे लिये बहुत आसान है, क्योंकि तुम बहुत

अच्छी तरह जानते हो कि यदि तुम प्रशिक्षित न होओ तो तुम कलादात्म्य-खेल-कूदकी क्रियाएं नहीं कर सकते। यदि तुम्हारे अंदर विविध अव और क्षमताएं भी हों, यदि तुम स्वाभाविक रूपसे प्रतिभासंपन्न भी हो, जगत्से यदि तुम अभ्यास न करो और प्रशिक्षित न होओ, तो तुम उन्हें चाहें भी कर सकते। ध्यान दो, अपने सभी द्रुत कलाबाजीके व्यायामों हैं, और यदि पहले ही दिन उन्हें करनेके लिये तुमसे कहा गया होता, तुम्हें कर नहीं कर सकते थे, वह तुम्हारे लिये एकदम असंभव होता, अविपरीत और इसे तुम भली-भांति जानते हो। यदि कोई व्यक्ति सद्बुद्धि के साथ भावसे तुमसे कहता : “आह ! अब इसे करो” — मान लो, करनेके विशेष प्रकारकी कूद, जिसे एक समय कलाबाजी कहते थे — तुम्हें इस सद्बुद्धि कहोगे : “यह आदमी वास्तवमें नासमझ है, यह तो असंभव है ! और पूर्णतः हां, यह वही बात है; यदि मैं अमुक किताबें लूं और तुम्हारे सामने और पढ़ूं तो तुम उन्हें नहीं समझ सकते क्योंकि तुमने पूर्ण रूपसे दार्शनिक यह कहने मानसिक व्यायामोंकी उपेक्षा की है। यह ठीक-ठीक वही बात से करनेके कि जिस व्यक्तित्वने गणित नहीं किया है, उससे यदि किसी गणितज्ञ से जाओ शास्त्रीय तर्कका अनुसरण करनेको कहा जाय तो वह नहीं कि तुम्हें सकेगा...। और इसलिये, उसका तात्पर्य है कि यदि तुम अपने प्रति पूर्णतः सत्ताकी गंभीर सद्बुद्धि को पूरी तरह, सर्वांग रूपसे प्रकट करना चाहो तो तुम उसे तभी बहुत अधिक पूर्ण रूपमें, बहुत अधिक विचार रूपमें, बहुत अधिक लाभदायी रूपमें अभिव्यक्त करोगे जब कि : “नहीं तुम्हारी सत्ताके सभी भाग अपने समुचित व्यायामोंके द्वारा इस ढंग से जो वस्तु पूर्णतः विकसित होंगे। असाधारण

मैं समझती हूं मैं तुम्हें यह बात एक बार पहले समझा चुकी हूं। यदि प्रश्न उस जीवनका होता जो आजतक सच्चा आध्यात्मिक सिद्धिके जीवन माना जाता रहा है, अर्थात् समस्त भौतिक क्रियावली बल्कि पूर्णतः त्याग देनेका होता, ताकि परात्पर दिव्य सद्बुद्धि के विषयमें युक्त हुआ जा सके और इस एकत्वमें बने रहा जा सके, जीव है, यह तथा सभी बाहरी अभिव्यक्तिको त्यागकर निर्वाणमें चले जाने, यह तो ए

तुम को तादात्म्य-स्थितिमें चले जानेका प्रश्न होता जिसे न केवल जगत्में
विशिष्ट अव और अभिव्यक्त नहीं किया जायगा, बल्कि जो तुम्हें पूरी तरह
तो हो जगत्से बाहर ले जाती है, तब यह स्पष्ट है कि ये सब व्यायाम,
उन्हें चाहें भौतिक, प्राणिक, ऐंद्रिय अथवा मानसिक हों, बिल्कुल निरर्थक
यामों हैं, और वे लोग इस सबको महज समयका अपव्यय और एकदम
ता, तुम्हें समझेंगे। परंतु हम लोगोंके लिये, जो लगभग उसके ठीक
ता, विपरीत वस्तुको संसिद्ध करना चाहते हैं, अर्थात्, जो परम सद्बस्तु-
सहके साथ अपना तादात्म्य प्राप्त कर लेनेके बाद, उसे जगत्का रूपांतर
में, करनेके लिये जीवनके अंदर अवतरित कराना चाहते हैं, हम यदि
— तुम्हें इस सद्बस्तुको ऐसे यंत्र दें जो परिमार्जित, क्षमता-संपन्न, सुविकसित
व है। और पूर्णतः सचेतन हो तो रूपांतरका कार्य अधिक फलप्रद होगा।

और यही कारण है कि तुमसे, जब कि तुम एक नन्हें बालक हो,
यह कहनेके बदले कि तुम वही करो (हंसते हुए) जो कि उन बच्चों-
से करनेके लिये कहा गया है, शांत-स्थिर बैठ जाओ और ध्यानमें
डूब जाओ या डूब जानेका दिखावा करो; तुमसे यह कहनेके बदले
ही कि तुम्हें सतत ध्यानावस्थामें बने रहना तथा जगत्की सभी चीजोंके
प्रति पूर्णतः उदासीन बने रहना चाहिये, तुम्हें केवल एक ही विचार,
चाहे भागवत कृपाको ग्रहण करनेके लिये अपने-आपको तैयार करनेका
विचार रखना चाहिये; यह सब कहनेके बदले तुमसे कहा जाता
है : "नहीं, सुविकसित तथा सचेतन व्यक्ति बननेका प्रयास करो,
जो वस्तुओंको जानते-समझते हैं तथा जिन्हें स्वस्थ, सबल, चुस्त तथा
असाधारण कार्य करनेमें सक्षम शरीर, पर्याप्त संकल्प-शक्ति एवं
सामर्थ्यवान्, सुनम्य और सक्रिय मन प्राप्त हो; ये सब चीजें भावी
सिद्धिके लिये उपयोगी होंगी।"

बल्कि यही कारण है कि जो लोग, यह बिना जाने कि वे किस
विषयमें बातें करते हैं, बाहरी रूपोंके आधारपर विचार करनेके आदी
हैं, यह कहते हैं कि इस आश्रममें कोई आध्यात्मिक जीवन नहीं है,
यह तो एक पूर्णतः भौतिक जीवन है। वस, यही कारण है! परंतु

यह उनके लिये कहीं अधिक बुरा है, यह हमारे लिये तनिक भी बुरा नहीं है; हमारे लिये, निस्संदेह, यह एक ही बात है।

अच्छा। और प्रश्न नहीं है? किसीको कुछ कहना नहीं है?

(प्रश्न और उत्तर, १९५६; २१ नवंबर; पृ० ३७८) मातृवाणी, खंड ८

सोसायटी समाचार

२१ फरवरीको माताजीकी निन्यान्वी वर्षगांठ मनायी गयी। सामूहिक क्रिया-कलापमें यह सब हुआ: श्रीअरविंद-कक्षके दर्शन, समाधि-के चारों ओर ध्यान और क्रीड़ांगणमें शारीरिक शिक्षा विभागके सदस्योंकी सलामी। आश्रमके विभागोंकी हाथ-बनी चीजोंकी कई प्रदर्शनियां हुईं।

माताजीके शताब्दी-वर्षके लिये क्या-क्या कार्यक्रम होने चाहिये और उन्हें किस तरह कार्यान्वित किया जा सकता है इसके बारेमें आप कुछ सुझाव दे सकें तो अच्छा है। हमें यह भी बता दीजिये कि आप किस तरह उनमें भाग लेना चाहेंगे और इन प्रयासोंमें किस हदतक सहयोग दे सकेंगे। माताजीके वचनोंको अलग-अलग आकारोंके चित्रित 'पोस्ट कार्ड' पर छपानेका विचार है। हमारे मित्रोंमेंसे जो कलाकार हैं और माताजीके प्रति समर्पण भावसे इस काममें सहयोग देना चाहते हैं वे हमें लिख सकते हैं। कृपया पत्र निम्नलिखित पतेपर भेजिये: श्री ए. एच. महादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ (लिफाफेपर लिखिये: "श्रीमां शताब्दी महोत्सव")। अगर आप इसी महीनेके अंततक सुझाव भेज दें तो हमें बहुत सुविधा रहेगी।

जनवरीमें श्री एम. पी. पंडितने बंबई, पूना और गुजरात तथा

करनाटकके कुछ स्थानोंका दौरा किया। वहां उन्होंने कई भाषण दिये। जैसे 'माताजी — उनका व्यक्तित्व', 'माताजी — उनकी शिक्षा', 'वैश्व मनुष्य', 'मृत्युके बादका जीवन' इत्यादि।

श्री पंडित बंगलौर भी होकर आये और वहांके कई केंद्रों तथा शाखाओंमें भाषण दिये। उनका मुख्य विषय था : 'शिक्षाके बारेमें माताजीके क्रांतिकारी सिद्धांत और श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रमें हो रहे उनके अनुरूप प्रयोग।'।

५ दिसंबर (श्रीअरविंदकी महासमाधिकी वर्षगांठके दिन) कैनेडा-में श्री जी. कृष्णनने श्री सेठनाका लेख 'श्रीअरविंदका महाप्रयाण' पढ़ा। २८ नवंबरको 'सिद्धि' के सिलसिलेमें श्रीअरविंदकी पुस्तक 'सावित्री'मेंसे कुछ उद्धरण पढ़े गये और ओरोविलके बारेमें सिनेमा दिखाया गया।

२२ से २६ जनवरीतक कलकत्तेमें आश्रमकी हाथ-वनी चीजोंकी प्रदर्शनी हुई। २६ जनवरीको बच्चोंके लिये 'वैठो और चित्र बनाओ'की प्रतियोगिता रखी गयी। प्रो. सुबोध मित्रने 'नूतन वर्ष' के संकल्पपर भाषण दिया। और श्री प्रद्योत कुमार मट्टाचार्यने श्रीअरविंदकी पुस्तक 'सावित्री' मेंसे उद्धरण सुनाये।

चरथावल (जिला मुफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश) में उत्तर प्रदेशके सभी केंद्रों और शाखाओंके सचिवोंकी सभा हुई। वहां श्री नलिनी-के इन शब्दोंसे उन्हें प्रेरणा मिली : "अब केवल एक योद्धा होना, यहांतक कि वीर बनना भी पर्याप्त नहीं है ... हमें योगी होना चाहिये। योगी वह कहलाता है जिसने भागवत चेतना या माता-जीकी चेतना प्राप्त की हो।"

चंदुर (महाराष्ट्र)में श्री सीताराम दास बावाने भूमि-पूजा की। क्योंकि श्री जैन परिवारने ध्यान-कक्ष बनानेके लिये वह जगह अर्पित की है। उसके लिये न्यूछावर आ रही है। आशा की जा रही है काम जल्दी ही शुरू हो जायेगा।

खारदा (ओड़िसा) में एक सार्वजनिक सभा हुई जहां श्री कृष्ण

गोपाल दास, प्रो. श्री धीरेंद्र नाथ सतपथी तथा श्री कृष्ण चंद्र महापात्रने भाषण दिये।

टाटा नगर (बिहार) में सोसायटी के केंद्रने तीन दिनका कार्यक्रम-रखा। वहां श्रीअरविंद तथा श्रीमांके बारेमें बहुतोंकी वार्ताएं हुई। इस अवसरपर महिला संगठनने श्रीअरविंदकी जीवनीकी एक प्रदर्शनी की और 'रेलवे ट्रैफिक कालौनी' के बच्चोंने नाच और नाटकका कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

जनवरी ७ वे १० तक श्री शिवाभाई अमीन हैदराबाद रहे। उनकी वार्ताओंका विषय था — 'आजके सदर्ममें श्रीअरविंद।'

एक घोषणा

हमारे बहुत-से सदस्यों और मित्रोंने यह इच्छा प्रकट की है कि माताजीकी जन्म-शताब्दीके लिये और उसके बाद भी जब भी वे आना चाहें तबके लिये पांडिचेरीमें निवासस्थान जरा सुविधापूर्ण हो। इसलिये 'इंटरनेशनल गेस्ट हाउस'में और एक कक्ष बनानेका विचार है। यह अतिथिघर आश्रम तथा भोजनालयके बहुत समीप है और अब ९० अतिथि वहां रह सकते हैं। इस सालके अंततक अगले कक्षको पूरा करनेका विचार है।

जिनको स्नानागार तथा फर्नीचर समेत डबल बेड कमरोंमें रुचि है वे कृपया २०,००० पेशगी भेज दें। सात सालोंमें यह पैसा किस्तोंमें लौटा दिया जायगा। सालभरमें ३० दिन वे वहां निःशुल्क रह सकेंगे। जो पूरे-के-पूरे २०,००० दानके रूपमें देगा उसे सालमें १२० दिनके लिये निःशुल्क एक कमरा अपने मित्रों तथा परिवारके लिये मिलेगा।

इस तरह आपको शताब्दी वर्ष और उसके बाद आवासकी चिंता नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार श्रीअरविंद तथा श्रीमांके कई शिष्योंकी आवास-व्यवस्थामें आप सहायता करेंगे। कमरोंकी संख्या कम है इसलिये आप जल्दी-से-जल्दी लिखियेगा। पता है : श्री गुरु प्रसाद, जनरल सेक्रेटरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी, ६०५००२।

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवाना ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्र. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्ता’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,

अमरावती-४४४६०१

Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013

Shriram Urea a versatile fertiliser is suitable for all crops —



**an ideal nitrogenous fertiliser for
foliar feeding under adverse soil and
climatic conditions even in arid regions !**

Shriram Urea is a versatile and ideal fertiliser because

- It improves the fertility of soil.
- It has the maximum nitrogen content (46.4%).
- It can be used for foliar feeding all crops under adverse soil and climatic conditions.
- It can improve crop yields in arid regions through foliar feeding.

REMEMBER SHRIRAM UREA IS A LOW BIURET PRODUCT !



SHRIRAM CHEMICALS

**AVAILABLE IN
50. KG. BAGS !**

Statement about ownership and other particulars about Hindi Monthly (Agnishikha) to be published in the first issue every year after the last day of February.

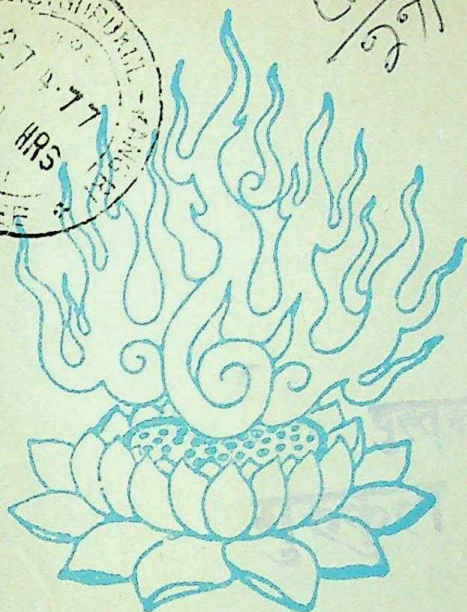
FORM IV (See Rule. 8)

1. Place of Publication : Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry
2. Periodicity of its publication : Monthly
3. Printer's Name : Amiyo Ranjan Ganguli
 Nationality : Indian
 Address : Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
4. Publisher's Name : Secretary, Sri Aurobindo Society
 Nationality : Indian
 Address : Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
5. Editor's Name : Ravindra
 Nationality : Indian
 Address : Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry-605002
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital : Sri Aurobindo Society, Pondicherry-605002.

I, Guru Pershad, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Guru Pershad
 Signature of Publisher

Date: 1 March, 1977



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

अप्रैल ७७

वर्ष ७, अंक १, पूर्णिक ८१

(श्रीअरविंद सोसायटी और ऐक्शनकी सम्मिलित मासिक पत्रिका)

सूची

शताब्दी संदेश

श्रीअरविंदने कहा है : समता

माताजीकी वाणी :

पढ़ाईमें रस

पढ़ाईमें एकाग्रता

शिक्षामें परीक्षाका स्थान

स्फुट वचन

जीवन ऐसा ही होगा

धम्मपद — माताजीकी टिप्पणियों सहित

ऋषिबर बोले : कुछ मौख-भरी कहानियां

सोसायटी समाचार

हमारे अन्य प्रकाशन

दिलका आईना (कहानियां) १.५० बच्चोंके श्रीअरविंद

प्रेमकी विजय (कहानियां) १.५० श्रीअरविंद जीवन और दर्शन

उत्तकी राहपर (कहानियां) १.५० माताजी — एक झलक

नर-नारी १.५० हमारी मां

समयकी आवश्यकता (श्रीअरविंदके राष्ट्रीय लेख)

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

प्र०—
की चीज
पर भी
उदाहरण
यहांतक
जाते हैं
तरीकेसे
और,
क्या कि
पुराने वं

उ०—
भी जिन
हैं, उसमे
मी जिस
के साथ
उपस्थिति

जगत
कोई शि
सत्तासे

★

शताब्दी संदेश

प्र०—आजकल लोग आपके और श्रीअरविंदके प्रतीकोंको हर प्रकार-की चीजोंपर छाप देते हैं, दैनिक जीवनकी छोटी नगण्य चीजों-पर भी जो, एक बार काम खत्म हो जानेपर फेंक दी जाती हैं। उदाहरणके लिये : दियासलाईकी डबिया, पेंसिलें, टूथ ब्रश, कंधियां, यहांतक कि साड़ियोंके किनारेपर भी जो लगभग पैरके नीचे कुचले जाते हैं। क्या इतनी बहुमूल्य चीजोंका इतने खुले और साधारण तरीकेसे उपयोग करना अच्छा है ?

और, माताजी, जब हमें चीजोंकी जरूरत नहीं रहती तो उनका क्या किया जाय ? हम उन्हें फेंक तो नहीं सकते। उदाहरणके लिये, पुराने कैलेंडर, उनके ढेर लगे हैं।

उ०—भगवान् हर जगह विद्यमान हैं, सभी चीजोंमें हैं। उनमें भी जिन्हें हम फेंक देते हैं और उनमें भी जिन्हें हम संजोकर रखते हैं, उसमें भी जिसे हम पैरों तले कुचलते हैं और समान रूपसे उसमें भी जिसकी हम आराधना करते हैं। हमें हर चीजके प्रति आदर-के साथ रहना सीखना चाहिये और भगवान्की सतत और अविकार्य उपस्थितिको कभी न भूलना चाहिये।

*
**

जगत्के इतिहासमें श्रीअरविंद जिसका प्रतिनिधित्व करते हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, न ही वह अंतःप्रकाश है, वह सीधी परम सत्तासे आती हुई एक निर्णायक क्रिया है।

*
**

★

वे घराको अपने ज्योतिर्मय भविष्यकी तैयारी करनेका आदेश देने लिये आये हैं।

[और यही बातें माताजीके बारेमें भी कही जा सकती हैं। —सं०]

श्रीअरविन्दने कहा है :

समता

(अलीपुर जेलमें रहते हुए श्रीअरविन्दको सप्त चतुष्टय प्राप्त हुआ था और उन्होंने उसे जेलसे बाहर आकर, पांडिचेरी जानेसे पहले लिखा था। इसमें संस्कृत सूत्र हैं और अंगरेजी भाष्य। इस भाषा शास्त्रीय है। हम उसके भावको साधारण भाषामें देने का प्रयास कर रहे हैं। —सं०)

शांति चतुष्टय

समता शान्तिः सुखं हास्यमिति शान्ति चतुष्टयम्।

समता : हमारे अंदर शांतिका आधार है समता। बाहरसे आने वाली हर चीजको वह चाहे अच्छी हो या बुरी, प्रीतिकर हो अप्रीतिकर, सुख देनेवाली हो या दुःख, मान लाये या अपमान शरीरकी दृष्टिसे भी गरमी, सर्दी, सबको समान रूपसे सह सकने समता है। समता दो तरहकी होती है : सक्रिय और निष्क्रिय निष्क्रिय समताके बारेमें श्रीअरविन्द कहते हैं :

तितिक्षोदासीनता नतिरिति समता।

तितिक्षा : तितिक्षा है सब प्रकारके सुख या दुःख देनेवाले संपत्ति को दृढ़ताके साथ सह सकना, न तो तकलीफोंके सामने झुक जा

अप्रैल १
और न
दुनिया-भ
उदास
पहुँचना
या तो
ये चीजें
हैं और
नति
समर्पण,
नति ति
हो, पर
उदासीन
ऊपर र
भगवान्
फिर न
जो कुछ
योगीकी
के द्वारा
के, अप
करते हैं
का आन
बुद्धि-यो
की प्रति
सच्चे स
तुम्हारे
मंगलके
तात्काति
वाले क
2

अप्रैल १९७७

और न खुशियोंमें वह जाना । अपने-आप इतना मजबूत होना कि दुनिया-भरके आघातोंको सहा जा सके । यह है तितिक्षा ।

उदासीनता : उदासीनता है द्वंद्वोंके ऊपर उठ जाना । ऐसी जगह जा पहुंचना जहां इच्छा-कामना छू न सके, सुख-दुःख, राग-द्वेष, पसंद-नापसंद या तो आये ही नहीं और अगर आये तो साधकको यह लगे कि ये चीजें उसके मन और शरीरकी हैं, वह अपने-आप इनसे ऊंचा है और ये उसे नहीं छू सकतीं ।

नति : नति है अंतरात्माका पूरी तरह भगवान्‌के प्रति आत्म-समर्पण, भगवान्‌की ओरसे आनेवाली हर चीजको स्वीकार करना । नति तितिक्षाके साथ भी हो सकती है, यानी, दुःखका अनुभव तो हो, पर उसे भी भगवान्‌की इच्छाके रूपमें स्वीकार करना । नति उदासीनताके साथ भी हो सकती है, यानी, साधक इन सब चीजोंसे ऊपर रहे और यह देखे कि सुख-दुःख आदि उसकी निचली सत्तामें भगवान्‌के खेल हैं, उसका अपना इनके साथ कोई संबंध नहीं या फिर नति आनंदके साथ हो सकती है, यानी, साधक यह माने कि जो कुछ है सब श्रीकृष्णकी लीला है और आनंदमय है । यह पूरे योगीकी अवस्था है । भगवान्‌के प्रति इस सतत आनंदमय नमस्कार-के द्वारा हम द्वंद्वोंसे पूरी तरह छुटकारा पा जाते हैं । अपनी सत्ता-के, अपने शरीरके छोटे-से-छोटे नगण्य भागमें भी आनंदका अनुभव करते हैं और भय तथा कष्टसे बिल्कुल मुक्त हो जाते हैं । समता-का आरंभ तितिक्षासे होता है पर सिद्धि आनंदमें होती है । पहले बुद्धि-योगके द्वारा अपने-आपको साधारण अभ्यासगत और स्नायुओं-की प्रतिक्रियाओंसे अलग करो और विचारके द्वारा अपनी सत्ताके सच्चे रूपपर केंद्रित हो — इसका सच्चा रूप आनंदमय है । अब तुम्हारे लिये सभी चीजोंके मूल्य बदल जायेंगे, अमंगल अपने-आपको मंगलके रूपमें प्रकट करेगा, पराजय और असफलतामें भगवान्‌का तात्कालिक उद्देश्य पूरा करने और अंतिम विजयकी ओर ले जाने-वाले कदम होंगे । दुःख और कष्ट, यहांतक कि शारीरिक पीड़ा

भी, जिसे बदलना बहुत कठिन है, हर्षके गुप्त और भ्रष्ट रूप मालूम होंगे। लेकिन यह तब होगा जब तुम जड़-पदार्थ और मनुष्य बंदी न रहकर आधारके हर भागमें आनंदमय आत्माका अनुभव कर सकोगे।

यह तो हुई निष्क्रिय समता। अब सक्रिय समताको लें। यह सभी चीजोंमें, सब अनुभवोंमें सम आनंदसे बनी है। इसकी तीन अवस्थाएं हैं। श्रीअरविद कहते हैं:

रसः प्रीतिरानंद इति सर्वानन्दः।

रस वह स्वाद है जो सृष्टिका बनानेवाला प्रत्येक विषयमें पाता है। प्रीति वह हर्ष है जो हर प्रकारके रससे प्राप्त होता है और आनंद वह दिव्य भोग है जो सब प्रकारके मानसिक हर्षोंसे ऊपर है जिसके द्वारा भगवान् रसका स्वाद लेते हैं। आनंदमें सब प्रकारके द्वंद्व बिल्कुल खतम हो जाते हैं।

समता स्थापित होनेके बाद सच्ची शांति आ सकती है। अगर मनमें जरा भी गड़बड़ या कण्ट हो तो निश्चय जानो कि समता कहींपर त्रुटि है। आदमीका मन बहुत जटिल होता है। हो सकता है कि हम बुद्धिमें तो उदासीनता या नति स्थापित कर लें पर दूसरे भागोंमें विद्रोह, बेचैनी और कुढ़न बनी रहे। बुद्धि, मन, हृदय, स्नायु (प्राण), शरीर आवरणतकको समताके अधीन कर देना चाहिये।

शांति उदासीनतापर आधारित विशाल निष्क्रिय स्थिरता हो सकती है या नतिपर आधारित विशाल आनंदमय स्थिरता। पहला रूप निष्क्रियताकी वृत्तिको पसंद कर सकता है। हमारे योगका चरम बिंदु होना चाहिये नतिपर आधारित शांति।

सुख, दुःख और विषादसे पूरा-पूरा छुटकारा है और यह समता और शांतिके चरितार्थ होनेसे आता है। पूर्णयोगीके अंदर दुःखका लेश भी नहीं होता, अवसादकी वृत्ति नहीं होती, थकान या बादलों

अग्रैल

के लिये
सुखसे

हास

आह्लाद

हिलातव

भगवान्

और कु

मेरे

संकल्पक

तो इस

और प्र

नहीं छे

उसपर

हीरा व

वही व

लिये ए

होगा, स

जो है

उदा

अच्छी

होगी व

रिज्ञाना

पर तुम

ऐसे दि

अप्रैल १९७७

५

के लिये स्थान नहीं होता। वह हमेशा शुद्ध सात्विक ज्योति और सुखसे भरा रहता है।

हास्य : हास्य सुखका सक्रिय रूप है। इसमें प्रसन्नता और आह्लादकी सक्रिय अवस्था होती है जिसे कोई भी विरोधी शक्ति हिलातक नहीं सकती। इसकी पूर्णता हमारी समताकी सिद्धिपर भगवान्की मुहर है। यह हमारे अंदर, विश्ववाटिकामें बालवत् और कुमारवत् खेलते हुए श्रीकृष्णकी प्रतिमा है।

पढ़ाईमें रस

मेरे बच्चो, अगर तुम अपने-आपसे कहो : “हम संसारमें भागवत संकल्पको प्रकट करनेके लिये यथार्थभव पूर्ण यंत्र बनना चाहते हैं,” तो इस यंत्रको पूर्ण बनानेके लिये इसका परिष्कार करना होगा; शिक्षा और प्रशिक्षण देना होगा। इसे एक अनगढ़ पत्थरके टुकड़ेकी तरह नहीं छोड़ा जा सकता। जब तुम पत्थरसे कुछ बनाना चाहो तो उसपर छेनी चलानी पड़ती है, जब तुम एक रूपहीन ढेलेमेंसे सुंदर हीरा बनाना चाहो तो उसे तराशना पड़ता है। हां, तो यहां भी वही बात है। जब तुम अपने शरीर और मस्तिष्कसे भगवान्के लिये एक सुंदर यंत्र बनाना चाहते हो तो उसे परिष्कार करना होगा, उसे सूक्ष्म बनाना होगा, जो कमी है उसे पूरा करना और जो है उसे पूर्ण बनाना होगा।

उदाहरणके लिये, तुम अपनी कक्षामें जाते हो। अगर तुम बहुत अच्छी मनोवृत्तिमें नहीं हो तो तुम कहते हो : “आह, कितनी नीरस होगी कक्षा।” मान लो कि कोई ऐसा अध्यापक है जो तुम्हें शिक्षाना नहीं जानता (हो सकता है कि कोई बहुत अच्छा अध्यापक हो, पर तुम्हें बहलाना न जानता हो, यह हमेशा आसान नहीं होता... ऐसे दिन होते हैं जब विनोद करनेकी इच्छा नहीं होती), तुम

विद्यालयमें नहीं, कहीं और रहना चाहोगे। फिर भी तुम विद्यालय जाते हो, तुम इस तरह जाते हो क्योंकि तुम्हें जाना चाहिये, क्योंकि अगर तुम अपनी सनकके अनुसार चलो तो तुम्हें कभी अपने ऊपर अधिकार न होगा। तुम्हारी सनकें ही तुम्हारे ऊपर अधिकार रखेंगी। तुम अपने-आपको बशमें न रखोगे। तुम अपनी कक्षामें जाते हो लेकिन यह कहनेकी जगह: “हाय, कैसी ऊब आयेगी, कक्षा जरा भी मजेदार न होगी,” आदि-आदि, तुम कहो: “अगर जीवनमें एक भी क्षण ऐसा नहीं है, एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो प्रगतिका अवसर न देती हो तो आज मैं कौन-सी प्रगति करनेवाला हूं? — मैं अपने छोटे-से व्यक्तित्वको पूरी तरह भगवान्‌के अर्पण करता हूं। मैं चाहता हूं कि यह उनका अच्छा यंत्र बन सके जिसके द्वारा वे अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकें, कि एक दिन मैं रूपांतरके लिये तैयार हो जाऊं। आज मैं क्या करनेवाला हूं? मैं उस कक्षामें जा रहा हूं। यह ऐसा विषय है जिसके लिये मुझे उत्साह नहीं है, लेकिन अगर मैं इस काममें रस लेना नहीं जानता तो शायद इसलिये कि मेरे अंदर कुछ कमी है। क्योंकि मेरे दिमागमें कहींपर कुछ कोषाणुओंकी कमी है। अगर ऐसी बात है तो मैं पता लगानेकी कोशिश करूंगा। मैं अच्छी तरह सुनूंगा। अच्छी तरह ध्यान दूंगा और उससे भी बढ़कर, अपने अंदरसे इस तरहके छिछोरेपनको निकाल बाहर करूंगा। इस बाहरी हल्केपनको निकाल दूंगा जो, जब मैं किसी बातको पकड़ नहीं पाता तो मुझे उबा देता है। मैं क्यों ऊब जाता हूं? — क्योंकि मैं प्रगति नहीं करता।” जब तुम प्रगति नहीं करते तो ऊब जाते हो — बूढ़े और जवान सभी — क्योंकि हम यहां धरतीपर प्रगति करनेके लिये आये हैं। अगर हम हर मिनट अच्छी तरह प्रगति नहीं करते तो यह सचमुच उबानेवाली बात है, नीरस है, यह हमेशा सुखकर नहीं होती, यह अच्छी तो बिल्कुल नहीं है। “तो आज मैं यह पता लगा लूंगा कि मैं इस कक्षामें क्या प्रगति कर सकता हूं, कोई

अप्रैल १९७७

७

ऐसी चीज है जिसे मैं नहीं जानता, जो मैं सीख सकता हूँ।" अगर तुम सीखना चाहो तो हर क्षण सीख सकते हो। मैं, मैंने तो छोटे बच्चोंकी बकबकसे भी कुछ सीखा है। हर क्षण कुछ हो सकता है। कोई तुमसे कोई ऐसा शब्द कह सकता है, कोई बेवकूफ भी ऐसी बात कह सकता है जो तुम्हें किसी ऐसी चीजकी ओर खोल दे जो तुमसे प्रगति करवाये। और तब, यदि तुम जान सको, जीवन कितना मजेदार हो उठता है! अब तुम उकताते नहीं हो, हर चीज मजेदार हो उठती है। हर चीज अद्भुत होती है — क्योंकि तुम हर क्षण सीखते हो, हर कदमपर तुम प्रगति करते हो। उदाहरणके लिये, तुम रास्तेपर हो। वहाँ यूँ ही होनेकी जगह, यह जाने बिना कि तुम क्या कर रहे हो, अगर तुम इधर-उधर देखो और निरीक्षण करो...। मुझे याद है जब मुझे इस तरह कुछ खरीदनेके लिये, कुछ सौदा-सुलुफ करनेके लिये सड़कपर जाना पड़ता था — क्यों जाना पड़ता था इसका कोई महत्त्व नहीं है; सचमुच सड़कपर जाना हमेशा मजेदार नहीं होता लेकिन अगर तुम निरीक्षण करना शुरू करो कि यह आदमी कैसे चलता है, वह कैसे गति करता है, यह प्रकाश उस चीजपर कैसा रंग लाता है, यह छोटा-सा पेड़ वहाँके भू-दृश्यको कैसे सुंदर बना देता है, सैकड़ों चीजें कैसे चमकती हैं...तो तुम हर क्षण कुछ सीख सकते हो। तुम केवल सीख ही नहीं सकते... मुझे याद है, एक बार सड़कपर चलते-चलते मुझे एक प्रकारका प्रबोध मिला था क्योंकि मेरे सामने एक स्त्री चल रही थी और वह सचमुच चलना जानती थी। वह कैसी सुन्दर चाल थी, उसकी गति भव्य थी। मैंने उसे देखा और देखते ही अचानक मैंने यूनानी संस्कृतिका पूरा प्रारंभ देख लिया, किस तरह यह सारे रूप सौंदर्यको अभिव्यक्त करनेके लिये धरतीपर उतरते हैं — केवल इसी कारण कि एक स्त्री चलना जानती थी, समझे? इस तरह सभी चीजें मजेदार बन सकती हैं। तो इस तरह कक्षामें जाकर मूर्खता-भरी चीजें करनेकी जगह (मैं आशा करती हूँ,

जरा-सा
कान-सी
हैं जिसे
कान-सी
होगा ?
आपसे य
नहीं हो
यह चेत
और
पग ऊपर
से ज्यादा
को करते
हैं। वे
करते हैं,
वाद कर
करते हैं
होते तो

आदमी
अपने जी
लोग दुम
आता है,
कोशिश
जाता !
कोई क
जिसे वे
अर्थात्,
क्या तुम्ह
दुःखद बा

तुममेंसे कोई ऐसा न करता होगा, मुझे विश्वास है कि वे सब जो यहां मेरी कक्षाके लिये आते हैं वे कभी विद्यालयमें जाकर मूर्खता-भरी चीजें न करेंगे; अपवाद ही नियमका प्रमाण देते हैं: फिर भी मैं जानती हूं कि दुर्भाग्यवश बहुत-से वहां जाकर खोज-खोजकर हर संभव मूर्खता-भरी चीज करते हैं), हां तो, उसकी जगह, यदि तुम कक्षामें प्रगति करनेके लिये, हर रोज एक नयी प्रगति करनेके लिये जा सको — भले वह यह जाननेके लिये ही हो कि तुम्हें अपने अध्यापक क्यों उबा देते हैं — तो यह अद्भुत बात होगी — अचानक वह तुम्हें उबानेवाले न रह जायेंगे। तुम देखोगे कि वे बहुत मजेदार हैं ! बात ऐसी ही है। अगर तुम जीवनको इस तरह देखो तो जीवन एक बहुत अद्भुत चीज बन जाता है। उसे मजेदार बनानेका यही तरीका है। धरतीपर जीवन प्रगतिके क्षेत्रके रूपमें बनाया गया है और यदि हम अधिक-से-अधिक प्रगति करें तो धरतीके जीवनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकेंगे। और तब तुम प्रसन्न होते हो। जब आदमी जो कर सकता है उसमें अच्छे-से अच्छा करे तो वह प्रसन्न होता है।

जब आदमी ऊब जाता है तो क्या इसका यह मतलब होता है कि वह प्रगति नहीं कर रहा ?

उस समय, हां। निस्संदेह, केवल इतना ही नहीं कि वह प्रगति नहीं करता, बल्कि वह प्रगतिका एक अवसर खो देता है। परिस्थितियोंका एक संयोग था जो तुम्हें नीरस, उबाऊ और मूर्खतापूर्ण लगा और तुम उसके बीचमें थे। तो, यदि तुम उसमें ऊब उठो तो इसका अर्थ है कि स्वयं तुम भी उतने ही उबाऊ हो जितनी कि परिस्थितियां ! और यह इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि तुम प्रगति की स्थितिमें नहीं हो। इस ऊबकी क्षणिक लहरसे बढ़कर जीवनके हेतुका विरोधी और कोई नहीं है। उस समय तुम अपने अंदर

अप्रैल १९७७

जरा-सा प्रयत्न करो और अपने-आपसे कहो : “जरा ठहरो, मुझे कौन-सी चीज सीखनी है ? यह सब कौन-सी नयी चीजको ला रहे हैं जिसे मुझे सीखना चाहिये ? मुझे अपने ऊपर विजय पानेके लिये कौन-सी प्रगति करनी होगी ? कौन-सी दुर्बलता है जिसे जीतना होगा ? कौन-सी जड़ता है जिसे जीतना होगा ?” अगर तुम अपने-आपसे यह कहो तो तुम देखोगे कि अगले ही मिनट तुम ऊबे हुए नहीं हो। तुम्हें तुरत रुचि आने लगेगी और तुम प्रगति करोगे। यह चेतनाकी मामूली बात है।

और तुम जानते ही हो कि अधिकतर लोग ऊब जानेपर एक पग ऊपर उठनेकी जगह एक पग नीचे उतर आते हैं, जैसे थे, उस-से ज्यादा खराब हो जाते हैं, दूसरे जो मूर्खताएं करते हैं उन सब-को करते हैं, हर प्रकारके गंवारूपन, और नीचतामें उतर आते हैं। वे अपने-आपको बहलानेके लिये सब कुछ करते हैं। वे नशा करते हैं, विष लेते हैं, अपना स्वास्थ्य बरबाद करते हैं, दिमाग बर-बाद करते हैं, और अशोभन बातें करते हैं। वे यह सब इसलिये करते हैं क्योंकि वे ऊबे हुए हैं। नीचे जानेकी जगह वे ऊपर उठे होते तो परिस्थितियोंका लाभ उठा पाते। लाभ उठानेकी जगह आदमी जहां था वहांसे जरा नीचे जा गिरता है। जब लोगोंको अपने जीवनमें एक आघात मिलता है, कोई दुर्भाग्य आता है (जिसे लोग दुर्भाग्य कहते हैं, लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनपर दुर्भाग्य आता है), तो पहली चीज वे यही करते हैं : वे उसे भुला देनेकी कोशिश करते हैं — मानों यूं भी आदमी काफी जल्दी नहीं भूल जाता ! और भूलनेके लिये वे कुछ भी कर बैठते हैं। जब कोई कष्टदायक चीज हो तो वे मन बहलानेकी कोशिश करते हैं, जिसे वे मन बहलाना कहते हैं, यानी, मूर्खतापूर्ण चीजें करते हैं, अर्थात्, चेतनामें नीचे जाते हैं, ऊपर उठनेकी जगह नीचे जाते हैं। क्या तुम्हारे साथ कोई अत्यंत कष्टकर बात हुई है, कोई बहुत ही दुःखद बात ? हक्के-बक्के मत बनो, भूलनेकी कोशिश मत करो और

निश्चेतनामें नीचे मत उतरो। तुम्हें अंततक जाना चाहिये और वहां पीछे रहनेवाले प्रकाशको खोजना चाहिये, सत्य, शक्ति और आनंदको देखना चाहिये। इसके लिये तुम्हें बलवान् होना चाहिये नीचे फिसलनेसे इनकार करना चाहिये। लेकिन मेरे बच्चे, इस चीजको हम जरा बादमें देखेंगे, जब तुम जरा बड़े हो जाओगे।
प्रश्न और उत्तर, १९५३ (१३ मई)

पढ़ाईमें एकाग्रता

(प्रश्नोत्तर)

कभी-कभी हम एकाग्र होनेकी कोशिश करते हैं, पर हो नहीं पाते

अगर सचमुच तुम एकाग्र नहीं हो पाते तो तुम्हें अपना सम अपने अंदर इसका कारण खोजनेमें लगाना चाहिये ! तब यदि अध्यापक तुमसे कोई प्रश्न पूछे तो तुम्हें कह देना चाहिये : "खै, मैं सुन नहीं रहा था !"

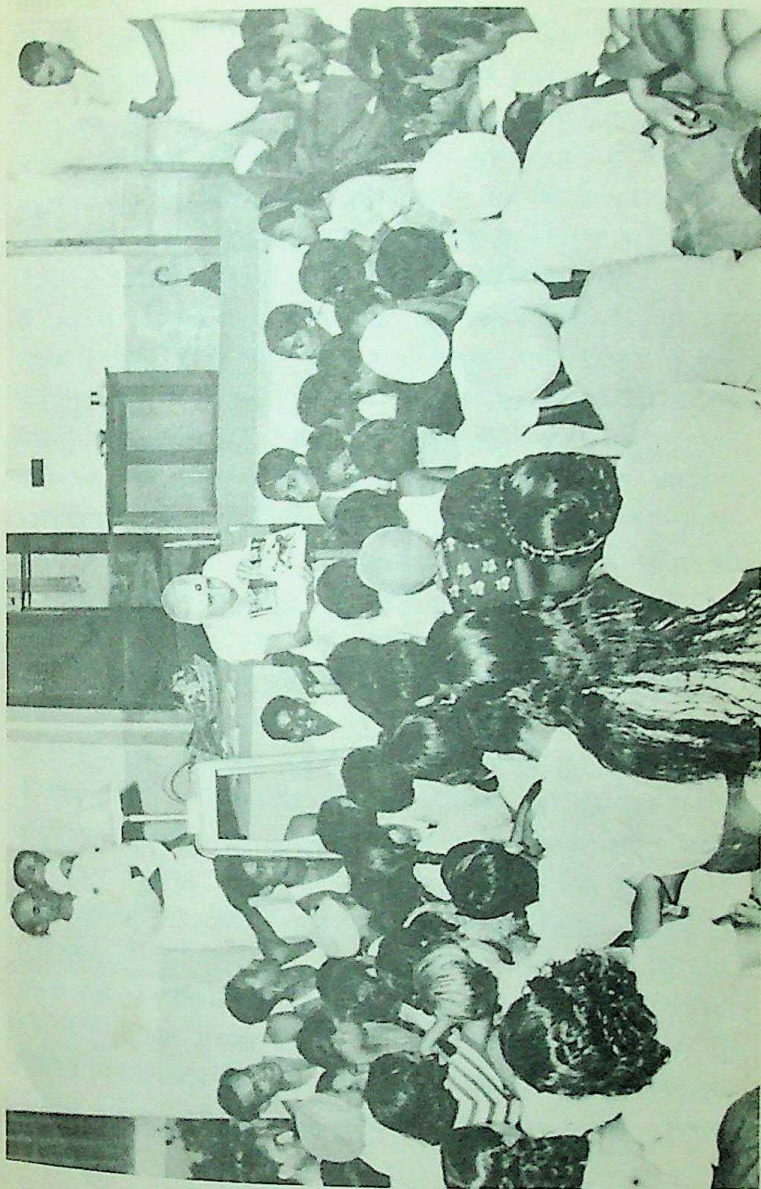
तुम सीखना नहीं चाहते ?

हां।

तब यह कैसे हो सकता है ?

परंतु कुछ कक्षाओंमें मैं समझ नहीं पाता।

तब कुछ कक्षाओंमें तुम सीखना नहीं चाहते। तुम साधारण



बच्चों के साथ माताजी

अप्रैल

तौरपर

अगर

जहां

क्यों न

नहीं ज

कोश

ख्याल

मैं इस

केवल

सचमुच

अर्थ है

जो ची

व्याकरण

बहुत

व्याकरण

अधिक

तुम स

ऐसा क

समझना

के लिये

चाहते

कर हो

अपने अ

है। कि

मस्तिष्क

घन या

जिसका

चीजको

3

तौरपर कह सकते हो : “हां, हां, मैं सीखना चाहता हूं,” लेकिन अगर कोई सचमुच सीखना चाहे तो एक भी कक्षा ऐसी नहीं होती जहां तुम कुछ न सीख सको। निश्चय ही, चाहे कोई भी कक्षा क्यों न हो, वहां कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर होती है जिसे तुम नहीं जानते, तुम हमेशा सीख सकते हो। तुम चलते-फिरते विश्व-कोश नहीं हो ! अगर तुम एक ही पुस्तकको दोबारा पढ़ो (मेरा ख्याल है कि कुछ कक्षाओंमें यह होता है), और तुम कहो : “ओह ! मैं इस पुस्तकमेंसे गुजर चुका हूं। यह उबानेवाली है,” तो यह केवल इसलिये होता है क्योंकि तुम सीखना नहीं चाहते; क्योंकि सचमुच अगर तुम उसी पुस्तकको दोबारा पढ़ रहे हो तो इसका अर्थ है कि पहली बार तुमने उसे ध्यानसे नहीं पढ़ा। और तुमने जो चीज भली-भांति नहीं पढ़ी उसे विशेष ध्यानसे पढ़ना चाहिये। व्याकरणकी पुस्तक भी ! मैं यह नहीं कहती कि व्याकरणकी पुस्तकें बहुत उत्तेजक होती हैं, लेकिन अगर तुम सीखना चाहो तो व्याकरणकी पुस्तक भी मजेदार हो जाती है — व्याकरणके अधिक-से-अधिक दुर्बोध नियम भी ! तुम कल्पना नहीं कर सकते कि जब तुम सचमुच सीखना चाहते हो, तब तुम समझना चाहते हो कि ऐसा क्यों है, सिर्फ यूं ही रट लेने, मुखस्थ कर लेनेकी जगह तुम समझना चाहो : ये शब्द क्या हैं जो यहां रखे गये हैं, किस विचार-के लिये, किस सच्चे ज्ञानके लिये ये रखे गये हैं ? ये क्या कहना चाहते हैं ? — यह सब जानना चाहो तो चीज कितनी अधिक रुचिकर हो जाती है।... हर एक नियम, चाहे कोई-सा क्यों न हो, स्वयं अपने अंदर स्थित किसी चीजके लिये मनुष्यके मनका सूत्र होता है। किसी भी नियमको ले लो। वह यही बतलाता है कि कुछ मस्तिष्कोंने अपनी दृष्टिमें अधिक-से-अधिक स्पष्ट, अधिक-से-अधिक घन या संक्षिप्त रूपमें कोई ऐसी चीज कहनेकी कोशिश की है जिसका अपना अस्तित्व है। अगर तुम शब्दोंके पीछे जाकर इस चीजको ढूँढनेकी कोशिश करो — जो चीज अपने-आपमें अस्तित्व

रखती है, जो शब्दोंके पीछे विद्यमान है — तो चीज कितनी मजेदार हो जाती है ! उससे फुरहरी आने लगती है ! रोमांच हो उठता है। यह एक जंगलमेंसे गुजरते हुए एक नये देशकी खोज करनेकी तरह है, उत्तरी ध्रुव जाकर छान-बीन करने जैसा है ! अगर तुम व्याकरणके नियमोंके साथ ऐसा ही कर सको तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ, फिर तुम्हें कोई चीज न उबा सकेगी।

सीखनेकी जगह समझो।

मैं स्वीकार करती हूँ कि इसके लिये बहुत अधिक एकाग्रताकी जरूरत है। यह ऐसी एकाग्रताकी मांग करती है जो मनके आवरणको भेदकर, उसमें छेद करके उस पार निकल सके। और तब यह मेहनत सार्थक होती है...। तुम्हें किसी ठंडी, कठोर, सख्त, बिना लोचकी चीजपर धकेल दिया जाता है। तुम एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, जबतक कि... अचानक तुम दूसरी ओर निकल जाते हो और तुम प्रकाशमें जा निकलते हो और तब समझते हो: “आहा! यह तो अद्भुत है! अब मैं समझा।” एक नन्हीं-सी चीज तुम्हें बहुत हर्ष देती है।

तो देखो, विद्यालयमें न उकताना संभव है।

हमारे शिक्षा-केंद्रमें मंद-बुद्धि और बुद्धिमान्, आलसी और मेहनती, सभी विद्यार्थियोंको एक ही लाठीसे हांका जाता है। इसके बारेमें माताजी कहती हैं:

“मेरे बच्चे, इस बातमें मैं तुम्हारे साथ पूरी सहमत हूँ। यह बिल्कुल ठीक नहीं है। हम इस सबको बदलनेकी कोशिश करेंगे। मेरी समझमें नहीं आता कि हमें एक पुस्तक एक ही वर्षमें क्यों समाप्त करनी चाहिये। यह बिल्कुल मनमानी है। तुम्हें कोई अध्याय जबतक नहीं छोड़ना चाहिये जबतक कि वह पूरी तरह समझमें न आ जाय उसके बाद ही दूसरा अध्याय लेना चाहिये, और इसी तरह अगर कोई अध्याय पूरा हो गया, तो हो गया और नहीं हुआ, तो नहीं हुआ।

सच तो यह है कि अध्यापकको अपना पाठ पाठ्य पुस्तकके आधारपर करानेकी जगह, अपने-आप पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये। उसे काफी जानना चाहिये और दिन-प्रतिदिन पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये और तब वह किसी विषयका पाठ तभी बंद करेगा जब — मैं यह नहीं कहती कि हर एक समझ लेगा, क्योंकि यह तो असंभव है — कम-से-कम जिन्हें वह कक्षामें रस लेनेवाले समझता है, वे समझ लेंगे। तब नया विषय लिया जाता है। और अगर यह चलता रहे और कोई विशेष विषय एक सालकी जगह दो साल ले या कोई और विषय दो सालकी जगह डेढ़ सालमें ही हो जाय तो इसमें कोई हर्ज नहीं; क्योंकि यह उसकी अपनी रचना है, उसका अपना लिखा हुआ पाठ है। जिसे वह कक्षाकी आवश्यकताके अनुसार लिखता है पढ़ानेके बारेमें मेरी यही धारणा है। अब, इसकी अपनी कठिनाइयां हैं। लेकिन काम करनेका सच्चा तरीका यही है। क्योंकि एक किताब लेकर उसीका अनुसरण करनेसे और विशेषकर ऐसी किताब जो विद्यार्थियोंके लिये जरा भी अनुकूल न हो... मैं नहीं कहती कि एक विशेष पाठ्यक्रम सबके लिये अनुकूल हो सकता है, सबको संतुष्ट करना असंभव है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रयास करना चाहते हैं; तुम्हें इनका ख्याल करना चाहिये। जो आलसी, निद्रालु और अकर्मण्य हैं उन्हें तो अपने आलस्य, निद्रालुता और अकर्मण्यतामें ही छोड़ दो। अगर वे सारे जीवन सोते रहना चाहते हैं तो सोने दो, जबतक कि कोई चीज उन्हें काफी झकझोरकर जगा न दे। लेकिन श्रेणीमें वह भाग ध्यान देने योग्य है जो सीखना चाहता है, जो लोग सचमुच सीखना चाहते हैं। कक्षा उन्हींके लिये ली जानी चाहिये। तुम देखते नहीं हो कि शिक्षाकी वर्तमान पद्धति एक प्रकारसे समतल बनाना है। हर एकको उसी स्तरपर होना चाहिये। जिन लोगोंके सिर ज्यादा ऊंचे हैं उनके सिर काट दिये जाते हैं और जिनके बहुत छोटे हैं उन्हें नीचेसे धक्का दिया जाता है। लेकिन इससे

कोई लाभ नहीं। तुम्हें उन्हींकी परवाह करनी चाहिये जो ऊपर आते हैं, दूसरे जितना ले सकते हैं, ले लेंगे। और वास्तवमें इस बातकी कोई जरूरत नहीं समझती कि हरएकको एक ही चीज का ज्ञान हो—क्योंकि यह सामान्य बात नहीं है। लेकिन जो जानना चाहते हैं और जान सकते हैं, जिन्हें काम करना चाहिये, उन्हें काम करनेके पूरे, सब संभव साधन दिये जाने चाहिये, उन्हें हमेशा ऊपर उठाना चाहिये और नया भोजन देना चाहिये। वे भूखे हैं और उन्हें खिलाना चाहिये...। आह! अगर मेरे पास समय होता तो मैं एक कक्षा लेती। इसमें मुझे बहुत रस आयेगा—यह दिखानेमें कि यह कैसे किया जाना चाहिये। लेकिन हम एक ही समयमें हर जगह नहीं हो सकते।

यह लो, मेरे बच्चों, काफी देर हो गयी है। शुभ रात्रि।

(प्रश्न और उत्तर, १९५३)

शिक्षामें परीक्षाका स्थान

(माताजीसे प्रश्न और उनका उत्तर)

हमारे शिक्षा-केंद्रके विद्यार्थियोंको डिप्लोमा और सर्टीफिकेट क्यों नहीं दिये जाते ?

लगभग एक शताब्दीसे मानवजाति एक रोगसे पीड़ित है जो अधिकाधिक बढ़ता ही दीख रहा है और आज वह अपनी चरम अवस्थापर आ पहुंचा है; इसे हम उपयोगितावाद कहते हैं। ऐसे

अप्रैल १९७७

लगता है कि चीजों और मनुष्योंको, परिस्थितियों और कर्मको, सबको, अनन्य रूपसे उसी एक दृष्टिकोणसे विचारा और सराहा जाता है। जिसकी कोई उपयोगिता नहीं उसका कोई मोल नहीं। यह ठीक है कि जो उपयोगी है वह निरूपयोगीसे बेहतर है, लेकिन पहले यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य किसे उपयोगी मानता है; उपयोगी किसके लिये? किसके प्रति? किसलिये?

और, उत्तरोत्तर, वे जातियां जो अपनेको सभ्य समझती हैं, उसी चीजको उपयोगी कहती हैं जो धन ला सके, कमा सके या पैदा कर सके, सबका निर्णय और मूल्यांकन उसी एक आर्थिक दृष्टिकोणसे किया जाता है। मैं इसे ही उपयोगितावाद कहती हूं। यह रोग बहुत ही संक्रामक है क्योंकि बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहते।

उस उम्रमें जब कि सुंदरता, भव्यता और पूर्णताके सपने संजोये जाने चाहिये, ऐसे सपने जो शायद सामान्य अर्थोंसे कहीं अधिक उदात्त होते हैं, जो निश्चय ही कुण्ठित सामान्य बुद्धिसे उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसेके सपने देखते हैं और उसे कमानेके साधनोंके बारेमें चिन्तातुर रहते हैं।

इसी तरह, जब वे अपनी पढ़ाईके बारेमें सोचते हैं तो उस सबपर विचार करते हैं जो आगे चलकर उनके लिये उपयोगी हो सके, ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

और परीक्षाओंमें सफल होनेके लिये तैयारी करना उनके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि डिप्लोमा, सर्टिफिकेट और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं। इनकी सहायतासे धन भी खूब कमा सकते हैं।

उनके लिये पढ़ाईका न कोई उद्देश्य है, न महत्त्व।

ज्ञानके लिये सीखना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंको जाननेके लिये पढ़ना, चेतनाको विकसित करनेके लिये अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पानेके लिये स्वयंको अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञताओंको अतिक्रम करनेके लिये

पढ़ना, जीवनमें अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्यकी ओर बढ़नेके लिये अपने-आपको तैयार करना... यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल कल्पना ही समझते हैं। बस, एक ही चीज महत्वपूर्ण है -- व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिये अपनेको तैयार करना।

आश्रमका यह शिक्षा-केंद्र उन बच्चोंके लिये उपयुक्त स्थान नहीं जो इस रोगके शिकार हैं। और उनके आगे इस बातको अच्छी तरह प्रमाणित कर देनेके लिये ही हम उन्हें किसी प्रकारकी परीक्षाके लिये, किसी सरकारी प्रतियोगिताके लिये तैयार नहीं करते, और न ही उन्हें कोई डिप्लोमा और डिग्री देते हैं जो बाहरी दुनियामें उनके काम आ सके।

हम यहां केवल उन्हीं बच्चोंको चाहते हैं जो एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवनकी अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णताकी प्यास है, जो एक पूर्णतर सच्चे भविष्यकी ओर उत्कटतासे निहारते हैं।

और बाकी सबके लिये दुनिया काफी बड़ी है।

१७.७.१९६०

(कक्षाके मुखियाको)

स्फुट वचन

महत्त्वपूर्ण शिक्षा

“मूलतः एक चीज, एकमात्र चीज जो तुम (अध्यापकों) को अध्य-
वसायके साथ करनी चाहिये वह यह है: उन्हें (बालकोंको) अपने-
आपको जानना, अपनी निजी नियति, अपना-अपना मार्ग चुनना
सिखाओ। अपने-आपको देखना, समझना और संकल्प करना
सिखाओ। पहले पृथ्वीपर क्या हुआ था या पृथ्वी कैसे रची गयी

अप्रैल १९७७

श्री इत्यादि सिखानेकी अपेक्षा यह सिखाना अनंतगुना महत्त्वपूर्ण है।”

—माताजी

★

पथ-प्रदर्शक सिद्धांत :

प्र. शिक्षाके नये आदर्शके पथ-प्रदर्शक सिद्धांत कौनसे होने चाहिये ?

उ. सत्य
सामंजस्य
स्वतंत्रता

२६.११.६७

—माताजी

★

शिक्षा एक प्रकटन है

“...मनको कोई ऐसी चीज नहीं सिखायी जा सकती जो प्राणीकी खिलती हुई आत्मामें संभाव्य ज्ञानके रूपमें छिपी हुई न हो। इस प्रकार बाहरी मनुष्य जितनी पूर्णता पानेमें समर्थ है वह केवल उसके अंदर स्थित आत्माकी सनातन पूर्णताकी अभिव्यक्ति है। हम भगवान्को जानते और उनके साथ एक हो जाते हैं क्योंकि अपने गुह्य स्वरूपमें हम पहलेसे ही ‘वह’ हैं। हर प्रकारकी शिक्षा एक प्रकटन है, सारा संभवन एक उन्मीलन है। रहस्य है आत्म-सिद्धि, आत्म-ज्ञान और प्रगतिशील चेतना साधन और प्रक्रिया हैं।”

—श्रीअरविंद

(योग-समन्वय)

★

“सर्वांगीण योग जीवनका त्याग नहीं करता। वह जीवनका रूपांतर करता है, उसे दिव्य बना देता है। वह धर्म नहीं है, वह सभी धर्मोंसे परे है।

शिक्षामें — उसमें तकनीकी शिक्षा भी शामिल है — हम आखें मूंदकर पाश्चात्य पद्धतिका अनुसरण नहीं करते। हमारे बच्चोंके मनको आधुनिक पद्धतिसे प्रशिक्षण मिल रहा है। लेकिन हम उनमें तादात्म्यद्वारा अंतर्दृष्टि और ज्ञानकी क्षमताको विकसित करनेकी कोशिश करते हैं। हम जो सिखाना चाहते हैं वह केवल एक मानसिक आदर्श नहीं, बल्कि जीवनकी एक नयी धारणा और चेतनाकी सिद्धि है।”

—माताजी

★

बौद्धिक शिक्षण

किस हदतक “बौद्धिक शिक्षण” हमारे मार्गमें सहायता पहुंचा सकता है ?

यदि बौद्धिक शिक्षणको अपनी चरम सीमातक ले जाया जाय तो वह मनको असंतोषजनक निष्कर्षतक ले जाता है कि वह ‘सत्य’ को जाननेमें असमर्थ है और उन लोगोंको जिनकी अभीप्सा सच्ची है यह (बौद्धिक शिक्षण) निश्चल रहनेकी और उस निश्चलतामें उच्चतर स्तरोंकी ओर खुलनेकी आवश्यकताकी ओर ले जाता है जिनसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

२७.९.६९

—माताजी

(मातृवाणी, खंड १०, विचार और सूत्र, पृ० २६४)

★

अप्रल १९७७

प्रत्येक वस्तु कुछ सिखाती है

यदि व्यक्ति सच्चे दिलसे 'सत्य' के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसे यह जान लेना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु उसे कुछ सिखा सकती है। प्रत्येक क्षण उसके सामने प्रगतिकी संभावना रहती है। प्रायः एक बड़ी मूर्खता ही तुम्हारे सामने महान् प्रकाश-को प्रकट कर देती है। पर ऐसा तभी होता है जब व्यक्ति उसे देखना जाने।

२४.१.७०

—माताजी

(मातृवाणी, खंड १०, विचार और सूत्र, पृ० ३१३)

*

स्मरण-शक्तिको बढ़ाना

अपनी चेतनाका विस्तार करो और तुम्हारी स्मृति बढ़ेगी।

चेतना यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृतिसे बहुत ज्यादा बड़ी स्मृति है। मैंने यह बात एक दिन, अभी बहुत दिन नहीं हुए, तुम्हें समझायी थी। मैंने तुम्हें बतलाया था कि यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृति भूल सकती है — उलझन डाल सकती है, विकृत कर सकती है — लेकिन अगर तुम अपने अंदर फिरसे उस चेतनाको स्थापित कर सको जिसमें तुम उस समय थे तो तुम्हें ठीक वही अनुभूति होगी। और यही एकमात्र सच्ची स्मृति है। और यह पूरी तरह तुम्हारी चेतनाके विकासपर निर्भर है।

—माताजी

(प्रश्न और उत्तर, १९५३; १६ सितंबर)

जीवन ऐसा ही होगा

जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है और जिसे मैं "शुभ-जात" कहती हूँ, अर्थात्, वह सचेतन चैत्य पुरुषके साथ जन्म लेता है तो उस बालकके सपनोंमें सदा इस प्रकारकी अभीप्सा रहती है, जो उसको बाल-चेतनाके लिये एक प्रकारकी महत्त्वाकांक्षा होती है, वह अभीप्सा किसी ऐसी चीजके लिये होती है जो सुंदर-ही-सुंदर है, जहां कुरूपता का नाम नहीं, जहां, बस, न्याय है, अनीति या अन्यायाचरण नहीं, जहां अपार सौजन्य है और अंतमें जहां सचेतन और सतत रूपसे मिलनेवाली सफलता-ही-सफलता है और जहां नित्य-निरंतर चमत्कार-पर-चमत्कार होते हैं। जब वह छोटा होता है तो चमत्कारोंके ही सपने लेता है, वह चाहता है सब दुष्टता और दुर्जनता मिट जाय, प्रत्येक वस्तु सदा प्रकाशपूर्ण, सुंदर और आनंदमय बनी रहे, वह उन कहानियोंको पसंद करता है जो सुखांत होती हैं। यही चीज है जिसपर तुम्हें निर्भर करना चाहिये। जब शरीर दुःख-दर्द महसूस करता हो तथा अपनी अक्षमता एवं अशक्तता महसूस करता हो तो उसे ऐसी शक्तिके सपने दो जिसके सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं, ऐसे सौंदर्यके जिसमें कोई कुरूपता नहीं और अद्भुत क्षमताओंके सपने दो : बालक ऐसे-ऐसे सपने लेता है कि वह हवामें उड़ सकता है, जहाँ जरूरत हो वहाँ उपस्थित हो सकता है, बीमारोंको अच्छा कर सकता है; सचमुच ही बचपनमें व्यक्ति इसी प्रकारके सब सपने लेता है...। सामान्यतः माता-पिता और शिक्षक इन सबपर पानी फेर देते हैं यह कहकर कि "ओह! वह, वह तो सपना है, वह वास्तविकता नहीं है।" जब कि होना इससे ठीक उल्टा चाहिये। बच्चोंको बताना चाहिये : "हां, यही चीज है जिसे सिद्ध करनेका तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये और यह केवल संभव ही नहीं, बल्कि सुनिश्चित भी है, बशर्त कि तुम अपने अंदर उस वस्तुके संपर्कमें आ जाओ जिसमें इसे करनेकी

अप्रैल १९७७

सामर्थ्य है। इसीको तुम्हारे जीवनका पथ-प्रदर्शन करना चाहिये, उसमें व्यवस्था लानी चाहिये और उस सच्ची वास्तविकताकी ओर तुम्हें विकसित करना चाहिये जिसे दुनिया भ्रम समझती है।”

ऐसा ही होना चाहिये, वजाय इसके कि बच्चोंको साधारण, मामूली बच्चे बना डाला जाय, जिनकी समझ सादी और ग्राम्य होती है, जिसमें ऐसी सत्यानासी आदत जमकर बैठ जाती है कि जहां कहीं कुछ अच्छा शुरू हुआ नहीं कि झट यह विचार ऊपर उठ आता है : “ओह ! ऐसा ज्यादा दिन नहीं चलेगा !” जब कोई व्यक्ति मधुर और शिष्ट वर्ताव करता है तो यह छाप : “ओह ! वह बदल जायेगा !” जब तुम किसी चीजको संपन्न करनेमें समर्थ हो जाते हो तो यह भावना : “ओह ! कल मैं इसे इतनी अच्छी तरह न कर सकूंगा।” यह चीज तुम्हारे अंदर सब कुछको नष्ट कर देनेवाले तेजावकी तरह काम करती है, और यह भविष्यकी संभावनाओंमें आशा, निश्चयता और आत्म-विश्वासको हर लेती है।

बालक जब उत्साहसे भरा हो तो उसपर कभी पानी न फेरो। उससे कभी यह न कहो : “देखो, जीवन इस प्रकारका नहीं है !” बल्कि तुम्हें उसको उत्साहित करना चाहिये, उससे कहना चाहिये : “हां, अभी तो चीजें बेशक उस प्रकारकी नहीं हैं, वे कुरूप प्रतीत होती हैं, परंतु इनके पीछे एक सौंदर्य है जो अपने-आपको प्रकट करनेका प्रयत्न कर रहा है। उसीके लिये प्रेम पैदा करो, उसीको आकर्षित करो। उसीको अपने सपनों और महत्त्वाकांक्षाओंका विषय बनाओ।”

और यदि इस कामको तभी किया जाय जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है तो उससे कठिनाई तबकी अपेक्षा बहुत कम होती है जब बाद-में उसे इन सब चीजोंको रद्द करना पड़ता है, बुरी शिक्षा-जन्य बुरे परिणामोंको मिटाना होता है और उस प्रकारकी मूढ़ तथा तुच्छ सामान्य बुद्धिसे मुक्त होना होता है जो जीवनसे किसी अच्छी चीजकी आशा नहीं करती, उसे नीरस और दुःखदायी बना डालती है, फलस्वरूप, सब आशाएं और सौंदर्यके सब तथाकथित मिथ्या सपने

खंडित हो जाते हैं। इसके विपरीत तुम्हें बच्चेसे (और यदि तुम गोदके बच्चे न हो तो अपने-आपसे) यह कहना चाहिये : “मुझमें जो कुछ अवास्तविक, असंभव, भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है वही वास्तवमें सत्य है और उसे ही मुझे संवर्द्धित करना है। जब मेरे अंदर यह अभीप्सा है, ‘मैं किसी असमर्थताद्वारा सदाके लिये सीमित नहीं रहूंगा और किसी अशुभ भावनाद्वारा हमेशाके लिये रुद्ध नहीं रहूंगा, तो यह भी जरूरी है कि मैं अपने अंदर इस विश्वासको बढ़ाऊँ कि यही चीज है जो वस्तुतः सत्य है और इसे ही मुझे जीवनमें पाना है।”

तब शरीरके कोषोंमें विश्वास जाग्रत् हो जाता है। और तुम देखोगे कि स्वयं शरीरके अंदर भी तुम्हें एक प्रत्युत्तर मिलता है। स्वयं शरीर अनुभव करेगा कि यदि आंतरिक संकल्प सहायता करे, दृढ़ता प्रदान करे, दिशा-निर्देश कर ले चले तो हां, सब सीमाएं, सब अक्षमताएं धीरे-धीरे दूर हो जायंगी।

और इस प्रकार, जब पहला अनुभव होता है — कभी-कभी यह तभी हो जाता है जब तुम बहुत छोटे होते हो — आंतरिक हर्ष, आंतरिक सौंदर्य, आंतरिक प्रकाशके साथ जब पहला संपर्क होता है, उस चीजके साथ पहला संपर्क होता है जिसे पानेपर तुम एकाएक महसूस करते हो : “आह ! यही तो चीज थी जिसे मैं चाहता था,” तो तुम्हें चाहिये कि तुम इसे पुष्ट करो, कभी भूलो नहीं, इसे सामने बनाये रखो, अपने-आपसे कहो : “मैंने इसे जब एक बार महसूस किया है तो मैं इसे दुबारा भी महसूस कर सकता हूँ। यह मेरे लिये वास्तविक रह चुका है, चाहे सेकंड-भरके लिये ही रहा हो, पर यही चीज है जिसे मैं अपनेमें वापस लाना चाहता हूँ...।” और शरीरको इसी ओर आंखें लगाये रखनेके लिये — इसीकी तलाशके लिये, उत्साहित करो, यह विश्वास रखते हुए कि इसके अंदर यह संभावना है और यदि यह इसे पुकारे तो यह वापस आयेगी और जीवनमें फिर प्रकट होगी।

अप्रैल १९७७

यह ऐसी चीज है जिसे छुटपनमें ही कर लेना चाहिये, वल्कि ऐसी चीज है जिसे हर समय करना चाहिये जब भी तुम्हें अपने अंदर मुड़ने, अपने अंदर संपर्क स्थापित करने, अपने अंदर अवलोकन करनेका अवसर मिले।

और तब तुम देखोगे। जब बालक अपनी सहज प्राकृत अवस्था में होता है, अर्थात्, जब वह बुरी शिक्षा और बुरे दृष्टांतद्वारा विगड़ा नहीं होता, जब वह स्वस्थ, अपेक्षाकृत संतुलित और सामान्य वातावरण में पैदा होता और पलता है तो शरीरमें एक सहज-स्वाभाविक विश्वास होता है कि यदि कोई चीज विगड़ भी गयी तो वह ठीक हो जायेगी, इसमें मन या प्राणके हस्तक्षेपकी आवश्यकता नहीं होती। स्वयं शरीरमें यह निश्चय होता है कि वह अच्छा हो जायेगा, उसे निश्चित विश्वास होता है कि बीमारी या अस्वस्थता अवश्य दूर हो जायेगी। यह तो वातावरणके बुरे संस्कारोंका परिणाम होता है कि शरीर धीरे-धीरे यह सीखने लगता है कि ऐसी भी बीमारियां हैं जो असाध्य हैं, ऐसी भी दुर्घटनाएं हैं जो ठीक नहीं हो सकतीं और यह कि बुढ़ापा भी एक दिन आयेगा, और इसी प्रकारकी सब वाहियात बातें जो उसके विश्वास और उसकी आस्थाको हर लेती हैं। पर सामान्य अवस्थामें, एक सामान्य बच्चेका शरीर (शरीर, मैं विचारकी बात नहीं कर रही), स्वयं शरीर यह महसूस करता है कि जब कोई चीज विगड़ जायेगी तो निश्चय ही वह फिरसे ठीक भी हो जायेगी। और यदि ऐसा नहीं होता तो इसका अर्थ है कि वह पहले ही विगड़ चुका है। सुस्थता इसे स्वाभाविक अवस्था प्रतीत होती है और जब कोई चीज खलल डालती है और यह बीमार पड़ जाता है तो यह इसे एकदम अस्वाभाविक प्रतीत होता है। अपने सहज-बोधके, स्वाभाविक सहज-बोधके द्वारा इसे निश्चित विश्वास होता है कि सब ठीक हो जायेगा। यह तो केवल विचारकी अशुद्धता ही है जो इसके इस विश्वासको हर लेती है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता है विचार अधिकाधिक मिथ्या होता जाता है,

तमाम सामूहिक सुझाव आते हैं और इस प्रकार, थोड़ा-थोड़ा करके शरीर अपनी आस्था खो बैठता है और स्वभावतः अपना आत्म-विश्वास खो देनेके कारण, संतुलनको, जब कोई चीज बिगड़ गयी हो तो, पुनः स्थापित करनेकी अपनी स्वाभाविक क्षमताको भी खो बैठता है।

और यदि तुम्हें, जब तुम बहुत छोटे हो तभीसे, एकदम बचपनसे, घोखा देनेवाली, अवसाद लानेवाली, बल्कि सड़ांध पैदा करनेवाली या यूं कहूं, नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाली चीजें सिखायी जायें — तो बेचारा शरीर अपनी पूरी कोशिशोंके बावजूद बिगड़ चुका होता है, स्वास्थ्य खो चुका होता है और अपनी आंतरिक सामर्थ्य, अपनी आंतरिक शक्ति और प्रतिक्रियाकी क्षमताका भी इसे बोध नहीं रहता।

पर यदि तुम ध्यान रखो कि यह बिगड़ने न पाये तो शरीरमें अपने ही अंदर 'विजय' का विश्वास होता है। विचारके गलत उपयोगसे और उसका शरीरपर जो प्रभाव पड़ता है वही उससे विजयकी निश्चितिको छीन लेता है। तो, करने लायक पहली चीज है इस विश्वासको नष्ट करनेकी जगह पोषण एवं संवर्धन करना, और इसके साथ फिर अभीप्साके प्रयत्नकी जरूरत नहीं रहती, फिर तो, वस, यह विजयमें इसी आंतरिक विश्वासका बिल्कुल सहज-रूपमें प्रस्फुटित होना या उन्मीलित होना होता है।

शरीर अपने अंदर दिव्य होनेका भाव लिये रहता है।

तो यदि तुमने इसे खो दिया है तो इसे अपने अंदर पुनः प्राप्त करनेकी कोशिश करो।

जब कोई बालक तुम्हें ऐसा सुन्दर सपना सुनाये जिसमें उसके पास बहुत सारी शक्तियां थीं और सब कुछ बहुत सुन्दर था तो ध्यान रखो, उससे ऐसा कभी न कहो : "ओह ! जीवन इस प्रकारका नहीं है," क्योंकि ऐसा करना गलत होगा। इसके विपरीत, उससे कहो : "जीवन ऐसा ही होना चाहिये और इसी प्रकारका होगा।"

(प्रश्न और उत्तर, १९५७; ३१ जुलाई)

धम्मपद

(१)

यमकवग्गो

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवृतं ।

भोजनमिह अमत्तञ्जु कुसीतं हीनवरीरियं ।

तु वे पसहति मारो वातो रुक्खं' व दुब्बलं ॥७॥

(जो) शुभ, अर्थात् सुखद् वस्तुओंकी खोजमें घूमता-फिरता है, (जो) अपनी इंद्रियोंमें असंयत होता है, (जो) अपने भोजनकी मात्रा-को नहीं जानता, जो आलसी और पुरुषार्थहीन होता है उसे मार (मनकी दुष्प्रवृत्तियां) ठीक (वैसे ही) गिरा देता है जैसे वायु दुर्बल वृक्षको ।

बौद्ध साहित्यमें मार अशुभ शक्तिको सूचित करता है, उन सब चीजों-को लक्षित करता है जो आध्यात्मिक जीवनके विरुद्ध हैं अथवा उसका विरोध करती हैं, कुछ विशेष प्रसंगोंमें वह मृत्युको सूचित करता है — उतना भौतिक (शारीरिक) मृत्युको नहीं, जितना सत्यके प्रति, आध्यात्मिक जीवनके प्रति मृत्युको सूचित करता है ।

यहांपर इसका अर्थ यह है कि जबतक मनुष्य अपनी इंद्रियों और कामनाओंको संयमित नहीं करता, और जबतक वह अपनी बाह्य स्थूल तुष्टियोंको ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण वस्तु समझकर उन्हींमें व्यस्त रहता है, तबतक उसमें विरोधी शक्तियोंके, नीचे खींच ले जानेवाली तथा आध्यात्मिक सत्यसे दूर हटा ले जानेवाली वस्तुओंके आक्रमण का सामना करनेके लिये आवश्यक संकल्प-बल नहीं होता ।

धम्मपद नैतिक दृष्टिकोणको उतना अधिक आधार नहीं बनाता, यह वह पाप नहीं है जैसा कि मनुष्य उसे अपनी अंध न्याय-भावना और भले-बुरेकी मनमानी भावनाके द्वारा समझते हैं । आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे पाप वास्तवमें वह वस्तु है जो हमें लक्ष्यसे दूर ले जाती

है, जो कभी-कभी हमें जीवनके मूल अभिप्रायसे भी, हमारी सत्तासे सत्यसे भी दूर ले भागती है और उसे प्राप्त करनेसे हमें रोक देती है। वस, इसी तरह इसे समझना चाहिये।

११-१०-१९५५

ऋषिवर बोले :

कुछ सीखभरी कहानियां

आजका कार्यक्रम तो पहले से ही निश्चित था। पिछली बैठक में कुछ लोगोंने कहानियां सुनायी थीं, आज बाकी लोगोंकी बारी थी। ऋषिवरकी दृष्टि सबसे पहले सवितापर पड़ी और उसने बोलना शुरू किया :

‘महापुरुषोंमें आदमी पहचाननेकी क्षमता होती है। हममेंसे हर एकके अंदर अच्छाई और बुराईके ढेर लगे रहते हैं या यूँ कहें कि अच्छाई और बुराईकी लहरें आती-जाती रहती हैं। अगर हम अच्छी लहरोंको अपने अंदर आने दें और बुरीके लिये दरवाजा बंद कर दें तो हमारा जीवन बदल सकता है। सच्चे महापुरुष इसमें हमारी सहायता करते हैं।

मैं जो घटना सुना रही हूँ यह उन्नीसवीं शताब्दीके तीसरे चरण की है। बंगालमें बहुत बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा था लोग और दाने-दानेको तरल रहे थे। बहुत से अच्छे घरोंके सड़कपर भिखारी बने फिर रहे थे। ऐसे ही समय रास्ता चलते हुए ईश्वरचंद्र विद्यासागरके सामने एक आठ-दस वर्षका लड़का हाथ फैलाकर खड़ा हो गया : “बाबू, एक पैसा दो, बहुत भूख लगी है।” उन दिनों एक पैसेमें चीजें मिल जाती थीं।

विद्यासागर बोले : “अगर मैं दो पैसे दूँ तो ?”

लड़केने कहा : “एक पैसेके चने मैं खुद खाऊंगा और एक पैसेमें मांको दे दूंगा। वह भी भूखी है।”

अप्रैल १९७७

विद्यासागर बोले : "और अगर मैं चार पैसे दूँ ?"

"तब मेरा दो दिनका काम चल जायगा ।"

"और अगर मैं दो आने दे दूँ ?"

लड़का निराश हो गया और वहाँसे चल पड़ा । विद्यासागरने लपककर उसे पकड़ लिया और बोले : "मेरी बातका उत्तर नहीं दिया तुमने । बोलो, क्या करोगे दो आने पाकर ?"

लड़केको अपने कानोंपर विश्वास न हो रहा था । उसने कहा : "तंग न करो, बाबू । देना-लेना तो है नहीं, यूँ ही गरीबको सता रहे हो ।"

विद्यासागरने फिर आग्रह किया तो लड़का बोला : "दो पैसेके चने लूंगा और बाकीके आम खरीदकर बेचूंगा । शायद इससे इतनी आय हो जाय कि मुझे किसी औरके आगे हाथ न फैलाना पड़े ।"

विद्यासागरने उसे एक रुपया पकड़ा दिया और लड़का कमानसे निकले हुए तीरकी तरह गायब हो गया ।

बहुत दिन बीत गये । विद्यासागर किसी कामसे फिर इस नगरमें आये । वह सड़कपर चले जा रहे थे कि अचानक न जाने कहाँसे आकर एक सुन्दर युवकने उनके पांव पकड़ लिये । विद्यासागर उसे देखते रह गये पर पहचान न पाये । उधर युवक कह रहा था : "अपनी चरणरजसे मेरी कुटियाको पवित्र कीजिये," इधर विद्यासागर सोच रहे थे कि यह है कौन जो इतना आग्रह कर रहा है ।

अखिर युवकने अपना परिचय दिया : "मेरा जो कुछ है, सब आपका दिया हुआ है । मैं वही लड़का हूँ जिसे आपने कई वर्ष पहले एक रुपया देकर नया जीवन प्रदान किया था । उस एक रुपयेके बलपर ही आज मैं भिखारीकी जगह छोटा-मोटा दुकानदार हूँ । आप मुझे भूल गये हैं पर मैं अपने जीवन दाताको कैसे भूल सकता हूँ ! " और विद्यासागरने उसे अपनी बाहोंमें भर लिया ।

धन्य है विद्यासागर जैसे उदार महापुरुष और धन्य है वह उदार, उद्यमी कृतज्ञ युवक ।

अब वन्दनाकी बारी थी । उसने कहा : 'सविताने दुर्भिक्षकी बात

की है तो मैं भी दुर्भिक्षकी ही बात कहूंगी। फर्क बस इतना ही है कि इसकी बात सौ वर्ष पहलेकी है और मेरी ढाई हजार वर्ष पहलेकी। मेरी बात तबकी है जब भगवान् बुद्ध इस धरतीपर विचरण करते थे।

बहुत जोरका अकाल पड़ा। सभी जगह खानेके लाले पड़े हुए थे। बहुत-से लोग रोते-धोते तथागतके पास जा पहुंचे। लोगोंको विश्वास था कि वे कुछ-न-कुछ कर सकेंगे, और उन्होंने किया भी। प्रदेशके नगरसेठों, सामंतों और राजाकी सम्मिलित सभा बुलाई गयी। तथागतने सारी स्थिति समझाते हुए लोगोंसे सहायता मांगी।

सबसे पहले अन्नके सब बड़े व्यापारी उठ खड़े हुए और बोले: "मैं अपना सारा अन्न आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, लेकिन खेद है उससे शायद इन सबका आठ दिनका भी काम न चले।"

अब नगरसेठकी बारी थी। उन्होंने कहा: "प्रभु, आज्ञा दें तो मैं भी अपना संपूर्ण कोष लुटा दूँ पर उससे भी शायद अधिक-से-अधिक दस दिनका काम चल सके।" इसी तरह सभी सामंतों और स्वयं राजाने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए सिर झुका लिया।

तथागत क्षण-भरके लिये चिंतित हुए और फिर जिज्ञासा-भरे नेत्रोंसे इधर-उधर देखने लगे। सहसा कहीं पीछेसे एक फटेहाल नारीकी आवाज आयी: "भगवान्, आपका आशीर्वाद हो तो मैं सबके भोजनकी व्यवस्था कर दूंगी।"

सबकी आंखें उसकी ओर मुड़ गयीं। कोई आश्चर्यसे भरा था, कोई घृणासे और कोई इसे एक मजाक मान रहा था। तथागतने पूछा: "तेरे पास है इतना अन्न?"

अबला कहानेवाली नारीने उत्तर दिया: "भगवन्, मेरे पास कुछ भी नहीं है और यही मेरा सबसे बड़ा बल है। इन सबके कुछ-कुछ देनेका वचन दिया है। मैं अपना भिक्षापात्र लेकर हर एकके यहां जाऊंगी और हमारे पास इतना अन्न जुट जायगा कि नयी फसल आनेतक सबका काम चल जाय।"

भगवान्की कृपाके भरोसे भिखारिनका भिक्षापात्र द्रौपदीका

अप्रैल १९७७

अक्षय पात्र बन गया और कोई भी भूखा न मरने पाया।

इस लड़कीका नाम था सुप्रिया।

ऋषिवरके दलमें आज एक नयी लड़की आ गयी थी। उसका नाम तो कुछ और है पर कहाती "विहग" है। तो औरोंकी बातें सुनते-सुनते उसे भी जोश चढ़ आया और ऋषिवरकी अनुमति लेकर उसने कहना शुरू किया :-

'आप लोगोंने मनुष्योंके सेवा-भावकी, सहानुभूतिकी और निःस्वार्थ त्यागकी बातें कही हैं। ये बातें सराहनीय हैं परंतु पशु-पक्षी भी इन भावोंसे वंचित नहीं हैं। एक बहेलिया पक्षियोंका शिकार करने निकला। अभी दो-चारको ही पकड़ पाया था कि जोरका तूफान आ गया और मेहकी झड़ी लग गयी। विवश होकर बहेलिया एक पेड़के नीचे जा बैठा।

पेड़पर कबूतरोंका एक जोड़ा रहता था। इस समय नर तो घोंसलेमें आ चुका था पर मादाका कहीं पता न था। बेचारा कबूतर कभी घोंसलेके अंदर चला जाता कभी बाहर निकल आता, कभी इधरसे उधर फुदकने लगता। उसे चिन्ताने बहुत जोरसे पकड़ रखा था। मादा कहां होगी इस समय? उसका क्या हाल होगा? वह बीच-बीचमें उसे आवाजें देने लगा।

बेचारे कबूतरको क्या पता था कि उसकी मादा उसी पेड़के नीचे बहेलियेके जालमें फंसी पड़ी थी। उसने जो अपने नरकी आवाज सुनी तो जालसे चिल्लायी : "अब मेरी आशा छोड़ दो। यह गरीब बहेलिया जाड़ेके मारे मरा जा रहा है इसकी जान बचाओ। कहींसे सूखे पत्ते इकट्ठे करके यहां आग सुलगा दो।" कबूतर इधर गया, उधर गया। कुछ सूखी घास और कुछ पत्ते ले आया और उन्हें सुलगा दिया।

अब बहेलियेकी जानमें जान आयी। उसकी समझमें आ गया कि इस कबूतरने ही उसकी जान बचायी है। उसने जाल खोलकर कबूतरीको मुक्त कर दिया। अब कबूतर-कबूतरीमें बहस होने

लगी। “बहेलियेने हमारे ऊपर उपकार किया है, हमें उनके पेटका गढ़ा भरनेके लिये कुछ करना चाहिये।”

आखिर दोनों-के-दोनों जलती आगमें कूद पड़े और बहेलियेने कहते गये : “लो, हमें खाकर अपनी क्षुधा शान्त करो।”

इसे कबूतरोंके प्रेमकी कहानी कह लो या उनके निःस्वा-
त्यागकी। इसके उदाहरण मनुष्योंमें मुश्किलसे ही मिलेंगे।

विहगकी कहानी समाप्त होते-न-होते सभाविसर्जनका समय हो गया। लोग विद्यासागर, सुप्रिया और कबूतरकी बातें सोचते-सोचते उठ गये।

सोसायटी समाचार

श्रीअरविन्द सोसायटीकी वार्षिक सभा अगस्त १२ से १४ तक पांडिचेरीमें ही होगी। माताजीकी शताब्दीके लिये अपने-आपको तैयार करने, योजना बनाने और श्रीअरविन्द तथा माताजीके बताये आदर्शोंको चरितार्थ करनेके लिये अपने-आपको अर्पित करनेका एक सुअवसर होगा। सभाके बाद कार्यकर्ताओंके भी शिविर होंगे जिनमें वे शताब्दी-कार्यक्रमोंकी चर्चा करेंगे। विस्तृत जानकारी शायद अगले अंकमें आयेगी, इसी सिलसिलेमें सदस्योंके लिये रेलवे कनसेशन मिलनेकी संभावना है।

शिक्षा-शिविर : माताजीकी शताब्दीके उपलक्ष्यमें पांडिचेरीमें मईसे ५ जूनतकके शिक्षा-शिविरकी व्यवस्था की गयी है। इसमें शिक्षक, विद्यार्थी-शिक्षक, शैक्षिक क्रिया-कलापसंबंधी व्यक्ति और सचि रखनेवाले मां-बाप भी भाग ले सकेंगे। शिक्षाके बारेमें श्रीअरविन्द तथा श्रीमांके विचारोंको चरितार्थ करनेके उद्देश्यसे शिविरमें अध्ययन और विचार-विनिमय होगा। रेलवे कनसेशन नहीं मिले

अप्रैल १९७७

पाया। अधिक जानकारीके लिये सोसायटीके स्थानीय केंद्रमें जाइये या निम्नलिखित पतेपर लिखिये : श्री ए. एच. महादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२।

आंध्र प्रदेशके समस्त श्रीअरविंद सोसायटी केंद्रोंके सारे व्यवस्था-पकोंकी समा पांडिचेरीमें १९ और २० फरवरीको हुई थी। उद्घाटन किया था आश्रमके मैनेजिंग ट्रस्टी श्री कुनूमाने। वक्ताओंमेंसे कुछ आश्रमके लोग थे। तेलुगुमें 'मातृवाणी'के छः खण्डोंके प्रकाशनको आगे चलानेके लिये दस व्यक्तियोंने न्योछावर दी।

नौगांव (म. प्र.) में २ से ७ मईतक शताब्दीके उपलक्ष्य स्वरूप साधना शिविरकी व्यवस्था की जायगी। इस शिविरमें मध्य प्रदेशके सभी केंद्रों तथा शाखाओंके सदस्योंको आमंत्रित किया गया है। साधना स्वाध्याय कार्यक्रम सुबह साढ़े चारसे रातके दस बजेतक रखा गया है। केंद्रने भाग लेनेवालोंके रहने, खाने-पीनेकी व्यवस्था कर दी है।

बीजापुर (कर्नाटक) में सोसायटी केंद्रने अपनी छठी वर्षगांठ ३० जनवरीको मनायी। श्रीअरविंदकी शिक्षापर वाद-विवादकी प्रति-योगिताएं हुई।

श्रीलंकाकी श्रीअरविंद सोसायटीने पत्रिका 'इंटीग्रल विज्ञान'का पहला संस्करण २४ नवंबर, १९७६ को प्रकाशित किया। उद्देश्य है — मानवजाति और समाजका समग्र विकास और पूर्णता। लेख अंग्रेजी, सिंहली और तमिलमें थे।

लॉस एंजलिसमें 'ईस्ट-वेस्ट कल्चरल सेण्टर' ने माताजीका जन्म-दिन मनाया। सुबह-ही-सुबह ध्यान हुआ, श्रीमांकी ही आवाजमें

‘माता’ पुस्तकका पाठ सुनाया गया। सदस्योंने शामको माताजीका लिखा एक छोटा नाटक — ‘महान् रहस्य’ — खेला।

नवसारी (गुजरात) शाखाने २१ फरवरीको माताजीकी निम्नानवी वर्षगांठ मनायी। कई योजनाएं भी बनायीं। उनमेंसे एक थी : २१-२-७७ से २१-२-७८ तक शामको केंद्रमें ध्यान होगा और प्रत्येक बृहस्पतिवार तथा रविवारको मातृवाणीसे कुछ वचन, कुछ अंश पढ़े जायंगे; एक ऊंचे, उदात्त जीवन जीने और माताजीका संदेश फैलाने-के उद्देश्यसे पास-पड़ोसके अध्यापकों, प्रोफेसरोंकी वार्ताएं होंगी। विद्यार्थियोंके लिये वाद-विवादकी प्रतियोगिताएं भी आयोजित होंगी।

इंदौर (म. प्र.) शाखाने माताजीके जन्मदिनपर दो — एक सुबह और एक शामको — सार्वजनिक कार्यक्रम रखे थे।

देहरादून शाखाने २० फरवरीको तीन चर्चाओंका आयोजन किया : ‘शिक्षाके बारेमें माताजी’, ‘भारत — माताजी’, ‘धरतीपर अतिमानसिक अभिव्यक्ति — माताजी’।

नडियादके साधना केंद्रने विद्यार्थियोंके लिये वाद-विवादकी प्रतियोगिताएं रखीं और श्रीअरविदके प्रकाशमें मानव एकतापर वार्ता हुई।

इसी तरह विभिन्न केंद्रोंने अपनी सामर्थ्यके अनुसार श्रीमांका जन्मदिन मनाया और शताब्दी वर्षके उपलक्ष्यमें नाना तैयारियां कर रहे हैं।

बंबईके श्रीअरविद केंद्र, पैडर रोड, ने श्रीअरविदके बताये अनुसार माताजीके रंगीन चक्रको छापकर कार्ड तैयार किये हैं। बारह पंखुड़ियोंका आध्यात्मिक अर्थ अंगरेजी और हिंदीमें दिया है। यह

कार्ड आप यहांसे ले सकते हैं: शब्द, श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी ६०५००२ या श्रीअरविंद सोसायटी, ४०-१३ नालन्दा, ६२ पैडर रोड, बंबई-४०००२६।

नए केंद्र तथा शाखाएं:

१. श्रीअरविंद संस्कार केंद्र
द्वारा श्री राम शिरोद
चालीस गांव-४२४१०१
जिला जलगांव (महाराष्ट्र)
२. श्रीअरविंद सेंटर
द्वारा डा. एम. आर. तिवारी
ज्योति आई होस्पिटल, नवग्रही
बूलिया -४२४००१ (महाराष्ट्र)
३. श्रीअरविंद सोसायटी सेंटर
द्वारा श्री मल्हार राओ
हाउस नं. १०-९ ५६ ब्रह्मपुरी
निजामाबाद -५०३००१ (आं. प्र.)
४. श्रीअरविंद सोसायटी
द्वारा श्री भुवन किशोर गुप्त
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया
देवबन्द-२४७५५४, जिला सहारनपुर, (यू. पी.)
५. श्रीअरविंद सोसायटी सेंटर
द्वारा श्री उपेंद्र एम. केलकर
प्रिसिपल, गवर्नमेंट हायर सेकंडरी स्कूल
हरपालपुर - ४७११११, जिला छतरपुर (म. प्र.)
(शेष आवरण ४ पर)

भगवत्कृपापर पूर्ण विश्वास और निर्भरता बनाये रखना ही,
अंतिम विश्लेषणमें, सर्वोत्तम बुद्धिमानी सिद्ध होता है।

— श्रीमाताजी



स्टार आटोमोबाईल सर्विसेज

पेट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर (उ. प्र.)

एवं

भारत आयल कैरियर्स

लक्ष्मणझुला मार्ग

काशिकेश-२४९२०१



Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमान्

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

बंबई कार्यालय

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्र. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१

जन-

श्रीमां

प्रलिय

लिस्

१००

परेड,

००५

१६५

नं,



श्रीराम यूरिया एक
बहुगुणी खाद जो हर
किस्म की फसल के
लिये उपयुक्त है ।

पत्तियों पर छिड़काव के लिये प्रतिकूल मिट्टी तथा जलवायु या
वर्षा निर्भर खेती में भी एक उत्तम नाइट्रोजन युक्त खाद

श्रीराम यूरिया एक बहुगुणी तथा उत्तम खाद है क्योंकि :

- यह जमीन का उपजाऊपन बढ़ाता है ।
- इसमें नाइट्रोजन की मात्रा अधिक है (४६.४%) ।
- इसको पत्तियों पर छिड़काव के लिये हर किस्म की खेती में प्रयोग
किया जा सकता है; प्रतिकूल जमीन या जलवायु में भी ।
- यह वर्षा निर्भर खेती में भी ऊपरी छिड़काव द्वारा उपज बढ़ा
सकता है ।

याद रखिये श्रीराम यूरिया में बाईप्रुटेड न्यूनतम है ।

पुं. कि. ग्रा.
के बोरे में



श्रीराम केमिकल्स

६. श्रीअरविंद सेंटर

द्वारा श्रीमती रोहिणीताई वादलकर
डा. वादलकर होस्पिटल (धन्वन्तरि)
गणपति रोड, नन्दुरवार-४२५४१२
जिला धूलिया (महाराष्ट्र)

७. श्रीअरविंद सेंटर

द्वारा श्री आर. सी. गुप्त, एडवोकेट
५, नूतन नगर कोलोनी, (टेलीफोन एक्सचेंजके पास)
खरगोन-४५१००१, जिला पश्चिम निमाड़ (म. प्र.)

८. श्रीअरविंद सोसायटी सेंटर

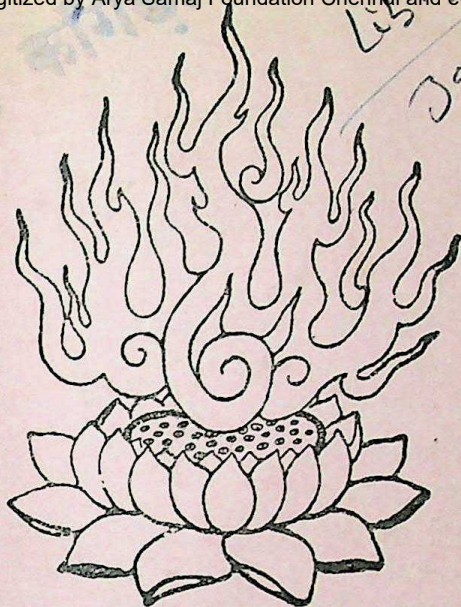
द्वारा श्री श्यामल कुमार सेन
ऋषि अरविंद शिशु विद्या निकेतन
कुक्स कंपाउंड, पुरलिया-७२३१०१
जिला पुरलिया (प. बं.)

९. श्रीअरविंद सोसायटी सेंटर

द्वारा श्री बट्टीकोप्पड़,
श्रीअरविंद अध्ययन मंडली,
पो. ओ. बिलाहल्ली, ताल्लुक : रनेबेनुर
जिला धारवाड़ (कर्नाटक)

१०. श्रीअरविंद योग मंदिर

द्वारा श्री रवींद्र कुमार घोष
विल. एंड पो. ओ. बर्दा-७६७०३२
बाया : किशन नगर
जिला कटक (उड़िसा)



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

ध्यान अंक

मई १९७७

वर्ष ७, अंक १०, पूर्णांक ८२

(श्रीअरविंद सोसायटी और ऐक्शनकी सम्मिलित मासिक पत्रिका)

सूची

माताजीके वचन :

योगके बारेमें	१
ध्यान और प्रगति	२
व्यक्तिगत और सामूहिक ध्यान	५
ध्यान और उसके बाद	१
ध्यान और कल्पना	११
किसी वाक्यपर ध्यान	१५
ध्यान — कई प्रकारके	१९
ध्यान और काम	२२
ध्यानकी अवस्था	२४
सोसायटी समाचार	३०

मासिक पुरोधा — वार्षिक चंदा ८.००; आजीवन सदस्यता १५०.००
मासिक अग्निशिखा — ,, ६.००; आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपदक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००१

ध्यान

योगके बारेमें

क्या आप योगके विषयमें कुछ कहनेकी कृपा करेंगी ?

तुम योग-साधना किसलिये करना चाहते हो ? शक्ति प्राप्त करने-
के लिये ? शांति और स्थिरताकी प्राप्तिके लिये ? मानवजातिकी
सेवाके लिये ?

इनमेंसे कोई भी उद्देश्य यह बतानेके लिये काफी नहीं है कि तुम
इस योग-मार्गके लिये हो ।

तुम्हें जिस प्रश्नका उत्तर देना है वह यह है । क्या तुम भगवान्-
के लिये योग-साधना करना चाहते हो ? क्या भगवान् ही तुम्हारे
जीवनके परम सत्य हैं, यहांतक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं
सकते ? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवनका एक-
मात्र उद्देश्य भगवान् ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवनका कोई
अर्थ नहीं है ? यदि ऐसा हो तभी कहा जा सकता है कि तुम्हारे
अंदर इस योग-मार्गके लिये पुकार है ।

सबसे पहली आवश्यक चीज है भगवान्के लिये अभीप्सा ।

और दूसरी बात है इस अभीप्साको सतत बनाये रखना, उसे सदा
जीवंत, ज्वलंत और जाग्रत रखना । और इसके लिये जिस बातकी
आवश्यकता है वह है एकाग्रता — भगवान्पर एकाग्रता — जो उनके
संकल्प और अभिप्रायके प्रति पूर्ण और निरपेक्ष आत्म-समर्पणके भाव-
से की गयी हो ।

हृदय-केंद्रमें अपने-आपको एकाग्र करो । हृदयमें प्रवेश करो, उसके

अंदर जाओ, उसकी गहराईमें उतरो और दूरतक, जितनी दूरतक तुम जा सको, जाओ। अपनी चेतनाके बाहर बिखरे हुए तारोंको एकत्र कर लो, उन्हें समेटकर अंदर डुबकी लगाओ और तहमें जाकर बैठ जाओ।

वहां, हृदयकी गभीर शांतिमें एक अग्नि जल रही है। यही है तुम्हारे अंतरमें रहनेवाले भगवान्का दिव्य अंश — तुम्हारी सत्य सत्ता (हृत्पुरुष)। इसकी आवाज सुनो और इसके आदेशका पालन करो।

एकाग्रताके लिये दूसरे केंद्र भी हैं, उदाहरणस्वरूप, एक केंद्र मस्तिष्कके ऊपर है (सहस्रार), दूसरा भ्रू-मध्यमें है (आज्ञा)। इनमेंसे हर एकका अपना प्रभाव है और हर एक किसी परिणामपर पहुंचाता है। परंतु केंद्रीय पुरुषका स्थान हृदय है और हृदयसे ही सब केंद्रीय प्रवृत्तियां निकलती हैं — यहींसे रूपांतरके लिये समस्त गतिशीलता और वेग और आत्म-दर्शन करनेकी शक्ति निकलती है।

७ अप्रैल, १९२९ (मातृवाणी खंड ३; प्रश्न और उत्तर १९२९)

ध्यान और प्रगति

क्या ध्यान करनेके लिये अधिकाधिक प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है? क्या यह सच नहीं है कि जितनी अधिक देरतक कोई ध्यान करता है उतनी अधिक प्रगति होती है?

ध्यानमें बिताये गये घंटे आध्यात्मिक प्रगतिका प्रमाण नहीं हैं। आध्यात्मिक प्रगतिका प्रमाण तो तब होगा जब यह अवस्था आ जाय कि ध्यान करनेके लिये तुम्हें किसी प्रकारका प्रयास ही न करना

पड़े, ध्यानको रोकनेके लिये भले ही प्रयासकी आवश्यकता हो। तब ऐसी अवस्था हो जाती है कि ध्यानको रोकना कठिन हो जाता है। भगवान्‌के चिंतनको रोकना, साधारण चेतनामें नीचे उतरना कठिन हो जाता है। जब भगवान्‌में एकाग्रता तुम्हारे जीवनकी परम आवश्यकता बन जाय, जब तुम उसके बिना रह ही न सको, तुम चाहें किसी काममें क्यों न लगे रहो, जब यह अवस्था स्वाभाविक रूपसे रात-दिन बनी रहे — तब समझना चाहिये कि निश्चित रूपसे तुम्हारी प्रगति हुई है, तुमने वास्तविक उन्नति की है। चाहें तुम ध्यान लगाकर बैठो या घूमो-फिरो और काम-काज करो, जिस बातकी तुमसे अपेक्षा की जाती है वह है चेतना। यही एकमात्र आवश्यकता है — भगवान्‌के बारेमें सदा सचेतन रहना।

परंतु क्या ध्यानमें बैठना अनिवार्य संयम नहीं है और क्या इससे भगवान्‌के साथ अधिक प्रगाढ़ और केंद्रित एकता नहीं आती ?

हो सकता है। परंतु हमें कोरा संयम अभीष्ट नहीं है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक कर्म करते समय, प्रत्येक क्षण, हमारी समस्त क्रियाओं और प्रत्येक गतिमें, हमारी चेतना भगवान्‌में केंद्रित रहे। यहां कुछ साधक ऐसे हैं जिनसे ध्यान करनेको कहा गया है, किंतु ऐसे साधक भी हैं जिन्हें किसी प्रकारका ध्यान करनेको नहीं कहा गया। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ध्यान न करने-वालोंकी प्रगति नहीं हो रही है। वे भी एक साधना करते हैं, किंतु वह दूसरे प्रकारकी साधना है। भक्ति और आत्मोत्सर्गके भावके साथ कर्म करना, कार्य करना आव्यात्मिक साधना है। अंतिम उद्देश्य यह है कि केवल ध्यानमें ही नहीं, बल्कि प्रत्येक अवस्थामें, जीवनकी प्रत्येक क्रियामें भगवान्‌के साथ सतत एकताका अनुभव किया जाय।

कुछ लोग ऐसे हैं जो ध्यानमें बैठते हैं तो एक ऐसी अवस्थामें

चले जाते हैं जिसे वे बहुत ही सुंदर और आनंदमय समझते हैं। वे इस अवस्थामें आत्म-संतोषपूर्वक बैठे रहते हैं और जगत्को मूल जाते हैं; किंतु यदि उनके ध्यानमें कोई बाधा पहुंचे तो वे उस अवस्थामेंसे क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर निकलते हैं, क्योंकि उनके ध्यानमें बाधा पड़ी। यह किसी आध्यात्मिक प्रगति का या साधना का लक्षण नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऐसा आचरण करते हैं मानों उन्हें लगता हो कि यह ध्यान का कर्जा चुकाने के लिये है। ये उन लोगों की तरह हैं जो सप्ताहमें एक बार गिरजाघर हो आते हैं और समझते हैं कि उन्होंने भगवान् का सारा पावना चुका दिया।

यदि तुम्हें ध्यान करने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है तो अभी तुम आध्यात्मिक जीवन जी सकने की अवस्थासे बहुत दूर हो। जब ध्यानावस्थासे बाहर निकलने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता हो तब तुम्हारा ध्यान इस बात का संकेत हो सकेगा कि तुम आध्यात्मिक जीवन जी रहे हो। हठयोग और राजयोग जैसी कुछ ऐसी साधनाएं भी हैं जिनका अभ्यास करते हुए भी हो सकता है कि साधक का आध्यात्मिक जीवनसे कोई संबंध न हो। अधिकतर हठ-योग द्वारा शरीर पर और राजयोग द्वारा मन पर संयम हो जाता है। परंतु आध्यात्मिक जीवनमें प्रवेश करने का अर्थ है भगवान् में गोता लगाना, ठीक उसी तरह जैसे कोई समुद्रमें कूद पड़े। और यह भी केवल आरंभ है, अंत नहीं क्योंकि गोता लगाने के बाद तुम्हें भगवान् में निवास करना सीखना होगा। इसका क्या उपाय है? तुम्हें सीधे कूद पड़ना चाहिये, सोचे बिना: “मैं कहां गिरूंगा, मेरी क्या दशा होगी?” तुम्हारी मन की झिझक ही है जो तुम्हें रोकती है। तुम्हें अपने-आपको छोड़ देना चाहिये। यदि तुम समुद्रमें गोता लगाना चाहो और साथ-ही-साथ यह सोचते रहो: “कहीं आस-पास कोई पत्थर या चट्टान न हो!” तो तुम गोता नहीं लगा सकोगे।

२१ अप्रैल, १९२९ (मातृवाणी खंड ३; प्रश्न और उत्तर १९२९)

व्यक्तिगत और सामूहिक ध्यान

इस शाम, ध्यानसे पहले मैं कुछ शब्द कहूंगी, क्योंकि कई व्यक्तियोंने पूछा है कि सम्मिलित ध्यान और व्यक्तिगत ध्यानमें क्या भेद है ?

व्यक्तिगत ध्यान — ध्यान कई प्रकारके होते हैं जिनका कि हम अभ्यास कर सकते हैं, इस चीजको मैं कई बार पहले बता चुकी हूं, उस वारेमें आज फिरसे नहीं कह रही।

परंतु सम्मिलित ध्यानका अभ्यास सब कालोंमें किया जाता रहा है — विभिन्न कारणोंसे, विभिन्न तरीकोंसे और विभिन्न प्रयोजनोंको लेकर। जिसे सम्मिलित ध्यान कहा जाता है वह कुछ लोगोंका एक समुदाय होता है जिसमें लोग किसी निश्चित प्रयोजनके लिये एक जगह एकत्र होते हैं। उदाहरणार्थ, सभी कालोंमें प्रार्थनाके लिये लोग एक जगह इकट्ठे हुआ करते थे; अवश्य ही गिरजाघरोंमें यह एक प्रकारका सम्मिलित ध्यान ही है। परंतु गिरजाघरसे बाहर भी, ऐसे लोग रहे हैं जिन्होंने सार्वजनिक प्रार्थनाओंके लिये सम्मिलित ध्यानका आयोजन किया था। ये प्रार्थनाएं दो विभिन्न प्रकारकी हैं।

हम जानते हैं कि मानव इतिहासके प्रारंभसे लोगोंके कुछ समुदाय अपनी आंतरात्मिक स्थितियोंको सम्मिलित रूपसे अभिव्यक्त करनेके लिये एक जगह इकट्ठे हुआ करते थे। कुछ लोग मिलकर परमात्म-स्तुतिके गीत गाने, भजन गाने, कृपाओंका गुण-गान करने, पूजा-भाव, आभार व कृतज्ञता प्रदर्शित करने और इस प्रकार परमात्माकी स्तुति करनेके लिये इकट्ठे होते थे। दूसरे कुछ लोग — इसके भी ऐतिहासिक उदाहरण हैं — सम्मिलित रूपसे ईश्वरका आवाहन करनेके लिये इकट्ठे होते थे, उदाहरणार्थ, परमेश्वरसे कुछ चीज मांगनेके लिये, और इसे सब एक साथ मिलकर, एक होकर

किया करते थे, इस आशासे कि इस आवाहनमें, इस प्रार्थनामें, इस मांगमें अधिक बल होगा। इसके अनेक लोक-विख्यात उदाहरण हैं। बहुत पुराने उदाहरणोंमेंसे एक १००० ई० का है, जब कुछ भविष्यवक्ताओंने यह उद्घोषित किया था कि अब यह संसारका अंत है, और तब सब स्थानोंपर लोग एकत्र हुए थे सम्मिलित प्रार्थनाएं करनेके लिये और यह अनुरोध करनेके लिये कि संसारका अंत न हो (!) अथवा कुछ भी हो इसकी रक्षा की जाय। अभी विलकुल हाल ही में, आधुनिक कालमें, जब कि इंगलैंडका राजा जॉर्ज, निमोनियासे मर रहा था, लोग न केवल चर्चोंमें, बल्कि राज-प्रासादके सामने, सड़कोंपर एकत्र हुए थे, प्रार्थनाएं करने और परमेश्वरसे यह मांगने कि उसे अच्छा कर दें। ऐसा हुआ कि वह अच्छा हो गया, लोगोंने विश्वास किया कि यह उनकी प्रार्थनाओंसे हुआ . . . । निःसंदेह, यह सामूहिक ध्यानका एकदम बाहरी कह सकती हूं कि, एकदम सांसारिक रूप है।

प्राचीन कालके सभी दीक्षा-समुदायोंमें, सभी आध्यात्मिक स्थानोंमें सामूहिक ध्यानका सदा ही अभ्यास किया जाता था, पर वह प्रेरक भाव सर्वथा भिन्न होता था। वे एकत्र होते थे सामूहिक प्रगतिके लिये, शक्ति, प्रकाश और प्रभावके प्रति एक साथ मिलकर अपने-आपको खोलनेके लिये और . . . । कुछ कम या अधिक रूपसे यही चीज है जिसके लिये हम प्रयास करना चाहते हैं।

तो, इसकी पद्धतियां दो हैं और इन्हींके बारेमें मैं तुम्हें अब बताने जा रही हूं। दोनों हालतोंमें, अभ्यास वैसे ही किया जाता है जैसा कि व्यक्तिगत ध्यानमें, अर्थात्, एक ऐसे आसनसे बैठ जाओ जिसे बनाये रखना तुम्हारे लिये पर्याप्त सुखकर हो, पर ऐसा सुख कर न हो कि नींद ही आने लगे! और उसके बाद, जो कुछ मैं तुम्हें तब बताया था, जब मैं उधर दूसरी ओर वितरणके लिये जा करती थी, उसे करो, अर्थात्, अपने-आपको ध्यानके लिये तैयार करो स्थिर और शांत होनेकी कोशिश करो, केवल बाहरी तौरपर

गप्पें लगाना बंद न करो, बल्कि अपने मनको भी चुप करनेकी कोशिश करो और अपनी चेतनाको, जो तुम्हारे अंदर उठते सब विचारों और तुम्हारे पूर्वाग्रहोंमें छितरी रहती है, उसे जहांतक हो सके पूरी तरह समेटकर वापस लाकर यहां हृदयके क्षेत्रमें, सौरचक्रमें इस तरह केंद्रित करो कि मस्तिष्ककी सभी सक्रिय शक्तियां और वे सब गतियां जो दिमागको दौड़ाती रहती हैं, वापस लायी जा सकें और यहां केंद्रित की जा सकें। यह कुछ सेकंडोंमें भी किया जा सकता है और कुछ मिनट भी लग सकते हैं, यह प्रत्येक व्यक्तिपर निर्भर है। निश्चय ही यह प्रारंभिक मनःस्थिति है। इसके बाद, जब यह हो जाय (अथवा तुम जितनी अच्छी तरह कर सकते हो उतनी अच्छी तरह हो जायें), तो तुम दो वृत्तियां अपना सकते हो, अर्थात्, सक्रिय वृत्ति या निष्क्रिय वृत्ति।

जिसे मैं सक्रिय वृत्ति कहती हूं वह है (मैं इसे सामान्य रूपमें रखूंगी), उस व्यक्तिपर, जो ध्यानका संचालन कर रहा है, अपने-आपको एकाग्र करना, वह तुम्हें जो वस्तु देना चाहता है उसे प्राप्त करनेके संकल्प के साथ उसके प्रति अपने-आपको खोलना अथवा उस शक्तिके प्रति खोलना जिसके संपर्कमें वह तुम्हें लाना चाहता है। यह सक्रिय वृत्ति है, क्योंकि यहां एक संकल्प है जो काम करता है और किसी व्यक्तिके प्रति अपने-आपको खोलनेके लिये, किसी व्यक्तिपर एकाग्र होनेके लिये सक्रिय एकाग्रता है।

दूसरी, निष्क्रिय वृत्ति, वस, यह है : पहले एकाग्रचित्त होओ, जैसा कि मैं तुम्हें बता चुकी हूं, उसके बाद अपने-आपको खोलो, ठीक ऐसे जैसे कोई दरवाजा खोलता है, तुम जानते हो, जानते हो न ! कि तुम्हारे यहांपर (हृदयकी ओर संकेत करते हुए) एक दरवाजा है, एकाग्रचित्त हो चुकनेके बाद तुम दरवाजा खोलते हो और इस प्रकार बने रहते हो (निश्चलताका संकेत करते हुए) अथवा तुम दूसरा, एक पुस्तकका रूपक ले सकते हो, तुम अपनी पुस्तकको पूरा-पूरा खोल देते हो जिसके पृष्ठ बढ़िया और एकदम सफेद हैं, अर्थात्,

सर्वथा नीरव है और जो होगा उसकी प्रतीक्षा करते हुए तुम उसी अवस्थामें बने रहते हो।

ये दो वृत्तियां हैं। जैसा दिन या जैसा अवसर हो उसके अनुसार तुम किसी एक या दूसरीको अपना सकते हो अथवा तुम किसी एकको ही प्रमुखतः चुन सकते हो यदि उससे तुम्हें अधिक सहायता मिलती हो। दोनों ही प्रभावकारी हैं और समान रूपसे उत्तम फल देनेवाली हैं।

अच्छा तो, अब, खास हमारे अपने मामलेमें, मैं तुम्हें बताती हूँ कि मैं क्या करनेका प्रयत्न करती हूँ...। जल्दी ही अब उसे एक वर्ष हो जायगा जब एक बुधवारको अतिमानसिक शक्तिका आविर्भाव हुआ था। तबसे यह बहुत सक्रिय रूपसे कार्य कर रही है, भले बहुत थोड़े लोग ही इसे जानते हैं (!) परंतु फिर भी मैंने सोचा कि अब हमारे लिये समय आ गया है — इसे कैसे समझाऊं? — जब हम ग्रहणशीलता बढ़ानेका प्रयत्न करके उसके कार्यमें कुछ सहायता कर सकते हैं।

अवश्य ही, यह केवल आश्रममें ही नहीं, बल्कि सारे संसार-भर में अपना कार्य कर रही है और हर जगह, जहां कहीं थोड़ी-सी ग्रहणशीलता है, यह — 'शक्ति' कार्यमें लगी है। और मुझे कहना चाहिये कि संसारमें आश्रमके पास ही एकमात्र ग्रहणशीलता, ग्रहणशीलताका एकाधिकार नहीं है परंतु चूंकि बात ऐसी है कि हम सब यहां कम या अधिक यह जानते हैं कि क्या घटित हुआ है, तो हां, मैं आशा करती हूँ कि व्यक्तिगत रूपसे तो हरएक इस अवसरसे लाभ उठानेका पूरा प्रयास कर ही रहा होगा, पर सामूहिक रूपसे भी हम कुछ कर सकते हैं, अर्थात्, सामूहिक रूपमें अधिक-से-अधिक ग्रहणशीलता प्राप्त की जा सके इसके लिये विशेष रूपसे उर्वरा भूमि तैयार करनेके लिये हम क्षेत्रको एकरूप बनानेका प्रयास कर सकते हैं, जिससे समय और शक्तिका यथासंभव कम-से-कम अपव्यय हो।

तो अब, तुम्हें एक सामान्य रूपसे मैंने बताया है कि हम क्या करनेका प्रयास करना चाहते हैं और तुम्हें बस... उसे करना है।

७ फरवरी, १९५७ (मातृवाणी खंड ९; प्रश्न और उत्तर १९५७-५८)

ध्यान और उसके बाद

मां, जब आप कुछ कहती हैं तो हम उसे मनसे समझनेकी कोशिश करते हैं, पर जब आप नीरवतामें कुछ देती हैं तो हमें सत्ताके किस भागपर एकाग्र होना चाहिये ?

ध्यानके लिये सदा ही यह अधिक अच्छा है, — समझ रहे हो न ? हम यहां “ध्यान” शब्दका प्रयोग तो कर रहे हैं, पर इसका मतलब “सिरमें विचारोंकी क्रियाशीलता” नहीं है, बल्कि ठीक इसके विपरीत है — तो ध्यानके लिये सदा ही यह अधिक अच्छा है कि उसे एक केंद्रपर एकाग्र किया जाय, उस केंद्रपर जिसे अभीप्साका केंद्र कहा जा सकता है; जहां अभीप्साकी लौ जलती रहती है, उस सौरचक्रके केंद्रपर अपनी सब शक्तियोंको एकत्र कर लिया जाय, और यदि संभव हो तो, एक ऐसी सजग नीरवताकी स्थिति प्राप्त कर ली जाय जिसमें व्यक्ति मानों किसी अत्यधिक सूक्ष्म चीजको सुननेका प्रयास कर रहा हो, किसी ऐसी चीजको जो उसकी पूर्ण सजगता, पूर्ण एकाग्रता और संपूर्ण नीरवताकी अपेक्षा रखती हो। और फिर, बिल्कुल भी क्रियाशील न हुआ जाय। सोचे या क्रियाशील हुए बिना अपने-आपको इतना खोल देना कि जो कुछ ग्रहण किया जा सकता हो वह सब ग्रहण कर लिया जाय, पर इसकी पूरी सावधानी रखते हुए कि जो वस्तु उस समय हो रही है उसे समझनेकी कोशिश

भी न की जाय, क्योंकि यदि व्यक्ति उसे जानना, यहांतक कि ध्यानसे देखना भी चाहता है तो उसमें एक प्रकारकी मस्तिष्ककी क्रिया बनी रहती है जो ग्रहणशीलताकी पूर्णताके अनुकूल नहीं होती — नीरव रहना, सजग एकाग्रतामें जितना संभव हो उतने समग्र रूपमें नीरव रहना और फिर निश्चल हो जाना।

यदि व्यक्ति इसमें सफल हो जाय तो सब समाप्त होनेपर, जब वह ध्यानसे बाहर आता है तो कुछ देर बाद (सामान्यतः, तुरन्त नहीं), सत्ताके अंदरसे चेतनामें कुछ नयी चीज प्रकट होती है: एक नयी बोध-शक्ति, वस्तुओंका एक नया मूल्यांकन, जीवनमें एक नयी वृत्ति — संक्षेपमें, जीवनका एक नया ढंग प्रकट होता है। यह सब क्षणिक हो सकता है, परन्तु उस क्षणमें, यदि व्यक्ति इधर ध्यान दे तो, उसे पता चलता है कि कोई चीज है जो बोध-शक्ति या रूपांतरके मार्गपर एक कदम आगे बढ़ गयी है। यह एक ज्ञान-लोक हो सकता है, एक ऐसी बोध-शक्ति हो सकती है जो अधिक सच्ची हो या सत्यके अधिक निकट हो, या एक रूपांतरकारी शक्ति हो सकती है जो तुम्हें आंतरिक प्रगति करनेमें या चेतनाको विस्तारित करनेमें या अपनी गतियों एवं क्रियाओंपर प्रभुत्वकी वृद्धिमें सहायता पहुंचाती है।

पर ये परिणाम कभी तात्कालिक नहीं होते। क्योंकि यदि व्यक्ति उन्हें किसी समय देखनेकी कोशिश करे तो वह एक ऐसी सक्रिय अवस्थामें रहता है जो सच्ची ग्रहणशीलताकी विरोधी है। व्यक्ति-को उस समय जितना संभव हो उतना तटस्थ, निश्चल और निष्क्रिय रहना चाहिये, पृष्ठभूमिमें नीरव अभीप्सा अवश्य रहनी चाहिये, पर वह शब्दों, विचारों, यहांतक कि भावनाके रूपमें भी रूपायित नहीं होना चाहिये। उसे एक ऐसी वस्तु होना चाहिये जो तीव्र स्पंदनके रूपमें इस प्रकार ऊपर उठती है (ऊपर उठती लौ की तरहका संकेत), पर जो कोई रूप धारण नहीं करती और सबसे बढ़कर, जो समझने-का कोई प्रयास नहीं करती।

थोड़े अभ्यासके बाद व्यक्ति ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेता है कि जब चाहे, कुछ क्षणोंमें ही, इस स्थितिमें आ जाय, अर्थात्, तब वह ध्यानमें कोई समय नहीं खोता। शुरूमें, स्वभावतः व्यक्तिको धीरे-धीरे मनको शांत करना, चेतनाको एकत्रित और एकाग्र करना होता है, इस प्रकार तीन-चौथाई समय वह तैयारीमें खो देता है। परंतु जब व्यक्ति अभ्यास कर लेता है तो वह दो-तीन क्षणोंमें ही इसे प्राप्त कर लेता है और तब उसे ग्रहण करनेके लिये सारे समयका लाभ मिल जाता है।

स्वभावतः इससे और आगेकी तथा अधिक पूर्ण अवस्थाएं भी हैं, पर वे बादमें प्राप्त होती हैं। परंतु यदि तुम कम-से-कम इस अवस्थाको पा लो तो ध्यानका पूरा लाभ उठा सकते हो।

अब हम प्रयत्न करते हैं।

५ जून, १९५७ (मातृवाणी खंड ९; प्रश्न और उत्तर १९५७-५८)

ध्यान और कल्पना

मधुर मां, जब आप हमें किसी विषयपर ध्यान करनेके लिये कहती हैं, उदाहरणके लिये, जब हम ध्यानके लिये यह विषय चुनते हैं, कि हम प्रकाशकी ओर खुल रहे हैं; तो हम अजीब-अजीब चीजों-की कल्पना करने लगते हैं, एक दरवाजा खुलनेकी कल्पना करते हैं आदि-आदि। लेकिन यह सब हमेशा मानसिक रूप ले लेता है।

यह व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर है। हर एकका अपना विशेष तरीका होता है। यह पूरी तरह हर व्यक्तिपर निर्भर है। कुछ लोगोंके

लिये ऐसे बिब हो सकते हैं जो उनकी सहायता करते हैं; दूसरी ओर, कइयोंका मन ज्यादा भावात्मक होता है और वे केवल भावों या विचारोंको देखते हैं, दूसरे, जो ज्यादा संवेदनों और भावनाओंमें रहते हैं, मनोवैज्ञानिक गतियां, आंतरिक भावनाएं और संवेदन पाते हैं—यह हर एकपर निर्भर है। जिनका भौतिक मन सक्रिय, खास-कर रचनात्मक होता है वे चित्र देखते हैं, पर हर एक एक ही चीज-को अनुभव नहीं करता। उदाहरणार्थ, यदि तुम अपने साथवालेसे पूछो... (साथवालेको संबोधित करते हुए) जब मैं तुम्हें कोई विषय देती हूं तो क्या तुम भी इसी तरहके बिब देखते हो?

कभी-कभी ।

कभी-कभी ?

अधिकतर मैं कुछ महसूस करता हूं ।

अधिकतर क्या होता है ?

एक संवेदन ।

एक संवेदन, हां । बहुधा यह संवेदन होता है (मेरा मतलब सामान्यतया) बिबसे ज्यादा एक संवेदन या अनुभव होता है। बिब हमेशा उनको दीखते हैं जिनमें रचनात्मक मानसिक शक्ति होती है, जिनका स्थूल मन सक्रिय होता है। यह इस बातका लक्षण है कि वह अपनी मानसिक चेतनामें सक्रिय है ।

(वह बच्चा जिसने पहला प्रश्न पूछा था) लेकिन क्या इस तरह यह ठीक है ?

हर चीज ठीक है, यदि उससे कुछ परिणाम आये ! उपाय कुछ भी हो, वह अच्छा है। वह ठीक क्यों न हो?... यह जरूरी नहीं है कि इस तरहके विष हास्यास्पद ही हों। वे बिल्कुल हास्यास्पद नहीं होते, वे मानसिक विष हैं। यदि उनसे कुछ परिणाम हाथ लगता है तो वे बिल्कुल ठीक हैं। यदि उससे तुम्हें कोई अनुभव होता है तो वह ठीक है।

दृष्टांतके रूपमें, जब मैं तुमसे अपने भीतर गहरे पैठनेको कहूँ तो तुममेंसे कुछ संवेदनपर एकाग्र होंगे। इसी तरह कुछ दूसरोंको एक गहरे कुएंमें उतरनेका अनुभव होगा, वे एक अंधेरे और गहरे कुएंकी ओर जाती हुई सीढ़ियोंका चित्र स्पष्टतया देखेंगे और वे नीचे, और नीचे, गहरे, और गहरे उतरते जाते हैं और कभी-कभी ठीक एक द्वारपर जा पहुंचते हैं; वे उसमें घुसनेकी इच्छा लिये वहीं बैठ जाते हैं और कभी-कभी द्वार खुल जाता है, वे अंदर जाते हैं और एक तरहका हॉल या कमरा या गुफा देखते हैं, कुछ इसी तरहका, और वहांसे, यदि वे आगे बढ़ना जारी रखें तो एक और दरवाजेपर पहुंचते हैं और पुनः रुक जाते हैं, प्रयाससे दरवाजा खुल जाता है और वे और आगे बढ़ते हैं, और यदि यह अध्यवसायके साथ किया जाय और वे अनुभवको जारी रख सकें, तो वे अपने-आपको एक दरवाजेके सम्मुख खड़ा पाते हैं जो... एक खास तरहकी दृढ़ता और गांभीर्य लिये होता है। एकाग्रताके महाप्रयाससे दरवाजा खुल जाता है और वे सहसा निर्मलता और ज्योतिके एक हॉलमें प्रवेश करते हैं; और तब — जानते हो? — वे अपनी आत्माके साथ संपर्कका अनुभव प्राप्त करते हैं...। मुझे तो विषोंमें कोई बुराई नहीं दीखती।

नहीं, मां, लेकिन यह तो कोरी कल्पना है, नहीं है क्या, मां?

कल्पना? पर कल्पना क्या है?... तुम ऐसी किसी चीजकी

कल्पना नहीं कर सकते जिसका विश्वमें अस्तित्व न हो। जो चीज कहीं न हो उसकी कल्पना करना असंभव है। केवल एक ही चीज संभव है, वह यह कि तुम अपना विव यथास्थान न रखो : या तो तुम उसे वे गुण और विशिष्टताएं दे दो जो उसमें नहीं हैं या फिर उसकी उचित व्याख्या न देकर और तरहसे व्याख्या कर दो। लेकिन तुम जो कुछ कल्पना करते हो उसका कहीं-न-कहीं अस्तित्व है; सारी बात है उचित स्थानको जानना और उसे वहां बिठा देना। स्वभावतः, यदि यह कल्पना करनेके बाद कि तुम एक दरवाजेके सामने खड़े हो जो खुल रहा है, तुम यह सोचो कि सचमुच तुम्हारे शरीरके भीतर एक भौतिक दरवाजा है तो वह भूल होगी। लेकिन यदि तुम यह समझो कि तुम्हारी एकाग्रताके प्रयासने यह मानसिक रूप लिया है तो यह बिल्कुल ठीक है। यदि तुम मानसिक जगत् की सैर करने निकलो तो तुम्हें इस तरहके अनेक रूप दिखायी देंगे, सब तरहके रूप जिनका भौतिक अस्तित्व नहीं है पर मानसिक जगत् में भली-भांति विद्यमान हैं।

तुम्हारे विचारके रूप लिये बिना तुम किसी चीजके बारेमें सशक्त रूपसे नहीं सोच सकते। लेकिन अगर तुम मान बैठो कि यह रूप भौतिक था तो, स्पष्ट ही, यह भूल होगी। फिर भी मानसिक जगत्में यह पूरी तरह विद्यमान है।

कल्पना निर्माणकी शक्ति है। असंभवों, जिनमें कल्पना नहीं होती वे मानसिक दृष्टिकोणसे निर्माता नहीं होते, वे अपने विचारको ठोस शक्ति नहीं दे सकते। कल्पना कर्मका एक बहुत शक्तिशाली साधन है। उदाहरणार्थ, यदि तुम्हारे कहीं दर्द हो रहा है और तुम यह कल्पना कर सको कि तुम उसका लोप किये दे रहे हो या दूर हटा रहे हो या नष्ट कर रहे हो — ऐसी सब तरहकी कल्पनाएं — तो बहुत अच्छी तरह सफल होते हो।

एक आदमीकी कहानी है कि उसके बाल बड़ी तेजीसे झड़ रहे थे, इतने कि कुछ ही हफ्तोंमें वह गंजा हो जाता। तब किसीने

मई १९७७

१५

उससे कहा : "जब तुम कंधी करो तो यह कल्पना करो कि ये बढ़ रहे हैं, और बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं।" और हर बार कंधी करते समय वह कहता : "ओह ! मेरे बाल बढ़ रहे हैं, ये बड़ी तेजीसे बढ़ रहे हैं..." और ऐसा ही हुआ ! जब कि, सामान्यतया, लोग करते यह हैं कि वे अपने-आपसे कहते हैं : "ओह ! फिर से मेरे बाल झड़ने शुरू हो गये, अब मैं गंजा हो जाऊंगा, यह निश्चित है, यह जरूर होगा !"

स्पष्ट है कि ऐसा ही होता !

२७ अगस्त, १९५८ (मातृवाणी खंड ९, प्रश्न और उत्तर १९५७-५८)

किसी वाक्यपर ध्यान

मां, शुक्रवारकी कक्षाओंमें, आप प्रायः हमें कोई एक वाक्य पढ़कर सुनाती हैं और उसपर ध्यान करनेके लिये कहती हैं। लेकिन एक वाक्यपर ध्यान कैसे किया जाय ? क्या हमें सोचना चाहिये, उसके भावपर ध्यान करना चाहिये या...क्या करना चाहिये ?

वाक्यपर ध्यान करना ?

जी ।

स्पष्ट ही है, उसके अर्थपर ।

अर्थात्, हमें सोचना चाहिये...

हां, तो फिर ?

क्योंकि मां, वह मानसिक क्रिया हो जाती है, नहीं होती क्या ?

वाक्य तो पहलेसे ही मानसिक रचना है; मानसिक रचना की जा चुकी है। वाक्य उस मानसिक रचनाकी अभिव्यक्ति है। अतः जब तुम किसी वाक्यपर ध्यान करो तो उसके दो तरीके हैं। एक सक्रिय, साधारण बाह्य तरीका है शब्दोंके अर्थपर विचार करने और उन्हें समझनेकी कोशिश करनेका, वाक्यके ठीक-ठीक अर्थको बौद्धिक रूपसे समझनेका — यह है सक्रिय ध्यान। तुम उन चंद शब्दोंपर एकाग्र होते हो और उनसे जो विचार व्यक्त हुआ है उसे लेकर तर्क, निगमन, विश्लेषणद्वारा उसके अर्थको समझनेकी कोशिश करते हो।

एक दूसरा तरीका है जो अधिक सीधा और गहरा है; इस मानसिक रचनाको, शब्दोंके इस समवायको और जिस विचारका ये प्रतिनिधित्व करते हैं उसको लेना और अपने ध्यानकी सारी शक्तिको उसपर केंद्रित करना, अपनी सारी शक्तिको उस रचनापर एकाग्र होनेके लिये अपने-आपको बाध्य करना। उदाहरणके लिये, स्थूल रूपसे देखी हुई किसी चीजपर अपनी सारी शक्तिको एकाग्र करनेके स्थानपर तुम उस विचारको लेते हो और उसपर अपनी सारी शक्ति एकाग्र करते हो — स्वभावतः, मनमें।

और उसके बाद यदि तुम विचारको एकाग्र करनेमें और उसकी चंचलताको रोकनेमें सफल हो जाते हो तो बहुत सहज ढंगसे शब्दोंद्वारा व्यक्त विचारको लांघकर उनके पीछेके भावतक पहुंच जाते हो जो दूसरे शब्दोंद्वारा, दूसरे रूपोंद्वारा व्यक्त हो सकता है। भावकी विशिष्टता है अपनेको अलग-अलग विचारोंसे भूषित करनेकी शक्ति। और जब तुम इतनी दूरतक चले जाते हो तो तुम शब्दोंके सरल बोवकी अपेक्षा कहीं अधिक गहरे जा पहुंचते हो। स्वाभाविक है कि यदि तुम एकाग्रताका अभ्यास करते रहो और तुम्हें यह पता हो कि इसे ऐसे किया जाता है तो तुम भावको पार कर इसके पीछे छिपी आलोकमयी शक्तितक जा सकते हो। तब वहां तुम बृहत्तर

और गहनतर प्रदेशमें प्रवेश करते हो। पर उसके लिये कुछ प्रशिक्षण अपेक्षित है। फिर भी, अंततः ध्यानकी रीति यही है।

यदि तुम काफी गहराईमें जानेमें सफल हो जाते हो तो तुम्हें भावके पीछे 'मूलतत्त्व' और 'शक्ति' मिलती हैं और ये ही तुम्हें सिद्धिकी शक्ति प्रदान करती हैं। जो लोग ध्यानको आध्यात्मिक विकासके साधनके रूपमें अपनाते हैं वे इसी तरहसे चीजोंके पीछे स्थित 'मूलतत्त्व'के साथ एक हो जानेमें और इन चीजोंपर ऊपरसे क्रिया करनेमें सफल होनेकी शक्ति पाते हैं।

पर इतनी दूर गये बिना भी (इसका मतलब है काफी कड़ा अनुशासन, कठोर अभ्यास, है न?), तुम विचारसे भावतक काफी आसानीसे जा सकते हो, तब वह तुम्हें मनमें प्रकाश और बोध प्रदान करता है जिसके कारण तुम्हें भावको अपने मनचाहे रूपमें व्यक्त करनेकी छूट होती है। एक भाव बहुत-से विभिन्न रूपोंमें, बहुत-से विभिन्न विचारोंमें उसी तरह व्यक्त हो सकता है, जैसे, जब तुम अधिक भौतिक स्तरपर उतर आते हो तो एक विचार बहुत-से विभिन्न शब्दोंद्वारा व्यक्त किया जा सकता है। नीचेकी ओर, अभिव्यक्ति-की ओर जाते हुए, यानी, भाषण या लेखनद्वारा व्यक्त करनेके लिये बहुत-से विभिन्न सूत्र होते हैं जो विचारको व्यक्त करनेके काममें आते हैं, लेकिन यह विचार, विचारके उन अनेक रूपोंमेंसे सिर्फ एक रूप है जो भावको, पीछे स्थित 'मूलतत्त्व'को व्यक्त करते हैं और यदि और गहराईतक जाया जाय तो स्वयं इस भावके पीछे आध्यात्मिक ज्ञान और शक्तिका एक सारतत्त्व विद्यमान है जो, फिर, सब जगह फैल सकता है और अभिव्यक्त जगत्पर कार्य कर सकता है।

जब तुम्हारे पास कोई विचार होता है तो तुम शब्द ढूँढते हो, है न? और फिर अपने विचारको अभिव्यक्त करनेके लिये तुम शब्दोंको व्यवस्थित करनेकी कोशिश करते हो; तुम एक विचारको व्यक्त करनेके लिये अनेक शब्दोंका प्रयोग कर सकते हो, तुम अपने-

आपसे कहते हो : “नहीं, जरा ठहरो, यदि मैं उस शब्दके बदले इस शब्दका उपयोग करूं तो मैं जो सोच रहा हूं उसे यह कहीं अधिक अच्छी तरह व्यक्त करेगा।” जब तुम्हें लिखनेका और लेखन शैलीका प्रशिक्षण दिया जाता है तो यही सिखाया जाता है।

परंतु जब मैं तुम्हें एक लिखित वाक्य देती हूं जिसमें विचारको व्यक्त करनेकी शक्ति होती है और तुम्हें उसपर एकाग्र होनेके लिये कहती हूं तब, विचारके इस रूपसे तुम इसके पीछे स्थित भावतक जा सकते हो जो अनेक विभिन्न विचारोंमें अभिव्यक्त हो सकता है। यह एक बड़ी क्रम-परंपराके समान है : ‘मूलतत्त्व’ एकदम शिखरपर है, पर वह अपने-आपमें अंतिम नहीं है क्योंकि तुम उससे और भी ऊपर उठ सकते हो; पर इस ‘मूलतत्त्व’को भावोंमें व्यक्त किया जा सकता है, और ये भाव अनेक विचारोंमें व्यक्त किये जा सकते हैं और ये अनेक विचार बहुत-सी भाषाओंका, और उससे भी अधिक शब्दोंका प्रयोग कर सकते हैं।

जब मैं तुम्हें कोई विचार देती हूं तो वह केवल तुम्हें एकाग्र होनेमें सहायता देनेके लिये होता है... कुछ संप्रदाय तुम्हारे सामने कोई चीज रख देते हैं — एक फूल या पत्थर, कुछ इसी तरहकी चीज, और फिर तुम सब उसके इर्द-गिर्द बैठकर उसपर एकाग्र होते हो और तुम्हारी आंखें इस तरह स्थिर हो जाती हैं (माताजी दिखाती हैं कि कैसे), जबतक कि तुम वह विषय-वस्तु ही न बन जाओ। एकाग्रताका यह भी एक तरीका है। उस तरह लगातार, बिना हिले-डुले देखनेसे, अंतमें, जिस वस्तुको तुम देखते हो उसमें प्रवेश पा जाते हो। लेकिन तुम्हें सब तरहकी चीजोंको देखना शुरू नहीं कर देना चाहिये : स्थिरतासे उसीको देखो। वह तुम्हें एक ऐसा रूप देती है जो... तुम्हें भेंगा कर देती है।

यह सब एकाग्रता सिखानेके लिये है। वस, इतना ही।

कभी-कभी इतमसे कोई वाक्य बहुत गहन सत्यको व्यक्त करता है। यह उन सौभाग्यशाली वाक्योंमेंसे एक होता है जो बड़े भाव-

मई १९

पूर्ण होते
करता है

२७ अग

कुछ

एक को

अधिक

जो लो

उनमेंसे,

भी ध्य

विषयमें

स्वाभा

है और

आपसे

विषयमें

मनुष्यों

विषयमें

अधिकां

ध्या

एक वि

लिये

व्यान

लोग

पूर्ण होते हैं। अतः यह पीछे स्थित सत्यको पानेमें तुम्हारी सहायता करता है।

२७ अगस्त, १९५८ (मातृवाणी खंड ९; प्रश्न और उत्तर १९५७-५८)

ध्यान — कई प्रकारके

कुछ लोगोंका ख्याल है कि आध्यात्मिक जीवनका चिह्न है एक कोनेमें चुपचाप बैठ जाना और ध्यान करना ! यह बहुत, बहुत अधिक प्रचलित धारणा है। मैं कठोर होना नहीं चाहती, परंतु जो लोग ध्यान करनेकी अपनी क्षमताके विषयमें गर्व करते हैं, उनमेंसे, मैं नहीं समझती कि, अधिकांश व्यक्ति एक घंटेमें एक मिनट भी ध्यान करते हैं। जो लोग सचमुच ध्यान करते हैं वे उसके विषयमें कभी गर्व नहीं करते; उनके लिये यह एक विलकुल स्वाभाविक चीज होती है। जब यह एक स्वाभाविक चीज बन जाती है और उसमें गौरव अनुभव करनेका कुछ नहीं रहता, तुम अपने-आपसे कह सकते हो कि तुम प्रगति कर रहे हो। जो लोग इस विषयमें बहुत बातें करते हैं और समझते हैं कि यह चीज उन्हें बाकी मनुष्योंके मुकाबले एक प्रकारका बड़प्पन प्रदान करती है, उनके विषयमें तुम निश्चित रूपसे यह मान सकते हो कि वे अपना-अधिकांश समय पूर्ण जड़ताकी स्थितिमें बिताते हैं।

ध्यान करना बड़ा कठिन है। ध्यान कई प्रकारके हैं...। तुम एक विचारको ले सकते हो और एक विशेष परिणामपर पहुंचनेके लिये उसका अनुसरण कर सकते हो — यह एक प्रकारका सक्रिय ध्यान है; जो लोग कोई समस्या सुलझानेका प्रयास करते हैं या जो लोग लिखना चाहते हैं वे यह जाने बिना कि वे ध्यान कर रहे हैं,

इस प्रकार ध्यान करते हैं। दूसरे, बैठ जाते और किसी चीजपर एकाग्र होनेका प्रयत्न करते हैं, वे किसी विचारका अनुगमन नहीं करते; वे बस एक बिंदुपर एकाग्र होनेका प्रयास करते हैं ताकि उनकी एकाग्रताकी शक्ति घनीभूत हो उठे। और तब वही होता है जो साधारणतया एक बिंदुपर एकाग्र होनेपर होता है: यदि तुम एक बिंदुपर — वह चाहे मानसिक, प्राणिक या भौतिक हो — अपनी एकाग्रताकी क्षमताको पर्याप्त रूपमें एकत्र करनेमें सफलता पा लेते हो तो एक विशेष मुहूर्तमें तुम आगे बढ़ जाते और एक दूसरी चेतनामें प्रवेश कर जाते हो। फिर दूसरे लोग अपने मस्तकमें सारी क्रियाओं, विचारों, प्रक्षेपों, प्रतिक्रियाओंको निकाल बाहर करनेकी चेष्टा करते हैं और एक प्रकारकी यथार्थ रूपमें निश्चल-नीरव प्रशान्तिको प्राप्त करते हैं। यह अत्यंत कठिन कार्य है। कुछ लोगों ने २५ वर्षोंतक इसका प्रयास किया पर वे सफल नहीं हुए। क्योंकि यह काम कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा कि किसी सांडको सींगों से पकड़ना।

एक दूसरे प्रकारका ध्यान है जिसमें मनुष्य जहांतक संभव होता है, शांत-स्थिर होता है, परंतु सभी विचारोंको बंद कर देनेका प्रयास नहीं करता, क्योंकि कुछ विचार ऐसे होते हैं जो शुद्ध रूपमें यंत्रवत् होते हैं और यदि तुम उन्हें बंद करनेकी कोशिश करो तो उसमें तुम्हें वर्षों लग जायंगे और फिर भी इस व्यापारमें तुम फलके विषयमें निस्संदिग्ध नहीं हो सकते। उसके स्थानमें तुम अपनी समूची चेतनाको एक साथ एकत्र कर लेते हो और जितना संभव होता है उतना स्थिर और शांत बने रहते हो; तुम बाहरी चीजोंसे इस तरह अपनेको पृथक् कर लेते हो मानों उनमें तुम्हें बिल्कुल रस नहीं मिलता और एकाएक तुम अभीप्साकी उस लौको उद्दीप्त कर लेते हो और जो कुछ तुम्हारे पास आता है उसको उसमें झोंक देते हो ताकि वह लौ अधिक और अधिक, अधिक और अधिक ऊपर उठे; तुम उसके साथ एकात्म हो जाते हो और अपनी चेतना और अभीप्साके चरम

शिखर तक ऊपर चले जाते हो, — उस समय अन्य किसी चीज का विचार नहीं करते — महज एक अभीप्सा होती है जो ऊपर उठती है, ऊपर-ही-ऊपर उठती चली जाती है, परिणामका एक क्षण भी विचार नहीं आता, क्या होगा और विशेष रूपसे, क्या नहीं होगा, इसका जरा भी विचार नहीं रहता और सबसे ऊपर, तुम्हारे लिये कोई चीज हो इसकी इच्छा रखनेका विचार भी नहीं होता — बस, होता है उस अभीप्साका आनंद जो ऊपर उठती है, ऊपर-ही-ऊपर उठती जाती है, अधिकाधिक तीव्र होती हुई एक सतत एकाग्रतामें बदल जाती है। और तब, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि सबसे उत्तम बात जो हो सकती है वही होती है। कहनेका तात्पर्य, उस समय, जब तुम इसे करते हो तब, तुम्हारे अंदरकी अधिक-से-अधिक संभावनाएं ही चरितार्थ होती हैं। ये संभावनाएं व्यक्ति-व्यक्तिके अनुसार बहुत भिन्न प्रकारकी हो सकती हैं। परंतु उस समय निश्चल-नीरव होने, बाह्य रूपोंके पीछे जाने, उत्तर देनेवाली शक्ति-को पुकारने, अपने प्रश्नोंके उत्तरकी प्रतीक्षा करने आदिकी चेष्टा करनेकी सारी चिंता मिथ्या कुहासेकी तरह विलीन हो जाती है। और यदि इस लौके अंदर, ऊपर उठनेवाली अभीप्साके इस स्तंभके अंदर सचेतन रूपसे रहनेमें तुम सफल होओ तो देखोगे कि यद्यपि तुम्हें तुरत कोई परिणाम नहीं प्राप्त होता, तो भी कुछ समय बाद कुछ-न-कुछ तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा।

१२ फरवरी, १९५१

(मातृवाणी, खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० १०४-०६)

ध्यान और काम

“... एक समय ऐसा आता है जब तुम्हें ध्यान बंद करनेका प्रयास करना पड़ता है; उस समय तुम्हारे लिये ध्यान बंद करना कठिन हो जाता है, भगवान्‌का चिंतन बंद करना कठिन हो जाता है, साधारण चेतनाके स्तरपर नीचे उतर आना कठिन हो जाता है।”
(प्रश्न और उत्तर, १९२९)

मैं कितना चाहती हूँ कि यह बात सबके लिये सच्ची हो जाती ! तुम अत्यंत श्रमसाध्य काममें लग सकते हो, उदाहरणार्थ, ‘बास्केट-बॉल’ खेल सकते हो, जिसमें बहुत अधिक दौड़-घूँप करनेकी आवश्यकता होती है, और फिर भी तुम भगवान्‌के ऊपर अपने आंतरिक ध्यान और एकाग्रताका भाव नहीं खोओगे। और जब तुम इस स्थितिमें पहुँच जाओगे तो तुम देखोगे कि जो कुछ भी तुम करते हो वह अब एक दूसरे प्रकारका होता है, तुम केवल पहलेसे अच्छा ही नहीं करते, बल्कि उसे एकदम अप्रत्याशित शक्तिके साथ करते हो और उसके साथ ही तुम अपनी चेतनाको इतनी ऊँची और इतनी पवित्र बनाये रखते हो कि अब उसे कोई चीज छू भी न सके। और यह याद रखो कि यह अवस्था इतनी दूरतक जा सकती है कि यदि कोई दुर्घटना भी तुम्हारे साथ हो जाय तो उससे तुम्हें कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। अवश्य ही यह परमोच्च अवस्था है, पर यह एक ऐसी परमोच्च अवस्था है जिसकी हम अभीप्सा कर सकते हैं।

तुम सर्वसामान्य लोगोंकी तरह यह विश्वास करनेकी भूल मत करो कि तुम्हें एक ऐसे एकांत, नीरव कोनेमें बैठ जाना चाहिये जिधर कोई नहीं आता-जाता, जहाँ तुम अत्यंत उच्च स्थितिमें और एकदम अचल-अटल रहते हो जिसमें कि तुम ध्यान कर सको — यह

वांत सत्य नहीं है। आवश्यक यह है कि तुम सभी परिस्थितियोंमें ध्यान करनेमें समर्थ होओ, और मैं कहती हूं कि “ध्यान करनेमें” समर्थ होओ, अपने मस्तकको खाली करनेमें ही नहीं, बल्कि भगवान्-के ध्यानमें अपनेको एकाग्र कर लो; और, तुम यदि अपने अंदर इस ध्यानकी स्थितिको बनाये रखो तो जो कुछ तुम करोगे उसकी जाति ही बदल जायगी — उसका बाहरी रूप नहीं बदलेगा, क्योंकि ऊपरसे देखनेमें तो वह वही चीज रहेगी, पर उसका विशिष्ट गुण बदल जायगा। जीवनका स्वरूप बदल जायगा और तुम, तुम अनुभव करोगे कि जो कुछ तुम थे उससे कुछ भिन्न व्यक्ति हो गये हो, तुम अपने साथ एक प्रकारकी शान्ति, निश्चयता, आंतरिक स्थिरता, अपरिवर्तनीय शक्ति, एक ऐसी चीज अनुभव करोगे जो कभी हार नहीं मानती।

ऐसी स्थितिमें तुम्हें हानि पहुंचाना कठिन होगा — शक्तियां बराबर चेष्टा करती हैं, यह संसार ऐसी विरोधी शक्तियोंसे भरा हुआ है जो प्रत्येक चीजको उलट-पुलट देनेका प्रयास करती हैं...। परंतु उन्हें बहुत थोड़ी मात्रामें ही सफलता मिलती है, केवल उतनी ही मात्रामें जो नये रूपमें उन्नति करनेके लिये तुम्हारे लिये आवश्यक होता है।

जीवनमें जब-जब तुम्हें कोई आघात मिले तब-तब तुम तुरत अपने-आपसे कहो: “आह! मुझे प्रगति करनी है;” तब आवात आशीर्वाद बन जायगा। तुम अपने सिरको कंधोंके बीच झुकानेके बंदले हर्षके साथ उसे ऊपर उठा लो और कहो: “वह कौन-सी चीज है जिसे मुझे अभी सीखना है? मैं यह जानना चाहता हूं। कौन-सी चीज है जिसे मुझे परिवर्तित करना है? मैं उसे जानना चाहता हूं।” बस, यही तुम्हें करना चाहिये।...

आप जिस अभीप्साकी, जिस ध्यान-चिंतनकी बात कर रही हैं वह क्या बाह्य क्रिया-कलापोंसे असंगत नहीं है?

नहीं, यदि विरोध है तो इसका अर्थ है कि एकाग्रता समुचित ढंग-से नहीं की जाती। निस्संदेह, जगत् मिथ्यात्वकी इसी स्थितिमें है जिसमें मनुष्य अपना बाह्य सत्ताके संपर्कको खोये बिना अपने अंदर दिव्य उपस्थितिके ऊपर एकाग्र नहीं हो सकता। मैं यह नहीं कहती कि यह बहुत आसान है, मैंने इसे कुछ-कुछ सुदूरस्थित आदर्शके रूपमें ही तुम्हें दिया है, पर यह बिल्कुल संभव है और इसे किया जा चुका है, इस बातका मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ और इससे सुरक्षित रूपसे आगे बढ़नेकी क्षमतामें कोई कमी नहीं आती।

१७ फरवरी, १९५१

(मातृवाणी खंड ४, प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० १२२-२५)

ध्यानकी अवस्था

“कुछ ऐसे लोग हैं, जब वे ध्यानके लिये बैठते हैं तो एक ऐसी अवस्थामें चले जाते हैं जिसे वे बहुत अच्छा और आनंददायक मानते हैं।”

(प्रश्न और उत्तर १९२९; २१ अप्रैल)

वह कौन-सी अवस्था है?

वह जो भी हो, वह सोचते हैं कि यह आनंददायक और अनोखी है। उनकी अपने बारेमें बहुत अच्छी राय होती है। वह मानते हैं कि चूंकि वह बिना हिले-डुले, चुपचाप बैठ सकते हैं इसलिये बहुत ही ज्यादा विलक्षण हैं, और अगर वह किसी चीजके बारेमें सोचते भी नहीं तब तो और भी विलक्षण हैं। लेकिन साधारणतः उनके दिमागमें एक प्रकारका बहुमूर्तिदर्शी या बहुरंगदर्शी-यंत्र चलता रहता है और उन्हें उसकी खबर भी नहीं होती। फिर भी जो

लोग कुछ क्षण कुछ बोले और सोचे बिना, हिले-डुले बिना रह सकते हैं उनकी अपने बारेमें बहुत ही अच्छी राय होती है। हां, जैसा कि मैंने कहा, अगर उन्हें उस अवस्थामेंसे बाहर निकाला जाय, अगर कोई आकर उनका दरवाजा खटखटाये और उनसे कहे : “कोई आपके लिये प्रतीक्षा कर रहा है,” या “श्रीमतीजी, आपका वच्चा रो रहा है,” तो वे आपसे बाहर होकर चिल्ला पड़ेंगे : “लो, तुमने मेरा ध्यान खराब कर दिया, सत्यानाश कर दिया।” मैं ऐसी बातें कह रही हूं जो मैंने अपनी आंखोंसे देखी हैं। ऐसे लोग देखे हैं जो अपने ध्यानके बारेमें बहुत गंभीर थे और ध्यानमें जरा-सी बाधा पड़ते ही उग्र रूपसे क्रुद्ध हो उठते थे। . . . स्वभावतः, यह बड़ी आध्यात्मिक प्रगतिका चिह्न नहीं है। अगर उन्हें अपने आनंदपूर्ण ध्यानसे बाहर निकाला जाता तो वे हर एकपर झल्ला पड़ते थे।

जो लोग ध्यान करते हैं उनमेंसे कुछ ध्यान करना जानते हैं। वह किसी विचारपर नहीं, नीरवतामें ध्यान लगाते हैं — आंतरिक ध्यान, जिसमें उनका कहना है कि वे भगवान्के साथ एकत्व भी पा लेते हैं। और वह बिल्कुल ठीक है। कुछ और हैं, बहुत थोड़े-से, जो किसी विचारका बहुत सावधानीसे अनुसरण कर सकते हैं और यह जाननेकी कोशिश करते हैं कि उसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है। यह भी ठीक है। लेकिन अधिकतर लोग एकाग्र होनेकी कोशिश करते हैं और एक प्रकारकी आधी नींदमें या कम-से-कम तामसिक अवस्थामें प्रवेश कर जाते हैं। वह किसी प्रकारकी जड़ चीज बन जाते हैं, मन जड़ हो जाता है, भावना जड़ हो जाती है, शरीर जड़ हो जाता है। वह घंटों इस अवस्थामें रह सकते हैं क्योंकि तमस्के जैसी स्थायी चीज और कोई नहीं होती ! मैं इस समय तुमसे जो कुछ कह रही हूं — ये सब ऐसे लोगोंके अनुभव हैं जिनसे मैं मिली हूं। और ये लोग जब अपने ध्यानसे बाहर आते हैं तो यही समझते हैं कि उन्होंने कोई बहुत बड़ा काम कर लिया है। लेकिन सचमुच वे सीधे-सीधे तमस् और निश्चेतनामें

उतर गये थे। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो सचमुच ध्यान करना जानते हों। और फिर यह मान भी लें कि बहुत-सी साधना और बरसोंके प्रयासके बाद तुम अपने ध्यानमें भागवत सत्ताके साथ सचेतन संपर्क साधनेमें सफल हो गये हो तो स्पष्ट है कि यह परिणाम है और इस परिणामका तुम्हारे चरित्र और जीवनपर प्रभाव होना चाहिये। परंतु यह प्रभाव व्यक्ति-व्यक्तिपर अलग-अलग होता है। ऐसे उदाहरण हैं जहां व्यक्ति ऐसे दो भागोंमें बंट जाता है कि जब ऐसे लोग ध्यानमें होते हैं तो भगवान्‌के साथ संपर्कमें आते हैं और उनके साथ तादात्म्यका परम आनंद प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन जब ध्यानसे बाहर आते हैं, साधारण जीवनमें उतरते हैं, जीना और काम करना शुरू करते हैं तो बहुत ही मामूली आदमी बन जाते हैं जिनकी बहुत मामूली और कमी-कमी तो बहुत ही गंवारू और भद्दी प्रतिक्रियाएं होती हैं। वास्तवमें, मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं जो एकदम साधारण मनुष्य बन जाते हैं और तब, उदाहरणके लिये, ऐसी सब चीजें करते हैं जो नहीं करनी चाहिये, जैसे, दूसरोंके बारेमें गर्भें लगानेमें समय बिताते हैं, केवल अपने बारेमें ही सोचते हैं, उनकी एकदम स्वार्थ-भरी प्रतिक्रिया होती है, हमेशा अपनी ही तुच्छ भलाईके बारेमें सोचते हैं, किसी औरके बारेमें सोचते भी नहीं, कमी किसीके लिये कुछ नहीं करते और उनमें कोई बड़े विचार नहीं उठते। फिर भी वे अपने ध्यानमें उस संपर्कको पा चुके हैं। इसीलिये जो लोग यह जान चुके हैं कि इस शरीरके साथ लगी तुच्छ बाहरी प्रकृतिको बदलना कितना मुश्किल है अपने परे जाना, अपनी गतिविधियोंका रूपांतर करना कितना कठिन है, वे कहते हैं कि यह संभव ही नहीं है, प्रयास करनेका कोई लाभ नहीं। संसारमें आकर तुमने माटीका शरीर धारण किया है। तुम्हें बस उसे छोड़कर चले जानेकी तैयारी करनी चाहिये, संसार जैसा है, रहने दो। बस, करने लायक काम यही है, जितनी जल्दी हो सके यहां से भाग चलो। और अगर सभी भाग जायं तो फिर

संसार
संगत
स्वार्थ
छोड़
हर
जायं
मानों
में को
हैं ?
यह ज
कर स
नहीं
भी प
है कि
भाग
प्रयत्न
विषय
है।
आंतरि
वहां
हैं),
रूपांतर
है।
जो
चाहे
वातकी
करते
इस त

संसार ही न रह जायगा और दुःख-दार्द्र्य न रहेगा। बात तर्क-संगत है। अगर उनसे कहा जाय: "तुम जो कह रहे हो वह बहुत स्वार्थपूर्ण है, तुम अपने-आप तो चले जाओ और दूसरोंको छुटपटाते छोड़ दो," — "वस, वे सब भी यही करें जो मैं कर रहा हूं। अगर हर एक वही करे जो मैं कर रहा हूं तो वे सब भी छुटकारा पा जायेंगे, तब कोई संसार ही न रहेगा, कोई दुःख-दर्द न रहेगा।" मानों यह सब व्यक्तियोंकी इच्छापर निर्भर है जिनका संसारके निर्माण-में कोई हाथ न था! वे उसे समाप्त करनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? कम-से-कम यदि यह संसार उनका बनाया हुआ होता तो वे यह जानते यह कैसे बनाया गया है और तब उसे बिगाड़नेकी कोशिश कर सकते थे (यद्यपि अपनी बनायी चीजको बिगाड़ना हमेशा आसान नहीं होता)। लेकिन यह सृष्टि उन्होंने नहीं बनायी, उन्हें यह भी पता नहीं है कि इसे कैसे बनाया गया है और उन्हें यह दुराशा है कि वे इसे भेट सकेंगे क्योंकि उन्हें आशा है कि वे स्वयं इससे भाग सकेंगे...। मुझे नहीं लगता कि वह संभव है। आदमी प्रयत्न करनेपर भी भाग नहीं सकता। लेकिन यह एक और ही विषय है। बहरहाल, मेरे लिये, मेरा अनुभव (जो काफी लंबा है। मैं प्रायः तिरपन वर्षसे लोगोंके साथ, उनके योग और उनके आंतरिक जीवनके साथ व्यवहार रखती आयी हूं। मैंने यहां और वहां बहुत कुछ देखा है और सारी दुनियामें भी थोड़ा-बहुत देखा है), हां, तो मैं नहीं मानती कि ध्यानके द्वारा तुम अपने-आपको रूपांतरित कर सकते हो। मुझे इससे उल्टी बातपर पूरा विश्वास है।

जो तुम्हें करना है, उसे करते हुए, वह चाहे कुछ क्यों न हो, चाहे जो काम हो — अगर तुम उसे करो और करते समय इस बातकी सावधानी रखो कि भगवान्को भूलने न पाओ, तुम जो कुछ करते हो उसे भगवान्के अर्पण कर दो, अपने-आपको भगवान्को इस तरह देनेकी कोशिश करो कि वे तुम्हारी सारी प्रतिक्रियाओंको

बदल दें — स्वार्थी, तुच्छ, मूढ़ और अज्ञानी होनेकी जगह उन्हें आलोकपूर्ण, उदार — बना दें, तो तुम इस दिशामें प्रगति करोगे। यही नहीं कि स्वयं तुम कुछ प्रगति कर लोगे, बल्कि तुम सामान्य प्रगतिमें भी सहायता दोगे। मैंने यह कभी नहीं देखा कि जो लोग सब कुछ छोड़कर रीते चिंतन-मननके लिये बैठ जाते हैं (क्योंकि वह लगभग रीता ही होता है); मैंने ऐसे लोगोंको कभी प्रगति करते नहीं देखा, किसी भी सूरतमें उनकी प्रगति नगण्य-सी होती है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्होंने योग करनेका दावा कभी नहीं किया, जो पार्थिव रूपांतर और धरतीपर भगवान्के अवतरणके विचारसे ही उत्साहमें भरे रहते थे। उन्होंने हृदयमें उत्साह लिये, अपने-आपको पूरी तरह, बिना कुछ बचाये, बिना व्यक्तिगत मुक्तिके स्वार्थपूर्ण विचारके, अपना थोड़ा-सा काम किया। मैंने इन लोगोंको शानदार प्रगति करते हुए देखा है, सचमुच शानदार प्रगति। और कभी-कभी वे अद्भुत होते हैं। मैंने संन्यासी देखे हैं, मठोंमें रहनेवाले देखे हैं, ऐसे लोग देखे हैं जो योगी होनेका दावा करते हैं। मैं उस पहले प्रकारके एकके बदले इस तरहके बारह लेना पसंद न करूंगी (मेरा मतलब है पार्थिव रूपान्तर और जगत्की प्रगतिकी दृष्टिसे, यानी, जो काम हम करना चाहते हैं उसकी दृष्टिसे — यह प्रयास करनेके लिये कि यह जगत् जैसा है वैसा ही न बना रहे, यह सचमुच भागवत चेतनाके साथ भागवत संकल्पका यंत्र बन जाय)। तुम जगत्से भागकर उसे नहीं बदल सकते। यहां काम करते हुए, नम्रता और विनयके साथ काम करते हुए उसे बदला जा सकता है, तुम्हारे हृदयमें आग हो, ऐसी चीज हो जो आहुतिकी तरह जलती हो। तो बस।

तो ध्यानका कोई उपयोग नहीं?

नहीं, और जिस हदतक वह जरूरी होगा, वह सहज रूपसे आ

जायगा। अचानक तुम्हें कोई ऐसी चीज आकर पकड़ लेगी जो तुम्हें निश्चल बना देगी, तुम्हें किसी भावके अंतर्दर्शन या किसी मनोवैज्ञानिक अवस्थापर केंद्रित कर देगी। वह तुम्हें पकड़ लेगी। तुम्हें प्रतिरोध न करना चाहिये। तब तुम आवश्यक प्रगति करोगे। ऐसे अवसरपर तुम कुछ देखते, कुछ समझते हो और अगले क्षण, अपने अंदर उस चीजको प्राप्त करके, बिना किसी दावे या पाखंडके अपना काम शुरू कर देते हो। मुझे सबसे ज्यादा डर उनका लगता है जो अपने-आपको बहुत श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि वे बैठकर ध्यान करते हैं और सब चीजोंमें यही सबसे अधिक भयंकर है क्योंकि ये लोग मिथ्याभिमानसे भर जाते हैं और इतने अधिक आत्म-तुष्ट हो जाते हैं कि वे प्रगतिके सभी रास्तोंको बंद कर लेते हैं...

एक बात है जो हमेशा कही गयी है लेकिन हमेशा गलत समझी गयी है, यह है नम्रताकी आवश्यकता। हम उसे बुरी तरह लेते हैं, बुरी तरह समझते हैं और बुरी तरह उसका उपयोग करते हैं। नम्र बनो, यदि तुम ठीक ढंगसे नम्र बन सकते हो; और इससे बढ़कर, गलत तरीकेसे मत बनो क्योंकि यह तुम्हें कहीं नहीं पहुंचाता। लेकिन एक बात है। अगर तुम अपने अंदरसे इस जंगली घासको — जिसे मिथ्याभिमान कहते हैं — खींचकर बाहर कर सको तो वास्तवमें तुम कुछ प्राप्त करोगे। काश; तुम्हें मालूम होता कि यह कितना कठिन है! तुम (बिना जाने ही) अंदरसे संतुष्ट होकर फूले बिना कोई चीज ठीक तरह नहीं कर सकते, कोई अच्छा विचार नहीं कर सकते, कोई सच्ची गति नहीं कर सकते, थोड़ी-सी प्रगति नहीं कर सकते। और तब तुम जोरसे हथौड़े बरसाकर इसे तोड़नेके लिये बाधित होते हो। फिर भी टूटे टुकड़े बचे रहते हैं। और फिरसे अंकुरित होने लगते हैं। इस खूबड़ीको जड़से निकालनेके लिये तुम्हें जन्म-मर काम करना पड़ता है। यह बार-बार, बार-बार निकल आती है और इतने छिपे रूपमें उगती है कि तुम मान बैठते हो कि अब यह चली

गयी। तुम अपने-आपको बहुत बिनम्र मानकर कहते हो : "यह मैंने नहीं किया। मुझे लगता है कि यह भगवान् ने किया है। भगवान् न हों तो मैं कुछ भी नहीं हूँ," और अगले ही क्षण, ऐसी बात सोचनेके लिये तुम अपने-आपसे बहुत संतुष्ट होते हो !

१३ मई, १९५३ (मातृवाणी खंड ५; प्रश्न और उत्तर १९५३)

सोसायटी सभाचार

तरेसठ वर्ष पूर्व १९१४ में माताजी २९ मार्चको कागामार नामक जहाजमें पहली बार भारत — आश्रम — आयीं। वचनमें माताजी भी हमारी तरह सोती थीं और स्वप्न देखती थीं लेकिन उनके स्वप्न साधारण मनुष्योंके जैसे ही हों तो वे माताजी ही क्या हुईं। स्वयं उन्होंने कहा है कि ग्यारहसे तेरह वर्षकी अवस्थामें उन्हें बहुत-सी आध्यात्मिक अनुभूतियां हुईं। उन्हें भगवान् की उपस्थितिका मान हुआ और यह पता लगा कि मनुष्यके लिये न केवल भगवान् का साक्षात्कार संभव है बल्कि यह भी कि वह भगवान् को यहां, इस धरतीपर अपनी चेतना और अपने कार्यमें प्रकट करे। स्वप्नमें कई आध्यात्मिक महापुरुष मिला करते थे और भविष्यका मार्ग दिखलाते थे। इनमेंसे कुछ लोगोंके साथ बादमें मिलनेका अवसर भी हुआ। उन्हीं दिनों एक आकृति बहुत बार आया करती थी। माताजीको तबतक भारत या भारतीय धर्म और साहित्यका विशेष परिचय न था फिर भी वे उसे 'कृष्ण' कहने लगीं।

२९ मार्चको साढ़े तीन बजे माताजी श्रीअरविंदसे मिलनेके लिये आयीं। और पहली ही दृष्टिमें उन्होंने जान लिया कि ये ही उनके स्वप्नोंके श्रीकृष्ण हैं। अगले दिन उन्होंने लिखा, "कोई चिन्ताकी

वात नहीं यदि हजारों घने अज्ञानमें फंसे हुए हैं। कल हमने जिन्हें देखा वे तो धरतीपर हैं। उनकी उपस्थिति यह सिद्ध करनेके लिये काफी है कि एक दिन आयगा जब अन्धकार ज्योतिमें बदल जायगा, जब धरतीपर तेरा राज्य स्थापित होगा।”

१५ अगस्त, १९५४ में माताजीने कहा था, “१९१४ में जब मैं पहली बार भारत आयी थी तो मुझे लगा कि भारत मेरा सच्चा देश है, मेरी आत्मा और सत्ताका...”

इस वर्ष यह दिन विशेष रूपसे मनाया गया। माताजीके चित्रका एक विशेष कार्ड बांटा गया और रातको क्रीड़ांगणमें सामूहिक ध्यान हुआ।

इसी तरह ४ अप्रैल १९१० को डूप्लेक्स नामक जहाजमें श्रीअरविंद पांडिचेरी आये थे। इस विषेय अवसरके उपलक्ष्यमें उन दिनों लिये चित्रोंमेंसे एक चित्रका कार्ड बांटा गया और रातको क्रीड़ांगणमें सामूहिक ध्यान हुआ।

२४ अप्रैल दर्शन दिनकी तरह ही मनाया जाता है। इसी दिन १९२० में यहां स्थायी रूपसे रहने और श्रीअरविंदके साथ काम करनेके लिये माताजी आयी थीं। लक्ष्य था — अतिमानसिक अभिव्यक्तिकी सिद्धि। १९३७ में इसी दिनके बारेमें कहते हुए माताजीने कहा था, “पांडिचेरी वापस आना — आसुरिक शक्तियोंपर निश्चित विजयका ठोस संकेत है।” आकाशवाणीके आग्रहपर २१-२-६८ को माताजीने यह संदेश दिया था : “संस्मरण बहुत संक्षिप्त होंगे। मैं श्रीअरविंदसे मिलनेके लिये हिन्दुस्तान आयी थी। मैं श्रीअरविंदके साथ रहनेके लिये हिन्दुस्तानमें रही। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया तो मैं उन्हींका काम करनेके लिये यहां बनी रही। उनका काम है सत्यकी सेवा करके मानवजातिमें ज्योति लाकर, धरतीपर भागवत प्रेमके राज्यको जल्दी लाना।”

इस अवसरकी सत्तावनवी वर्षगांठ मनायी गयी। सुबह दर्शनार्थी श्रीअरविंद कक्षके दर्शनके लिये गये। दससे साढ़े दसतक समाधिके चारों ओर सामूहिक ध्यान हुआ और शामको क्रीड़ांगणमें मार्च पास्ट और फिर ध्यान।

बड़ौदामें सोसायटी शाखाने २७ से २९ मार्चतक तीन दिनके शिविरकी व्यवस्था की। अध्यक्ष थे श्री रोहित मेहता। गुजरातमें माताजीकी शताब्दी महोत्सवके रूपमें इसका आयोजन हुआ था। 'माता' पुस्तकसे कुछ अंश पढ़े गये, फिर उन्हींपर आधारित प्रश्नोत्तर हुए। श्री मेहताने तीन सार्वजनिक वार्ताएं दीं : श्रीमां तथा जीवन-दर्शन; श्रीमां तथा योग-साधना; दिव्य मां। इसी अवसरपर स्त्रियोंकी समा भी हुई और लड़कियोंके लिये वाद-विवादकी प्रतियोगिताएं हुईं। इस कार्यक्रममें ध्यान, सांस्कृतिक कार्यक्रम, ओरो-फिल्मका प्रबन्ध था।

पादरा (बड़ौदा) और मुजफ्फरनगरमें श्री छोटे नारायण शर्मा ने श्रीमां और श्रीअरविंद योगसंबंधी वार्ताएं दीं।

चक्रधरपुर (बिहार) में शिशुचक्रने अपनी पहली वर्षगांठ १३-१४ मार्चको मनायी। शारीरिक शिक्षण प्रदर्शन, स्लाइड शो, ध्यान, वार्ताएं आदि हुए।

कलकत्तेकी श्रीअरविंद शारीरिक शिक्षण कमिटीने रवीन्द्र सरोवर स्टेडियममें सलामी, जिम्नास्टिक्स आदिका प्रदर्शन किया। उसमें लगभग ३००० युवक-युवतियोंने भाग लिया। डा० एस० के० मुखर्जी उस कार्यक्रमके सभापति थे।

अहमदाबादमें १५ से २४ जनवरीतक "नैशनल बुक फेअर"में 'शब्द' ने आश्रम प्रकाशनोंकी प्रदर्शनी की। इसी प्रकारकी प्रदर्शनी कलकत्तेमें भी हुई। श्री बालकृष्ण पोद्दार दोनों जगह गये और अखिल

भारतके पुस्तक-वितरकोंसे इस विषयपर बात की कि माताजी तथा श्रीअरविंदकी पुस्तकोंका वितरण कैसे बढ़ाया जा सकता है। हमारे विविध केंद्र तथा शाखाओंके सदस्य भी वहां उपस्थित थे और उनमेंसे कुछने शताब्दी वर्षमें आश्रमकी किताबोंकी प्रदर्शनी करनेकी इच्छा प्रकट की। जिनको इसमें रस है वे निम्नलिखित पतेपर लिखें :

श्री बालकृष्ण पौदार, शब्द, पांडिचेरी-६०५००२

अहमदाबादके श्रीअरविंद आश्रम सेल्स एम्पोरियमसे यह सूचना मिली है कि माताजीकी जन्म शताब्दी वर्षके उपलक्ष्यमें २१-२-७८ तक किताबें १०% बढ़ेपर मिलेंगी। पता है :

प्रीतमराय रोड, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद-३८००६

जन्मशताब्दी वर्षमें बच्चोंके लिये ऐसी किताबें प्रकाशित करनेका विचार है जिनमें सचित्र कहानियां होंगी। हमारे पाठकोंमेंसे जो कलाकार (चित्रकार) हों और समर्पण भावसे इसमें भाग लेना चाहते हों वे निम्नलिखित पतेपर लिखें : श्री गुरुप्रसाद, जनरल सेक्रेटरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२। अगर वे हमें अपनी कलाके नमूने भी भेजें तो हमें बहुत सहायता मिलेगी।

भारत-निवास ओरोवीलके अन्तर्राष्ट्रीय मण्डलमें भारतका सांस्कृतिक मण्डप है। वह एक संग्रहालय नहीं, बल्कि अपनी विभिन्न अभिव्यक्तियोंद्वारा भारतकी आत्माका जीता-जागता और ठोस अनुभव है। वह अन्वेषणका एक ऐसा केंद्र होगा जो केवल अतीतकी महान् उपलब्धियोंपर ही नहीं, बल्कि उन दिशाओंपर भी केंद्रित होगा जिनकी ओर भविष्य बढ़ेगा।

(शेष आवरण ३ पर)

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमा

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

बंबई कार्यालय

१३२, परसेपोलि
प्लॉट क्रं. १००
कक परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीजरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और स्थायी
उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब खालीपन
चला जायगा ।

—श्रीमां



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें :

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

दूरभाष : २५४४७

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी

Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

फिल
में ही है
सदस्यों
है और
जीते-जा
प्रस्तुत
धर्म अ
शिल्प-क
हमा
लेना च
जन
लिफाफे
पांडि
व्यापार
की जाय
योगके
निम्नलि
कोअ
मनेजमें
लिये तु
तपो
समाकी
अद्भुत
का खच
डा० इ

फिलहाल भारत-निवास योजना और निर्माण का प्रारम्भिक अवस्था-
में ही है। भारतमें सभी प्रदेशोंमें ऐसे दल बन रहे हैं जिनके
सदस्योंको भारतीय संस्कृतिके किसी रूपका बहुत गहन ज्ञान प्राप्त
है और जो इस विषयपर सलाह दे सकते हैं कि भारत-निवासमें
जीते-जागते और भावीकी ओर अभिमुख विभिन्न अनुशासनोंको कैसे
प्रस्तुत किया जाय। अनुशासनोंको प्रस्तुत करनेका अभिप्राय है :
धर्म और आध्यात्मिकता, दर्शनशास्त्र, नृत्य, नाटक, संगीत, कला,
शिल्प-कला, हस्तकौशल आदि।

हमारे पाठकोंमेंसे जो इस प्रयासमें किसी भी क्षेत्र या रूपमें भाग
लेना चाहें वे निम्नलिखित पतेपर सविस्तार लिखें :

जनरल सेक्रेटरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

लिफाफेपर “भारत-निवास” लिखें तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

पांडिचेरीमें ९ से २४ मई और ६ से १८ जून तक दो दलोंमें
व्यापार व्यवस्था (विजनेस मैनेजमेंट) के एक पाठ्यक्रमकी व्यवस्था
की जायगी। अध्ययनके साथ-साथ शारीरिक शिक्षा और श्रीअरविंद
योगके बारेमें वाद-विवादोंका भी कार्यक्रम रहेगा। आवेदन पत्र
निम्नलिखित पतेसे मिल सकते हैं :

कोऑर्डिनेटर, सेलवराजू चेट्टियार इंस्टिट्यूट ऑफ विजनेस
मैनेजमेंट, द्वारा श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२। इसके
लिये तुरंत लिखें।

तपोगिरी (उत्तर प्रदेश) में ३ से ७ जूनतक श्रीअरविंद अध्ययन-
सभाकी व्यवस्था की जायगी। विषय होगा, शिष्योंके साथ माताजीके
अद्भुत तरीके। जिनको इसमें रस है उनका स्वागत है। आवास-
का खर्चा होगा प्रतिदिन ५.००। अधिक जानकारीके लिये लिखें :
डा० इन्द्रसेन, तपोगिरि, रामगढ़ तल्ला (उ० प्र०)।

नागपुरमें माताजीका जन्मदिन मनाया गया। मोरको ध्यान हुआ और फिर 'सावित्री' से कुछ अंश पढ़े गये। शामको स्लाइड-शो और ध्यान हुआ। २६ फरवरीको श्री आर० गोपालने श्रीअरविंदके बारेमें निबंध पढ़ा और डा० रमाकांत सिनाराने एक भाषण दिया।

बम्बईमें श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रके अध्यापक अरविंद बासुने 'श्रीअरविंदका सर्वांगीण योग'पर भाषण दिया। कार्यक्रमके अध्यक्ष थे डा० पी० के० घोष।

२१ फरवरीसे तीन सप्ताहतक श्री गोविंद भाई पटेलने गुजरातमें ३५ शिक्षा-केंद्रोंका चक्कर लगाया और श्रीअरविंद तथा माताजीके बारेमें वार्ताएं दीं।

न्यू स्कूलमें लड़कियोंके लिये एक व्यावसायिक शिक्षणका अगला सत्र पहली जुलाईसे आरंभ होगा। विषय हैं : १ — माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षाका अध्ययन; २ — सामान्य ज्ञान; ३ — कला और हस्त-कौशल; ४ — शारीरिक शिक्षा। यह सत्र तीन महीने का होगा, हालांकि आवश्यकताके अनुसार इसे साल-भरका किया जा सकता है। फीस वगैरह कुछ नहीं है लेकिन रहने-खानेकी व्यवस्था स्कूलकी ओरसे होगी और इसके लिये २००.०० प्रति मास लिवा जायेंगे। शिक्षाका माध्यम है अंगरेजी, अतः अंगरेजीका अच्छा ज्ञान होना चाहिये और लड़कियां कम-से-कम मैट्रिक पास होनी चाहिये। अंतिम तारीख है ३१ मई। पत्र-व्यवहार करें:

दि न्यू स्कूल, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२



24-6-21

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

ध्यान अंक (२)

जून १९७७

वर्ष ७, अंक ११, पूर्णांक ८३

सूची

शताब्दी संदेश	१
माताजीके वचन :	
ध्यान और आध्यात्मिक प्रगति	२
सक्रिय ध्यान	३
ध्यान और अभीप्सा	५
ध्यान और एकाग्रता	८
एकाग्रता	११
एकाग्रता अनिवार्य है	१२
एकाग्रताकी आवश्यकता	१३
ध्यान करनेका दिखावा	१५
सम्यक् समाधि	१७
सच्चा एकांत	१९
स्फुट वचन	२१
प्रार्थना	२३
श्रीअरविंदके पत्र	२४
घम्मपद — माताजीकी टीका सहित	२९
मैं निहाल हो गयी	३०
सोसायटी समाचार	३२
पाठकोंसे	आ. ३

वार्षिक चंदा ६.००; आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००१

शताब्दी संदेश

मरनेसे पहले मिथ्यात्व अपने पूरे वेगसे उठ रहा है।

अभीतक लोग केवल संकटके पाठको ही समझते हैं। क्या सत्य-
की ओर उनकी आंखें खुलनेसे पहले संकटको आना पड़ेगा ?

मैं सबसे प्रयासकी मांग करती हूं ताकि ऐसा न हो।

केवल सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है, शब्दोंमें सत्य, क्रियामें
सत्य, संकल्पमें सत्य, भावोंमें सत्य । सत्यकी सेवा और विनष्ट
होनेके बीच चुनाव है।

*

मिथ्यात्वका एक ही हल है। हम अपने अंदरसे उस सबको दूर
करें जो हमारी चेतनामें भगवान्की उपस्थितिका विरोध करता है।

३१-१२-७२

—माताजी

ध्यान और आध्यात्मिक प्रगति

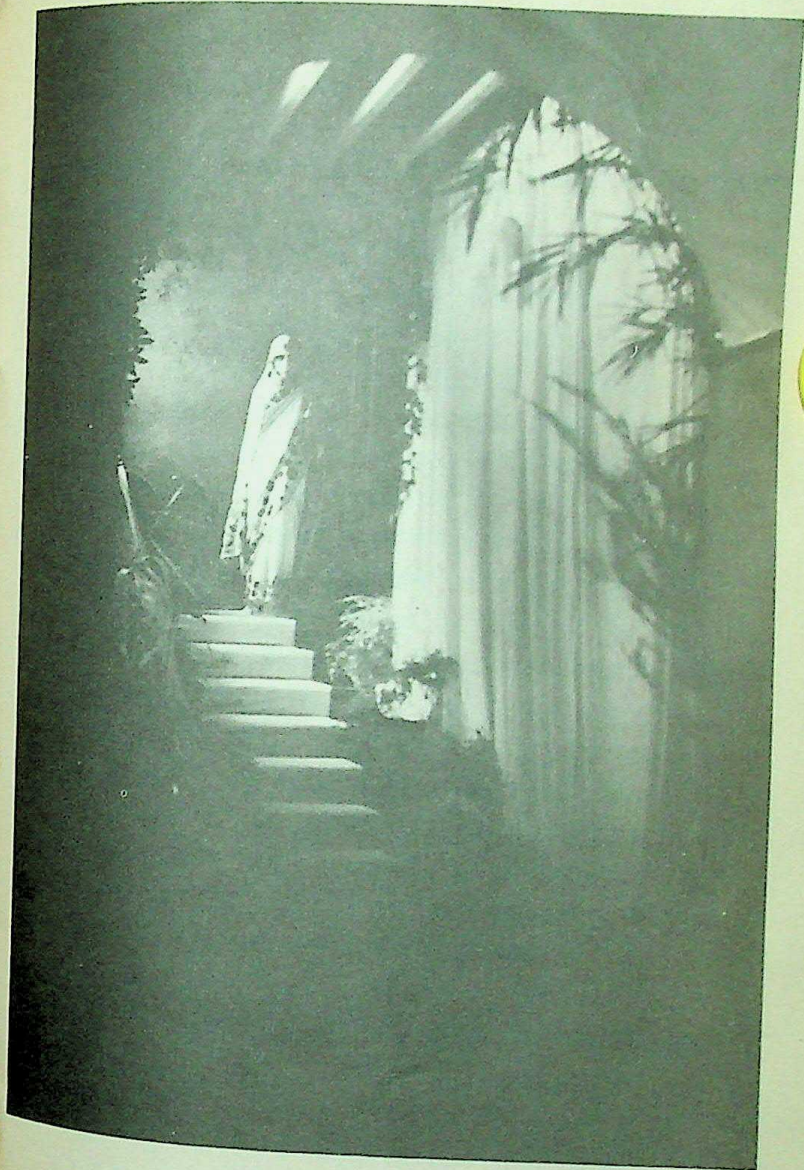
“आध्यात्मिक प्रगतिका यह कोई प्रमाण नहीं है कि तुमने ध्यान-
में कितने घंटे बिताये। वास्तवमें तुम्हारी प्रगतिका प्रमाण यह है
कि अब तुम्हें ध्यान करनेका कोई प्रयास ही नहीं करना पड़ता।”
(प्रश्न और उत्तर १९२९)

इसका मतलब यह है कि अपनी आंतरिक मशीनको निश्चल-
नीरव बनानेके लिये, जिस चीजको तुम चाहते हो उसपर अपने
विचारको केंद्रित करनेमें समर्थ होनेके लिये तनावपूर्ण प्रबल प्रयास
करनेके स्थानपर तुम इसे एकदम सामान्य ढंगसे, स्वाभाविक भावसे,
बिना किसी प्रयत्नके सहज ढंगसे करते हो और जिस किसी कारणसे
तुम ध्यान करनेका निश्चय करते हो तब उसमें जो कुछ तुम देखना
या जानना या पहचानना चाहते हो वह तो तुम्हारी चेतनामें बना
रहता है, बाकी सब कुछ मानों जादूकी तरह विलीन हो जाता है,
तुम्हारे अंदर सब कुछ स्थिर हो जाता है, तुम्हारी सारी सत्ता नीरव
बन जाती है, तुम्हारी स्नायुएं पूर्णतः शांत हो जाती हैं, तुम्हारी
चेतना पूरी तरह एकाग्र हो जाती है — स्वाभाविक रूपसे, स्वयं
अपने-आप और तुम तीव्र आनंदके साथ एक और भी अधिक प्रगाढ़
ध्यानवस्थामें प्रवेश कर जाते हो।

यह इस बातका चिह्न है कि तुम सफल हुए हो, अन्यथा वह
ध्यान नहीं है।

१७ फरवरी, १९५१

(मातृवाणी, खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० १२१-२२)



प्य
श्रीअर

यह
शक्ति
यह
अपेक्षा
को पा
ध्यान

साध
में (अ
वे एक
दुल्लता
प्रवेश
चैतनामे
अधिक
इस प्र
विश्वमें
कारण
एकदम

इसे
जाता है

मैं स

सक्रिय ध्यान

प्यारी माताजी, “अपने-आपको क्रियाशील बनानेवाले ध्यान” से श्रीअरविंदका क्या मतलब है ?

यह एक ऐसा ध्यान है जिसमें तुम्हारी सत्ताको रूपांतरित करनेकी शक्ति होती है। यह एक ऐसा ध्यान है जो तुम्हें आगे बढ़ाता है, यह उस निश्चल-निष्क्रिय ध्यानके विपरीत है जो गतिहीन और अपेक्षाकृत जड़ होता है और जो न तो तुम्हारी चेतनामें किसी चीज-को परिवर्तित करता है, और न तुम्हारी जीवन-पद्धतिमें। सक्रिय ध्यान रूपांतर सिद्ध करनेका ध्यान होता है।

साधारणतया, लोग ध्यानका अभ्यास नहीं करते। जब वे ध्यान-में (अथवा कम-से-कम जिसे वे “ध्यान” कहते हैं) प्रवेश करते हैं, वे एक प्रकारकी निश्चलतामें घुस जाते हैं जहां कुछ भी हिलता-डुलता नहीं — और वे उसमेंसे ठीक वैसे ही बाहर निकलते हैं जैसे प्रवेश करते समय होते हैं; और न तो उनकी सत्तामें, और न उनकी चेतनामें ही कोई परिवर्तन होता है। और वह ध्यान जितना ही अधिक गतिहीन होता है वे उतना ही अधिक प्रसन्न होते हैं। वे इस प्रकार शाश्वत कालतक ध्यान कर सकते हैं, पर इससे न तो विश्वमें और न उनके अंदर कभी कोई परिवर्तन आयेगा। यही कारण है कि श्रीअरविंद सक्रिय ध्यानकी बात कर रहे हैं जो इसके एकदम विपरीत है। यह रूपांतर लानेवाला ध्यान है।

इसे कैसे किया जाता है ? क्या इसे किसी भिन्न तरीकेसे किया जाता है ?

मैं समझती हूं कि अभीप्सा भिन्न प्रकारकी होनी चाहिये, मनो-

भाव भिन्न प्रकारका होना चाहिये । “भिन्न तरीका”, “तरीका” से तुम्हारा क्या मतलब है ? — (हंसी) बैठनेका तरीका ?... वह नहीं ? आंतरिक मनोभाव ?

हां ।

परंतु हर एकके लिये यह भिन्न होता है ।

मैं समझती हूं कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है यह जानना कि हम क्यों ध्यान करते हैं । बस, यही चीज है जो ध्यानको उसकी विशेषता प्रदान करती है, जो उसे इस या उस प्रकारका बनाती है ।

तुम दिव्य शक्तिकी ओर उद्घाटित होनेके लिये ध्यान कर सकते हो, तुम साधारण चेतनाका त्याग करनेके लिये ध्यान कर सकते हो, तुम अपनी सत्ताकी गहराइयोंमें पैठनेके लिये ध्यान कर सकते हो, तुम यह जाननेके लिये ध्यान कर सकते हो कि तुम अपने-आपको सर्वांगीपूर्ण रूपसे कैसे दे सकते हो; तुम सभी प्रकारकी चीजोंके लिये ध्यान कर सकते हो । तुम शांति और स्थिरता और निश्चल-नीरवतामें प्रवेश करनेके लिये ध्यान कर सकते हो (लोग साधारणतया यही करते हैं, पर अधिक सफलता पाये बिना) । परंतु तुम रूपांतर साधित करनेकी ‘शक्ति’ पानेके लिये, जिन सब स्थलोंको रूपांतरित करनेकी आवश्यकता है उनका पता लगानेके लिये, प्रगतिकी धाराका पता लगानेके लिये भी ध्यान कर सकते हो । और फिर, तुम बहुत व्यावहारिक कारणोंसे भी ध्यान कर सकते हो : जब कोई कठिनाई दूर करनी हो, कोई समाधान पाना हो, जब तुम किसी-न-किसी कार्यमें सहायता चाहते हो, तुम उस सबके लिये भी ध्यान कर सकते हो ।

मैं समझती हूं प्रत्येक व्यक्तिकी ध्यान करनेकी अपनी निजी पद्धति होती है । परंतु कोई यदि अपने ध्यानको सक्रिय बनाना चाहता हो तो उसमें प्रगति करनेकी अभीप्सा अवश्य होनी चाहिये

जून १९७७

५

और प्रगतिकी इस अभीप्सामें सहायता करने तथा उसे चरितार्थ करनेके लिये उसे ध्यान करना चाहिये। तब वह सक्रिय बन जाता है।

७ मार्च, १९५६

(मातृवाणी, खंड ८; प्रश्न और उत्तर १९५६; पृ० ९४-९५)

ध्यान और अभीप्सा

जिस समय कोई चुपचाप ध्यानावस्थामें होता है तब उसके अंदर कौन-सी शक्तियां काम करती हैं ?

यह बात ध्यान करनेवालेपर निर्भर है।

परंतु क्या निश्चल-नीरव ध्यानकी अवस्थामें साधक अपने-आपको पूर्ण रूपसे खाली नहीं कर देता ? तब फिर कोई बात उसपर कैसे निर्भर कर सकती है ?

यदि तुम अपने-आपको संपूर्ण रूपसे शून्य कर डालो तो भी इससे तुम्हारी अभीप्सामें कोई परिवर्तन नहीं होता, इसका कार्यक्षेत्र नहीं बदलता। किसीकी अभीप्सा मानसिक भूमिकाओंपर अथवा प्राणके क्षेत्रोंमें कार्य करती है; किसीकी अभीप्सा आध्यात्मिक होती है। यह तुम्हारी अभीप्साके गुणपर निर्भर है कि कैसी शक्ति उसका उत्तर देगी और वह क्या काम करेगी ? ध्यानके समय अपने-आपको शून्य कर लेनेसे तुममें एक आंतरिक निश्चल-नीरवता पैदा हो

जाती है; किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि तुम शून्य बन गये हो या तुम कोई निर्जीव या जड़ वस्तु बन गये हो। अपने-आपको खाली पात्र बनाकर तुम उस वस्तुका आवाहन करते हो जो उसे भर देगी, अर्थात्, तुम अपनी आंतरिक चेतनाके दबावको सिद्धिकी ओर खोल देते हो। यह तुम्हारी चेतनाके स्वभाव और उसके दबावपर निर्भर है कि तुम किन शक्तियोंको कार्य-क्षेत्रमें उतार सको और वे शक्तियां तुम्हारे कार्यमें सहायता पहुंचायें और उसे सफल करें या विफल करें अथवा हानि पहुंचायें या बाधा दें।

तुम विभिन्न अवस्थाओंके ध्यान कर सकते हो और उन सभीका बंद या नीचेकी ओर उतारी गयी शक्तियोंपर तथा उनके कार्यपर प्रभाव पड़ता है। यदि तुम अकेले ध्यानमें बैठो तो तुम्हारी आंतर और बाह्य अवस्था ही मुख्य होगी। और यदि तुम दूसरोंके साथ बैठो तो फिर सामान्य अवस्थाका महत्त्व अधिक होगा। परंतु इन दोनों दशाओंमें अवस्थाएं सदा बदलती रहेंगी और जो शक्तियां उनका उत्तर देंगी वे भी एक-सी न होंगी। उचित रूपमें की गयी सम्मिलित एकाग्रता एक महान् शक्ति हो सकती है। एक प्राचीन कहावत है : "यदि एक दर्जन सच्चे मनुष्य अपने संकल्प और अभीप्साको एक करके भगवान्को पुकारें तो भगवान् प्रकट हुए बिना न रह सकेंगे।" परंतु उनका संकल्प एकनिष्ठ होना चाहिये, उनकी अभीप्सा सच्ची होनी चाहिये। हो सकता है कि इस प्रकारका प्रयास करनेवाले किसी प्रकारकी जड़ताके वश अथवा किसी भ्रांत या विकृत इच्छाके कारण एक हो गये हों और ऐसी अवस्थामें परिणाम विनाशकारी हो सकते हैं।

ध्यानके समय पहली और अनिवार्य आवश्यकता है तुम्हारी समस्त चेतनाका पूर्ण और नितांत सचाईकी अवस्थामें होना। यह अपरिहार्य है कि तुम अपने-आपको धोखा न दो और दूसरेको न तो धोखा दो और न दूसरेके धोखेमें आओ। बहुधा लोगोंकी कोई कामना होती है, कोई मनकी पसंद या प्राणकी वासना होती है, वे

जून १९७७

७

चाहते हैं कि उनके ध्यानमें होनेवाली अनुभूति किसी विशिष्ट रूपमें हो अथवा वह कुछ ऐसा मार्ग ले जिससे उनकी भावनाओं, इच्छाओं और पसंदोंको संतोष मिले; वे अपने-आपको खाली और निष्पक्ष रखकर जो कुछ होता है उसे सरलता और सचाईके साथ साक्षी रूपमें नहीं देखते। यदि ऐसी अवस्थामें होनेवाली चीज तुम्हें पसंद न हो तो अपने-आपको धोखा देना सहज होगा। तुम एक चीज देखोगे, किंतु उसे थोड़ा-सा तोड़-मरोड़कर कोई और ही चीज बना डालोगे, अथवा किसी सहज और स्पष्ट वस्तुको विकृत कर डालोगे या उसे बढ़ाकर असाधारण अनुभूति बना दोगे। जब तुम ध्यान करने बैठो तो तुम्हें एक बालककी भांति सरल और निष्कपट रहना चाहिये, अपने बाहरी मनको किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करने दो, कोई आशा या किसी तरहका हठ न करो। यदि यह अवस्था हो तो बाकी सब तुम्हारे अंदरकी अभीप्सापर निर्भर होगा। यदि तुम अंदरसे शांति मांगोगे तो वह मिलेगी; यदि बल मांगोगे, शक्ति मांगोगे, ज्ञान मांगोगे तो वे भी मिलेंगे — किंतु सब-के-सब तुम्हारी ग्रहण करनेकी शक्तिके परिमाणमें मिलेंगे। और यदि तुम भगवान्-का आवाहन करो — यह स्वीकार करते हुए कि भगवान् तुम्हारे आवाहनको सुननेके लिये सदा तैयार हैं और इसका यह अर्थ हुआ कि यदि तुम्हारा आवाहन उन्नतक पहुंचनेके लिये पर्याप्त रूपसे शुद्ध और बलवान् हो — तो तुम्हें उसका उत्तर अवश्य मिलेगा।

२३ जून, १९२९ (श्रीमातृवाणी खंड ३, प्रश्न और उत्तर १९२९)

ध्यान और एकाग्रता

ध्यान और एकाग्रतामें क्या अंतर है ?

ध्यान विशुद्धतः मानसिक क्रिया है; इसमें केवल मानसिक सत्ता रस लेती है। मनुष्य ध्यान करते समय एकाग्र हो सकता है पर यह मानसिक एकाग्रता है; वह नीरवता प्राप्त कर सकता है पर यह शुद्ध मानसिक नीरवता है, और सत्ताके अन्य भाग अचल-अटल और निष्क्रिय रखे जाते हैं ताकि वे ध्यानमें बाधा न डालें। तुम दिनके बीस घंटे ध्यानमें बिता सकते हो, फिर भी बाकी चार घंटे एकदम साधारण मनुष्य ही बने रहोगे, क्योंकि ध्यानके समय केवल मन ही संलग्न रहा है — सत्ताके बाकी अंगोंको, प्राण और शरीरको दबाकर रखा गया था ताकि वे बाधा न डालें। ध्यानमें सत्ताके अन्य भागोंके लिये सीधे तौरपर कुछ भी नहीं किया जाता।

अवश्य ही इसकी अप्रत्यक्ष क्रियाका कुछ फल हो सकता है पर...। मैंने अपने जीवनमें ऐसे लोगोंको देखा है जिनमें ध्यान करनेकी अद्भुत क्षमता थी, परंतु ध्यानसे बाहर आनेपर, वे अत्यंत साधारण व्यक्ति बन जाते थे, यहांतक कि कभी-कभी बुरे व्यक्ति बन जाते थे; अगर उनके ध्यानमें बाधा पड़ती तो वे आग-बबूला हो उठते थे। क्योंकि उन्होंने केवल अपने मनको ही अपने वशमें रखना सीखा था, सत्ताके बाकी अंगोंको नहीं।

परंतु एकाग्रता उससे अधिक सक्रिय स्थिति है। तुम मनमें एकाग्र हो सकते हो, प्राणमें, चैत्य पुरुषमें, शरीरमें एकाग्र हो सकते हो; यहांतक कि सर्वांगीण रूपसे सत्ताके समस्त भागोंमें एकाग्र हो सकते हो। एकाग्र होना अथवा एक बिंदुपर अपने-आपको एकत्र कर लेनेमें समर्थ होना ध्यान करनेसे कहीं अधिक कठिन है। तुम

अपनी सत्ता या चेतनाके एक भागको एकाग्र कर सकते हो अथवा अपनी संपूर्ण चेतनाको या उसके विभिन्न अंशोंको एकत्र कर सकते हो, अर्थात्, तुम्हारी एकाग्रता आंशिक, पूर्ण या सर्वांगीण हो सकती है, और प्रत्येक अवस्थामें परिणाम अलग-अलग होगा।

अगर तुममें एकाग्र होनेकी शक्ति है तो तुम्हारा ध्यान अधिक मजेदार और करनेमें आसान होगा। परंतु मनुष्य एकाग्रताके बिना भी ध्यान कर सकता है। बहुत-से लोग अपने ध्यानमें विचारोंकी एक शृंखलाका अनुसरण करते हैं — इसे ध्यान कहते हैं, एकाग्रता नहीं।

जिस क्षण हम पूर्ण एकाग्रताकी स्थितिमें पहुंच जाते हैं और फिर जिस क्षण इस एकाग्रतासे आरंभ करके विश्वव्यापी शक्तिकी ओर खुलते हैं, उन दोनों क्षणोंको क्या हम स्पष्ट जान सकते हैं ?

हां, तुम किसी चीजपर एकाग्र होते हो या जहांतक तुम्हारे लिये संभव हो अपने-आपको एकत्र करते हो। जब तुम अपनी एकाग्रतामें एक प्रकारकी पूर्णता प्राप्त कर लो और यदि इस पूर्णताको पर्याप्त दीर्घकालतक बनाये रख सको तो एक दरवाजा खुल जाता है और तुम अपनी सामान्य चेतनाकी सीमाके परे चले जाते हो — तुम एक गभीरतर या उच्चतर ज्ञानमें प्रवेश कर जाते हो अथवा अपने अंदर पैठ जाते हो। तब तुम एक प्रकारकी चकाचौंध करने-वाली ज्योतिका, एक आंतरिक चमत्कारका, एक प्रकारके आनंद, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण निश्चल-नीरवताका अनुभव करते हो। निःसंदेह, अनेक संभावनाएं हैं पर घटनाक्रम बराबर एक जैसा ही होता है।

इस अनुभवको प्राप्त करना पूरी तरह इस बातपर निर्भर है कि अपनी एकाग्रताको उसकी पूर्णताके सर्वोच्च शिखरपर पर्याप्त लंबे कालतक बनाये रखनेकी तुममें कितनी क्षमता है।

क्या इस अनुभवको पानेके लिये हर बार एकाग्र होना आवश्यक है ?

आरंभमें, हां, क्योंकि जो कुछ तुमने प्राप्त किया है उसे बनाये रखनेकी, अपनी एकाग्रताको अधिक-से-अधिक मात्रामें बनाये रखनेकी सामर्थ्य तुममें नहीं है — तुम नीचे सरक आते हो और जो अनुभूति तुम्हें हुई है उसकी स्मृति भी खो देते हो। परंतु तुम जब एक बार एक पथपर चल चुकते हो तो उसी पथपर दूसरी बार और बार-बार चलना अधिक आसान होता जाता है। अतएव, दूसरी एकाग्रता पहलीसे अधिक आसान होती है। तुम्हें एकाग्रताका अभ्यास तबतक करते रहना चाहिये जबतक कि तुम एक ऐसी स्थितिमें न पहुंच जाओ जहां फिर अपना आंतरिक संपर्क कभी न खोओ।

उस समयसे तुम्हें इसी आंतरिक और उच्चतर चेतनामें बराबर बने रहना चाहिये जहांसे तुम सब कार्य कर सकते हो। उस समय तुम अपने शरीरको और जड़ जगत्को देखते हो और यह जानते हो कि तुम्हें क्या करना चाहिये और उसे कैसे करना चाहिये।

यह एकाग्रताका प्रथम उद्देश्य है, पर स्वभावतः ही अंतिम लक्ष्य नहीं है।

इस एकाग्रताको प्राप्त करनेके लिये बहुत अधिक प्रयासकी आवश्यकता है; तुरत-फुरत, यहांतक कि शीघ्रतासे इसका फल पाना बहुत कम संभव होता है। परंतु एक बार यदि भीतरी दरवाजा खुल जाता है तो तुम इस संबंधमें निस्संदिग्ध हो सकते हो कि तुम यदि निरंतर प्रयास करते रहना जानो तो वह फिर अवश्य खुलेगा।

जबतक दरवाजा नहीं खुल जाता तबतक तुम अपनी क्षमतापर संदेह कर सकते हो, पर जब एक बार वह खुल गया तो फिर संदेह करना संभव नहीं, बशर्ते कि तुम अपनी अभीप्सा और संकल्पको निरंतर बनाये रखो।

इस अनुभवका बहुत बड़ा मूल्य है।

२५ दिसंबर, १९५०

(श्रीमातृवाणी, खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० ८-१०)

एकाग्रता

एकाग्रता क्या चीज है ?

इसका अर्थ है अपनी चेतनाके बिखरे हुए सभी धागोंको एक ही बिंदुपर, एक ही भाव या विचारपर वापस ले आना। जो लोग पूर्ण मनोयोगकी स्थिति प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं वे जो कार्य हाथमें लेते हैं उसीमें सफल होते हैं; वे हमेशा तेज प्रगति करते हैं। और इस प्रकारकी एकाग्रता ठीक मांसपेशीकी भांति विकसित की जा सकती है; इसके लिये मनुष्य प्रशिक्षणके विभिन्न पथों, विभिन्न पद्धतियोंका अनुसरण कर सकता है। उदाहरणके लिये, तुम जानते हो कि अत्यंत दयनीय, दुर्बल व्यक्ति भी नियमित अभ्यासके द्वारा किसी भी अन्य व्यक्तिके समान बलशाली हो सकता है। मनुष्यका संकल्प ऐसा नहीं होना चाहिये जो मोमबत्तीकी तरह झिलमिलाकर बुझ जाय।

संकल्प-शक्तिको, एकाग्रताकी शक्तिको अवश्य बढ़ाना चाहिये, वस, प्रश्न है पद्धतिका, नियमित अभ्यासका। यदि तुम चाहो तो कर सकते हो।

परंतु संकल्पको कमजोर बनानेके लिये यह विचार नहीं उठना चाहिये : “भला इससे क्या लाभ ?” यह भावना कि मनुष्य एक विशिष्ट स्वभाव लेकर पैदा होता है और उस विषयमें कुछ भी नहीं कर सकता, एक मूर्खतापूर्ण बात है।

२३ दिसंबर, १९५०

(श्रीमानृवाणी, खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० ५-६)

एकाग्रता अनिवार्य है

इसके अतिरिक्त, जीवनमें तुम कुछ भी करना चाहो, एक चीज नितांत अपरिहार्य है और सबके मूलमें है, वह है ध्यान एकाग्र करने की क्षमता। यदि तुम एक बिंदुपर ध्यान और चेतनाकी किरणोंको केंद्रित करनेमें सफल हो जाते हो और इस एकाग्रताको दृढ़ संकल्पद्वारा बनाये रख सकते हो तो ऐसी कोई चीज नहीं जो इसका प्रतिरोध कर सके — चाहे कुछ भी क्यों न हो, नितांत जड़ भौतिक विकाससे लेकर उच्चतम आध्यात्मिक विकासतक, पर इस अनुशासनका पालन करना चाहिये निरंतर, या यूँ कहें, निर्विकार रहते हुए; यह नहीं कि हमेशा एक ही चीजपर एकाग्र रहना होगा — मेरा मतलब यह नहीं है, मेरा मतलब है एकाग्रता सीखनेसे।

भौतिक रूपमें, अध्ययन, खेल-कूद, सब तरहके शारीरिक और मानसिक विकासके लिये यह नितांत अपरिहार्य है। और मनुष्यकी कीमत उसके अवधानके गुणके अनुपातमें होती है।

और आध्यात्मिक दृष्टिसे तो इसका और भी अधिक महत्व है। कोई भी आध्यात्मिक बाधा ऐसी नहीं जो एकाग्रताकी मर्मभेदी शक्तिका प्रतिरोध कर सके। उदाहरणके लिये, चैत्य पुरुषका संधान, अंतरस्थित भगवान्के साथ मिलन, उच्चतर प्रदेशोंकी ओर उन्मीलन, सब प्रगाढ़ और आग्रही एकाग्रताकी शक्तिद्वारा उपलब्ध किये जा सकते हैं — लेकिन इसे करना सीखना होगा।

मानवी क्षेत्रमें, और अतिमानवीतकमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसकी कुंजी एकाग्रताकी शक्ति न हो।

इस क्षमताके साथ तुम श्रेष्ठ खिलाड़ी हो सकते हो, श्रेष्ठ विद्यार्थी हो सकते हो, कलाकार, साहित्यिक और वैज्ञानिक बन सकते हो, सबसे बड़े संत बन सकते हो। और प्रत्येक व्यक्तिमें यह

जून १९

प्रारंभिक

इसे बढ़ा

२३ जुलै

यह प्र

पढ़नेके

लवलीन

एकाग्रता

में, यहाँ

अपनी स

कुछ कर

एकाग्रता

कर लो

प्रभुत्व प्र

क्या त

और खच

मनुष्य

अत्यधिक

सचेतन हो

विनिमयक

ग्रहण कर

और इस

घीरे-घीरे,

प्रारंभिक-बिंदुके रूपमें रहता है — यह सबको मिला हुआ है, पर वे इसे बढ़ाते नहीं।

२३ जुलाई, १९५८

(श्रीमातृवाणी, खंड ९; प्रश्न और उत्तर १९५७-५८)

एकाग्रताकी आवश्यकता

यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि समस्याको हल करने, कोई पाठ पढ़नेके लिये बहुत अधिक एकाग्रता और लवलीनताकी — बौद्धिक लवलीनता और एकाग्रताकी — आवश्यकता होती है। परंतु एकाग्रता केवल बौद्धिक वस्तु ही नहीं है, यह सत्ताकी सभी क्रियाओंमें, यहांतक कि शारीरिक क्रियाओंमें भी, पायी जा सकती है। अपनी स्नायुओंपर तुम्हारा ऐसा संयम होना चाहिये कि तुम जो कुछ करते हो उसपर पूर्ण रूपसे एकाग्र हो सको और, अपनी एकाग्रताकी तीव्रताद्वारा ही बाह्य स्पर्शोंके प्रति तुरंत प्रत्युत्तर प्राप्त कर लो। ऐसी एकाग्रता प्राप्त करनेके लिये शक्तियोंके ऊपर सचेतन प्रभुत्व प्राप्त करनेकी आवश्यकता होती है।

क्या तुम उन शक्तियोंके प्रति सचेतन हो जिन्हें तुम ग्रहण करते और खर्च करते हो ?

मनुष्य जब कोई शक्ति खर्च कर देता है, विशेषकर जब वह उसे अत्यधिक नष्ट कर देता है तो वह उसके विषयमें कम या अधिक सचेतन होता है। यहां मुख्य प्रश्न है ग्रहण और व्ययके बीचके सतत विनिमयका ! समझ आनेसे पहले छोटे-छोटे बच्चे बहुत सारी शक्ति ग्रहण करते हैं और उसे खुले दिल, बिना सोचे-विचारे खर्च करते हैं और इस कारण बिना थके लगातार घंटों खेलते रहते हैं। परंतु धीरे-धीरे, जैसे-जैसे विचार विकसित होता है वैसे-वैसे, मनुष्य खर्च

की हुई शक्तिको नापता-तोलता और उसका हिसाब लगाना आरंभ कर देता है — साधारणतया यह निरर्थक है, क्योंकि तुम्हें जबतक शक्ति ग्रहण करनेकी प्रक्रियाका ज्ञान नहीं हो जाता तबतक ग्रहण की हुई शक्तिको अपने अंदर निष्क्रिय रखनेकी जगह मुक्त रूपसे खर्च करते रहना ही अधिक अच्छा है।

सबसे पहले तुम्हें शक्तियोंको ग्रहण करनेके विषयमें, अपनी सत्ता-में उनके प्रवेश करने तथा खर्च हो जानेके विषयमें सचेतन होना चाहिये। दूसरे, तुम्हारे अंदर एक प्रकारकी उच्चतर सहजवृत्ति होनी चाहिये जो तुम्हें यह बता दे कि अत्यंत अनुकूल शक्तियां कहांसे आती हैं; फिर तुम विचारके द्वारा, स्थिरताके द्वारा अथवा किसी दूसरी प्रक्रियाके द्वारा — बहुत-सी प्रक्रियाएं हैं — उन शक्तियोंके साथ अपना संपर्क स्थापित करो। तुम्हें इस बातका ज्ञान होना चाहिये कि तुम किस शक्तिको चाहते हो, वह कहांसे आती है और उसमें क्या है। उसके बाद ही ग्रहण की हुई शक्तिपर संयम प्राप्त होता है। नव्वे प्रतिशत लोग पर्याप्त शक्ति ग्रहण नहीं करते या बहुत अधिक ग्रहण करते हैं और जो कुछ ग्रहण करते हैं उसे हजम नहीं करते — ज्यों ही वे काफी मात्रामें ले चुकते हैं त्यों ही तुरत-फुरत अशांत-चंचल बनकर, बातचीत करके, शोरगुल मचाकर या अन्य उपायोंसे उसे बाहर फेंक देते हैं। तुम्हें यह जानना चाहिये कि ग्रहण की हुई शक्तिको किस प्रकार अपने अंदर बनाये रखा जाता है और किसी दूसरी चीजपर नहीं, केवल अभीप्सित क्रियापर उसे पूर्णतः एकाग्र किया जाता है। यदि तुम यह कर सको तो तुम्हें अपनी इच्छाका उपयोग करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। तुम्हें बस आवश्यकता होगी गृहीत शक्तियोंको एक साथ एकत्र करने तथा उन्हें सचेतन रूपमें व्यवहृत करनेकी, जो कुछ तुम चाहते हो उसे संपन्न करनेके लिये अधिक-से-अधिक तल्लीनताके साथ एकाग्र होनेकी। फिर तुम जो करना चाहते हो — तुम्हारी सत्ताका उच्चतर भाग जो करना चाहता है — उसका सच्चा मूल्य आंकना आना चाहिये,

जून १९७७

१५

क्योंकि मनुष्य जो कुछ करना चाहता है उसे करना कठिन नहीं है।

२३ दिसंबर, १९५०

(श्रीमातृवाणी, खंड ४, प्रश्न और उत्तर १९५०-५१; पृ० ४-५)

ध्यान करनेका दिखावा

मैं बड़े उत्साह और तीव्रताके साथ ध्यान और प्रार्थना करना आरंभ करता हूं, मेरी अभीप्सा गहरी होती है और मेरी प्रार्थना भक्तिसे भरी होती है; और फिर, कुछ समयके बाद (कभी तो शीघ्र ही और कभी देरसे), अभीप्सा यंत्रवत् और प्रार्थना शुद्ध शाब्दिक बन जाती है। मुझे क्या करना चाहिये ?

यह कोई व्यक्तिगत स्थिति नहीं है, बिल्कुल सार्वजनीन है। मैं पहले ही यह बात कई बार कह चुकी हूं (पर फिर भी, चलते-चलाते ही कही थी) कि जो लोग रोज घंटों ध्यान करनेका दिखावा करते हैं और सारा दिन प्रार्थनामें बिताते हैं, मुझे ऐसा लगता है कि तीन-चौथाई समयतक वह पूर्णतः यंत्रवत् ही चलता है; कहनेका मतलब, उसमें तनिक भी सचाई नहीं रह जाती। कारण, मानव प्रकृति ऐसी चीजके लिये नहीं बनी है और मानव मन उस ढंगसे नहीं निर्मित हुआ है।

एकाग्र होने और ध्यान करनेके लिये मनुष्यको एक प्रकारकी कसरत करनी चाहिये जिसे मैं एकाग्रताका “मानसिक मांसपेशी-निर्माण” कह सकती हूं। निश्चय ही मनुष्यको प्रयास करना होगा — जैसे कि मनुष्य, उदाहरणार्थ, वजन उठानेके लिये अपनी मांसपेशियों-से प्रयास करता है — यदि तुम चाहो कि तुम्हारी एकाग्रता सच्ची हो, नकली न हो।

वही बात प्रार्थनाके आवेगकी है : एकाएक एक ली जल उठती है, तुम एक उत्साहपूर्ण आवेग, एक महान् तीव्रता महसूस करते हो और उसे शब्दोंमें व्यक्त करते हो जो, सच पूछो तो, सहज स्फूर्त होना चाहिये। इसे सीधे हृदयसे, तीव्रताके साथ, मस्तिष्कमेंसे गुजरे बिना आना चाहिये। वही है प्रार्थना। यदि वे तुम्हारे मस्तिष्कमें धक्कम-धक्का करनेवाले केवल शब्द हों तो फिर वह कोई प्रार्थना बिल्कुल नहीं रह जाती। हां, यदि तुम आगमें अधिक ईंधन न डालो तो कुछ समय बाद वह बुझ जाती है। यदि तुम अपनी मांसपेशियोंको विश्राम करनेका समय न दो, यदि तुम अपनी गति-विधियोंको कम न करो, तो तुम्हारी मांसपेशियां श्रम करनेकी क्षमता खो देंगी। अतएव, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, और यहांतक कि अनिवार्य है, कि कुछ खास समयके बाद क्रियाकी तीव्रता नष्ट हो जाती है। स्वभावतः, जो वजन उठानेका आदी है वह उसकी अपेक्षा जिसने कभी भार नहीं उठाया अधिक देरतक उठाये रह सकता है। वस, वही बात है; जिसे एकाग्र होनेका अभ्यास है वह उस व्यक्ति-की अपेक्षा बहुत अधिक देरतक एकाग्र हो सकता है जिसे उसका अभ्यास नहीं है। परंतु प्रत्येक व्यक्तिके लिये एक क्षण आता है जब उसे बंद कर देना पड़ता है, विश्राम करना पड़ता है ताकि फिर दुबारा आरंभ किया जाय। परिणामतः, चाहे तुरत हो या कुछ क्षण बाद हो या कई घंटों बाद हो, यदि क्रिया यंत्रवत् बन जाती है तो इसका मतलब है कि तुमने ढील दे दी है और अब तुम्हें यह बहाना करनेकी आवश्यकता नहीं कि तुम ध्यान कर रहे हो। उससे अधिक अच्छा यह है कि तब कोई उपयोगी कार्य किया जाय।

उदाहरणार्थ, यदि तुम मानसिक तनावको संतुलित करनेके लिये थोड़ी-सी कसरत करनेका इंतजाम कर सको तो तुम कुछ पढ़ सकते या जो कुछ तुम्हारे साथ हुआ था उसे लिखनेकी कोशिश कर सकते हो, तुम कुछ चीजें शब्दोंमें व्यक्त कर सकते हो। तो वह चीज एक प्रकारकी विश्रान्ति, आवश्यक विश्रान्ति उत्पन्न करती है।

जून १९७७

१७

परंतु ध्यानका लंबा समय केवल सापेक्षिक महत्त्व रखता है; उसकी लंबाई महज यह सूचित करती है कि तुम्हें उस क्रियाका कितना अधिक अभ्यास है।

निस्संदेह, ध्यानका काल बहुत अधिक बढ़ सकता है, पर सर्वदा ही उसकी एक सीमा होती है; और जब वह सीमा आ जाती है तो मनुष्यको बंद कर देना चाहिये, वस यही बात है। यह कोई कपट नहीं है, यह अक्षमता है। कपट तो वह है जब तुम ध्यान न करते हुए भी ध्यान करनेका दिखावा करते हो, अथवा उन बहुतेरे लोगोंकी तरह प्रार्थना करते हो जो मंदिर या चर्चमें जाकर धार्मिक विधियोंका पालन करते और अपनी प्रार्थनाएं उसी प्रकार दुहराते हैं जैसे कोई कम या अधिक कंठस्थ पाठको दुहराता है। तब वह न तो कोई प्रार्थना होती है और न ध्यान, वह महज एक प्रकारका प्रदर्शन होता है। वह बात मजेदार नहीं है।

१८ जुलाई, १९५६

(श्रीमातृवाणी, खंड ८; प्रश्न और उत्तर १९५६, पृ० २३८-४०)

सम्यक् समाधि

विचार वस्तुओंके मूल तत्त्वपर, गभीर सत्य प्राप्त करनेके योग्य लक्ष्यपर बिना अहंके केंद्रित हो।

अस्तित्वके प्रवाहमें कितनी ही बार एक तरहका खालीपन आता है, एक व्यस्तताहीन क्षण, कुछ मिनट, कभी-कभी ज्यादा ही। तब तुम क्या करते हो? उस क्षण तुम दिल-बहलावकी चेष्टा करते हो और अपना समय काटनेके लिये कोई-न-कोई मूर्खता खोज निकालते

हो। यह एक सामान्य तथ्य है। मनुष्य, छोटे-से लेकर बड़े तक, अपने समयका अधिकांश अपने-आपको ऊबसे बचानेमें बिताता है। उसके लिये ऊब ही सबसे बड़ा हीआ है और ऊबसे बचनेका उपाय है बहुत सारी मूर्खता करना।

खैर, एक और उपाय है जो उससे कहीं अधिक अच्छा है : वह है स्मरण करना।

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो, चाहे वह एक घंटा हो या कुछ मिनट, अपने-आपसे कहो : “हाश ! अपने-आपको केंद्रित करनेका, अपने-आपको इकट्ठा करनेका, अपने जीवनके मूल कारणको फिरसे जीनेका और जो ‘सत्य’ और ‘सनातन’ है उसे अपने-आपको अर्पित करनेका मेरे पास समय है।” हर बार जब तुम बाहरी परिस्थितियों-से परेशान न हो तब अगर तुम यह करनेकी सावधानी बरतो तो देखोगे कि तुम राहपर बहुत जल्दी बढ़ते जा रहे हो। अपना समय बकवासमें, अनावश्यक चीजें करनेमें और ऐसी चीजें पढ़नेमें गंवानेकी जगह जो चेतनाको गिराती हैं (यह तो अच्छी-से-अच्छी दशाओंके चुनावकी बात है, मैं दूसरी मूर्खताओंकी बात नहीं करती जो बहुत ज्यादा गंभीर होती हैं), अपना मनोरंजन करनेकी जगह, ऐसा करनेकी जगह कि समय जो पहलेसे ही कम है और भी कम हो जाय और फिर देखना कि जीवनके अंतमें हमने तीन-चौथाई अवसर खो दिये हैं — तब फिर तुम दोनों हाथोंसे कौर निगलने लगते हो, लेकिन उससे कोई फायदा नहीं होता — ज्यादा अच्छा है संयत होना, संतुलित होना, धैर्यवान् रहना, शांत होना और कमी दिये गये अवसरको न गंवाना। इसका मतलब है खाली समयका सच्चे ध्येयके लिये, तुम्हारे सामने जो मिनट व्यस्तताहीन होता है उसका उपयोग करना।

जब तुम्हारे पास करनेके लिये कुछ न हो तो तुम क्षुब्ध हो उठते हो, तुम भागते फिरते हो, मित्रोंसे मिलने चले जाते हो, घूमने निकल पड़ते हो — मात्र अच्छी चीजोंकी ही बात करती हूं, मैं उन चीजोंकी

जून १९७७

१९

बात नहीं करना चाहती जो स्पष्ट रूपसे ऐसी हैं जिन्हें नहीं करना चाहिये — इन सबकी जगह शांतिपूर्वक, तुम्हारे लिये जो संभव हो उसके अनुसार, आकाशके नीचे, समुद्रके आगे या पेड़ों तले बैठ जाओ (यहां तो सब कुछ है), और इनमेंसे किसी एक चीजको सिद्ध करनेकी कोशिश करो, यह समझनेकी कोशिश करो कि तुम क्यों जीवित हो और यह सीखनेकी कोशिश करो कि किस तरह जीना चाहिये, इसपर विचार करो कि तुम क्या करना चाहते हो और क्या करना चाहिये, 'अज्ञान', 'मिथ्यात्व' और दुःख जिसमें तुम जीवित हो उससे बच निकलनेका उत्तम उपाय क्या है।

१६-५-५८

(श्रीमातृवाणी, खंड ३; धम्मपद, अध्याय १४)

सच्चा एकांत

यह निश्चित बात है कि अकेले खाना, अकेले सोना, अकेले चलना और जंगलमें अकेले रहना ही आत्माको मुक्ति देनेके लिये पर्याप्त नहीं है।

हमने यह सत्य स्थापित किया है कि जो लोग जंगलमें जाकर अकेले रहते हैं उनमेंसे अधिकतर उन सब प्राणियों और उन सब पौधोंके मित्र बन जाते हैं जो उनके आस-पास होते हैं; और यह यथार्थमें वह एकाकीपन नहीं है जो तुम्हें आंतरिक ध्यानमें प्रवेश करनेकी और परम सत्यके साथ तादात्म्यमें जीनेकी शक्ति देता है। शायद यह अधिक आसान होता हो जब परिस्थितियोंके दबावके कारण तुम्हारे पास करनेके लिये कुछ भी न हो, लेकिन मुझे यकीन नहीं है। व्यक्ति हमेशा कुछ-न-कुछ काम खोज निकालेगा। जीवनके

अपने अनुभवके अनुसार मुझे लगता है कि भागवत करणाने हमें जो परिस्थितियां दी हैं उन्हें रखते हुए अगर हम मुसीबतोंके बीच अपने स्वभावके ऊपर प्रभुत्व पा सकें, अगर सनातन उपस्थितिके साथ आंतरिक रूपसे एकाकी रहनेका प्रयत्न करें तो हमें जो सिद्धि प्राप्त होगी वह अत्यधिक सच्ची, गमीर और स्थायी होगी।

मुसीबतोंको जीतनेके लिये उनसे भागना कोई हल नहीं है। यह बड़ा लुभावना है। जो आध्यात्मिक जीवनकी खोजमें हैं उनमें कोई चीज होती है जो कहती है : “ओह ! एकदम अकेले किसी पेड़के नीचे जा बैठना, ध्यानमग्न रहना, बोलने या कुछ करनेके प्रलोभनमें न पड़ना, यह कितना अच्छा होगा !” क्योंकि इस भावकी एक बहुत मजबूत रचना है, लेकिन वह है बहुत अधिक भ्रांतिपूर्ण।

सबसे अच्छे ध्यान वे होते हैं जो तुम हठात् करते हो, क्योंकि वे तुमपर अनिवार्य आवश्यकताकी तरह हावी हो जाते हैं — तुम अपने-आपको एकाग्र किये बिना, ध्यान किये बिना, बाहरी रंग-रूपके परे देखे बिना नहीं रह सकते। और यह आवश्यक नहीं है कि यह ध्यान जंगलके एकांतमें ही तुम्हें पकड़े, यह तब आता है जब तुम्हारे अंदर कोई चीज तैयार हो, जब वह समय आ जाय, जब सच्ची आवश्यकता हो, जब भागवत करुणा तुम्हारे साथ हो।

मेरी समझमें, मानवजातिने प्रगति की है और सच्ची विजय वह है जिसे वह जीवनमें प्राप्त कर सके।

सब परिस्थितियोंके बीच ‘शाश्वत’ और ‘असीम’ के साथ कैसे अकेले रहा जाय, यह जानना चाहिये। सभी व्यस्तताओंके बीच परमेश्वरको साथीके रूपमें रखकर स्वतंत्र रहना जानना चाहिये। यह, यही सच्ची विजय है।

१४. ७. ५८

(श्रीमातृवाणी, खंड ३; धम्मपद, अध्याय २१)

स्फुट वचन

निश्चल-नीरव ध्यानके समय, क्या हमें अपने-आपको पूर्णतः शून्य नहीं बना देना चाहिये ? परंतु उस स्थितिमें यह उस व्यक्तिपर कैसे निर्भर कर सकता है जो ध्यान करता है ?

मैं समझती हूं कि मनकी निश्चल-नीरवता और सत्ताकी पूर्ण शून्यावस्थाके बीच कुछ भ्रम है, ये दोनों बहुत अलग-अलग चीजें हैं। इसके अलावा, मैं यह बहुत अच्छी तरह नहीं समझ पाती कि मनुष्य अपने-आपको पूर्णतः शून्य कैसे बना सकता है, — उसके बाद तो उसका अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

५ अप्रैल, १९५१

(श्रीमातृवाणी, खंड ४; प्रश्न और उत्तर १९५०-५१, पृ० २८९)

*

... लेकिन अगर चीज विधिवत् की जाय, यानी, अगर व्यक्ति इसके लिये प्रतिदिन एक विशिष्ट समय रखे, और दस या पंद्रह मिनटके लिये ध्यान करे, ताकि उस चीज और बाह्य जीवनमें संपर्क स्थापित हो सके, तो कुछ समय बाद वह सफल हो जाता है और फिर व्यक्तिको याद रहता है, और यह चीज बहुत उपयोगी बन जाती है। यह बहुत उपयोगी है। और अगर तुम्हारी एकाग्रताकी शक्ति पूर्ण है, तब ऐसी कोई समस्या नहीं जिसे तुम हल न कर सको — इससे मेरा मतलब गणितकी समस्याओंसे नहीं है (हंसी), मेरा मतलब है उन समस्याओंसे जो जीवन बितानेके बारे-में, उन निर्णयोंके बारेमें होती है जो हमें लेने पड़ते हैं, ऐसी मनो-

वैज्ञानिक समस्याएं जिनके समाधान ढूंढनेकी आवश्यकता होती है। ऐसी एक भी समस्या नहीं जो एकाग्रताकी इस शक्तका प्रतिरोध कर सके।

२३ दिसंबर, १९५३ (श्रीमातृवाणी, खंड ५; प्रश्न और उत्तर १९५३)

★

हम मनमें स्थायी शांति और नीरवता कैसे स्थापित करें?

सबसे पहले तुम्हें संकल्प करना चाहिये, और फिर तुम्हें कोशिश करनी चाहिये, करते रहना चाहिये। बहुत-से तरीके हैं। यह लो एक। बैठ जाओ और पचासों चीजोंके बारेमें सोचनेके स्थानपर, अपने-आपसे कहो, शांति, शांति, शांति। स्थिरता और नीरवताकी कल्पना करो। विचारोंकी ओर मत देखो, उनके शोरपर कान मत दो। जब कोई तुम्हें तंग कर रहा हो और तुम उससे छुटकारा पाना चाहो तो तुम क्या करते हो? तुम उसकी बातको सुननेसे इंकार कर देते हो, तुम अपना मुंह फेर लेते हो और दूसरी चीजोंका विचार करते हो। अपने विचारोंके साथ भी ऐसा ही बरताव करो।

बार-बार बैठकर 'शांति' के जादूको पैदा करनेका मौका लो। सुबह उठते ही और शामको सोनेके लिये जाते समय ऐसा करो। उसका तुम्हारे स्वास्थ्यपर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा। खानेसे पहले कुछ क्षण करो। तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि वह तुम्हारे भोजनको पचानेमें कितनी सहायता देता है।

अगर तुम पर्याप्त समयतक यह करते रहो तो शांतिको तुम्हारे सिरमें घुसना नहीं पड़ेगा। तुम चाहे कुछ क्यों न करो, परिस्थितियां कुछ क्यों न हों, वह हमेशा उपस्थित रहेगी। लेकिन इस-

जून १९७७

२३

में बरसों लग जाते हैं। शुरू-शुरूमें शांति-सूत्रको दो-तीन मिनटों-तक — बहुत ही सरल ढंगसे — बनाये रखो। जब कोई अभ्यास जटिल हो तो तुम्हें प्रयास करना पड़ता है और प्रयास करनेका मतलब है शांत होना बंद कर देना। तुम अपने किसी घनिष्ठ मित्रको अपने पास कैसे बुलाते हो? बिना प्रयासके, एक शब्दमात्र, और वह तुम्हारे पास आ जाता है। इसी प्रकार तुम्हें शांतिको अपना मित्र बनाना चाहिये और उसे बुलाना चाहिये।

(‘मदर इंडिया’, मई ७५)

प्रार्थना

(जो लोग भगवान्की सेवा करना चाहते हैं उनके लिये एक प्रार्थना)

हे सब प्रकारके विघ्नोंका नाश करनेवाले प्रभो, तेरी जय हो।
 वर दे कि हमारे अंदर कोई चीज तेरे काममें बाधक न हो।
 वर दे कि तेरी अभिव्यक्तिमें कोई भी चीज रुकावट न डाले।
 वर दे कि सभी चीजोंमें, हर क्षण तेरी ही इच्छा पूरी हो।
 हम तेरे आगे खड़े हैं ताकि हमारे अंदर, हमारी सत्ताके अंग-प्रत्यंगमें, हर एक क्रियामें, हमारी उच्चतम ऊंचाइयोंसे लेकर शरीरके छोटे-से-छोटे कोषोंतकमें तेरी इच्छा पूरी हो।
 वर दे कि हम तेरे प्रति संपूर्ण रूपसे, सदाके लिये निष्ठावान् हों।
 हम और सभी प्रभावोंसे अलग रहते हुए पूरी तरह तेरे प्रभावमें रहें।
 वर दे कि हम तेरे प्रति गंभीर और तीव्र कृतज्ञता रखना कभी न भूलें।

वर दे कि हम कभी उन अद्भुत चीजोंका अपव्यय न करें जो
तु हमें हर क्षण देता रहता है।

वर दे कि हमारे अंदरकी हर चीज तेरे कार्यमें सहयोग दे और
सब कुछ तेरी उपलब्धि के लिये तैयार हो जाय।

हे समस्त सिद्धियोंके स्वामी, प्रभो, तेरी जय हो।

प्रदान कर हमें, अपनी विजयमें ज्वलंत और सक्रिय, अखंड
और अटल-अचल श्रद्धा।

*

ओ३म् आनंदमयि, चैतन्यमयि, सत्यमयि परमे।

*

तत्सवितुर्वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि ।
यन्नः सत्येन दीपयेत् ।

श्रीअरविंदके पत्र

धीरजकी आवश्यकता : साधना बहुत कठिन है और उसमें जो
समय लगता है उसके लिये बुझबुझना नहीं चाहिये। अंतिम स्तरों-
पर जाकर ही विश्वासके साथ यह आशा की जा सकती है कि
हमेशा, तेजीसे प्रगति होती रहेगी।

रही बात शक्तिकी, जबतक प्राण शुद्ध और समर्पित न हो जाय
तबतक शक्तिके अवतरणमें संकट आ सकते हैं। ज्यादा अच्छा यह
है कि वह शुद्धि, ज्ञान, हृदयकी अभीप्साकी तीव्रता और शक्तिकी

उत्तनी क्रियाके लिये प्रार्थना करे जितनी वह सह सके और आत्म-सात् कर सके।

दृढ़ निश्चय और धीरज : दृढ़ निश्चय और धीरजकी जरूरत है। इस या उस असफलतासे हिम्मत न हारो। भौतिक प्रकृतिकी आवश्यकताओंको बदलना है और इसके लिये व्योरेमें धीरजके साथ लंबे परिश्रमकी जरूरत है।

योगमें आवश्यकता : योगमें बिना थके, बिना अवसादके, हिम्मत हारे या धीरज खोये बिना, प्रयास करते रहने और अपने लक्ष्य और दृढ़ निश्चयपर डटे रहनेकी जरूरत है।

★

योगके लिये सब अवस्थाओंमें, सत्ताके सब भागोंमें समता और शांतिकी जरूरत है। प्रकृतिके झुकावके अनुसार प्रकाश (अपने साथ ज्ञान लिये हुए) या शक्ति (अपने साथ बल और बहुत तरहकी क्रियाशीलता लिये हुए) या आनंद (अपने साथ प्रेम और सत्ताका हर्ष लिये हुए) की बारी बारीमें आ सकती है, लेकिन शांति सबसे पहली शर्त है जिसके बिना और कोई चीज स्थिर नहीं हो सकती।

★

तुम्हारे अंदर गहरी शांति और नीरवता होनी चाहिये, इतनी गहरी कि बाहरसे जो कुछ आये वह अंदर बसी हुई शांतिकी क्षुब्ध किये बिना, ऊपरी सतहपरसे ही चली जाय। यह भी अच्छी बात है कि ध्यान अपने-आप हो रहा है — इसका अर्थ है कि योग-शक्ति साधनाको अपने हाथमें लेना शुरू कर रही है।

★

पहले शांतिको हृदय और नाभिमें उतारना होगा, इससे एक तरह की स्थिरता मिल जाती है, यद्यपि पूर्ण स्थिरता नहीं। इसके लिये एक ही उपाय है, कोई और नहीं — अभीप्सा, सशक्त और शांत संकल्प, जिन भागोंमें तुम शांतिको उतारना चाहते हो — यहां भाव और उच्चतर प्राण — उनमें जो भी चीज भगवान्की ओर मुड़ी न हो उसका त्याग।

★

जब उच्चतर चेतनाकी शांति उतरती है तो वह हमेशा अपने साथ समताकी वृत्ति लेकर आती है क्योंकि समताके बिना शांतिपर हमेशा निम्न प्रकृतिकी लहरोंके आक्रमण हो सकते हैं।

★

तुमने नीरव आंतरिक चेतना पा ली है लेकिन उसे बाहरी विशोभ ढक सकते हैं। अब अगला कदम है अधिकाधिक बाहरी चेतनामें शांति और नीरवताको आधार बनाना...। तब सामान्य शक्ति का खेल केवल ऊपरी सतहपर रह जायगा और उसके साथ आसानी से निबटा जा सकता है।

★

पहली चीज है उच्चतर शांति और नीरवताको बाहरी चेतनामें उतारना ताकि वह काम करनेके अपने ही ढंगपर हठ न करती रहे।

★

इस साधनाके लिये जो चीज सबसे अधिक आवश्यक है वह है

स्थिरता, शांति, विशेष रूपसे प्राणमें शांति — एक ऐसी शांति जो बाहरी अवस्थाओंपर निर्भर नहीं होती, बल्कि भगवान्की उच्चतर चेतनासे, माताजीकी चेतनासे संपर्क रखनेके कारण आती है। जिन्हें वह प्राप्त नहीं है या जो उसके लिये अभीप्सा नहीं करते वे यहां आकर आश्रममें दस-बीस वर्षतक रह सकते हैं, फिर भी वे जैसे-के-वैसे वेचैन और संघर्ष-भरे बने रहेंगे। जो अपने मन और प्राणको माताजीकी शक्ति और शांतिकी ओर खोलते हैं उन्हें अधिक-से-अधिक कठिन और अप्रिय काममें भी, बुरी-से-बुरी परिस्थितियोंमें भी शांति मिल जाती है।

★

इस बातको समझो : शांत वातावरण हो तो बहुत अच्छा, परंतु सच्ची शांति अंदर है, जो स्थिति तुम चाहते हो वह कोई और नहीं दे सकता।

“पीस, काम, क्वायट, साइलेंस” — इन शब्दोंमेंसे हर एकका अर्थ अलग-अलग है; लेकिन उनकी व्याख्या करना आसान नहीं है।

“पीस” — शांति; “काम” — स्थिरता; “क्वायट” — अचंचलता; “साइलेंस” — निश्चल-नीरवता।

अचंचलता एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई वेचैनी या उथल-पुथल नहीं होती।

स्थिरता और भी अचल अवस्था है जिसे कोई गड़बड़ प्रभावित नहीं कर सकती।

शांति और भी अधिक भावात्मक अवस्था है। इसमें एक तरह-की निश्चित, सामंजस्य-भरी विश्रान्ति और मुक्तिका वाव होता है।

निश्चल-नीरवता एक ऐसी स्थिति है जिसमें मन या प्राणकी कोई क्रिया नहीं होती या एक ऐसी गाढ़ शांति होती है जिसे ऊपरी तल-की कोई क्रिया छेद नहीं सकती।

अचंचलता कुछ-कुछ अभावात्मक स्थिति है—यह मनकी चंचलता-का अभाव है।

स्थिरता एक ऐसी स्तब्धता है जो ऊपरी सतहपर खलबली होनेके बावजूद बनी रहती है।

शांति एक ऐसी स्थिरता है जो गभीर होते-होते एक ऐसी चीज बन जाती है जो भावात्मक होती है और लगभग तरंगहीन आनंद बन जाती है।

निश्चल-नीरवता, सोच-विचार या किसी भी क्रियाशीलताकी गति-का अभाव है।

★

पूर्ण निश्चल-नीरवतामें या तो कोई विचार नहीं होते या विचार आते तो हैं पर बाहरसे आनेवाली और निश्चल-नीरवतामें बाधा न देनेवाली चीजके रूपमें अनुभव होते हैं।

मनकी निश्चल-नीरवता, मनकी शांति या स्थिरता, तीनों अलग-अलग चीजें हैं जो एक-दूसरेके बहुत पास हैं और एक-दूसरेको लती हैं।



(जो)
धूमता
(जो)
पुरुषार्थी
शिलामय
धम्म
वाद या
शिक्षापर
अपनी
भी कति
चाहे जि
नकारात्म
के लिये
संकल
रहना च
करना है
ही महीन

धम्मपदं

(१)

यमकवग्गो

असुभानुपस्सिं विरहन्तं इन्द्रियेसु सुसंवृतं ।
भोजनमिह च मत्तञ्जु सद्धं आरद्धवीरियं ।
तं वे नप्पसतहि मारो वातो सेलं व पब्बतं ॥८॥

(जो) अशुभ, अर्थात्, असुखद वस्तुओंकी खोजमें इधर-उधर घूमता है, (जो) अपनी इंद्रियोंको अच्छी तरह बशमें रखता है, (जो) अपने भोजनकी मात्राको जानता है, जो श्रद्धावान और पुरुषार्थी है, उसे मार (वैसे ही) नहीं गिरा पाता जैसे कि वायु शिलामय पर्वतको नहीं गिरा पाता ।

धम्मपद जब श्रद्धाकी बात कहता है तब उसका अर्थ किसी मत-वाद या किसी धर्मपर होनेवाला विश्वास नहीं होता, वह गुरुकी शिक्षापर होनेवाली श्रद्धा भी नहीं होती, वह तो होता है स्वयं अपनी संभावनाओंपर विश्वास, यह दृढ़ प्रतीति कि चाहे जितनी भी कठिनाइयां क्यों न हों, चाहे जितनी बाधाएं क्यों न आयें, चाहे जितनी अपूर्णताएं क्यों न हों, अपनी सत्ताके अंदर चाहे जितनी नकारात्मक भावनाएं भी क्यों न हों, हम इस सिद्धिको प्राप्त करने-के लिये पैदा हुए हैं और उसे अवश्य प्राप्त करेंगे ।

संकल्पको कभी डगमगाना नहीं चाहिये । प्रयास निरंतर बना रहना चाहिये और श्रद्धा अडिग होनी चाहिये । फिर जो कुछ सिद्ध करना है उसे सिद्ध करनेके लिये वर्षों लगानेके बदले हम उसे कुछ ही महीनोंमें सिद्ध कर लेंगे । कभी-कभी कुछ दिनोंमें भी कर सकेंगे

और, यदि हमारे अंदर पर्याप्त तीव्रता हो तो, कुछ घंटोंमें भी कर सकेंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम अपने अंदर एक मनोभाव बना सकते हो और फिर सिद्धिको आक्रांत करनेवाली सब अशुभ इच्छाओंमें तुम्हें परास्त करनेकी शक्ति नहीं होगी जैसे आंधीमें शिलाको हिलानेकी कोई शक्ति नहीं होती।

उसके बाद रास्ता जरा भी कठिन नहीं होता, वह अत्यंत अधिक मनोरम बन जाता है।

१८-१०-१९५७

मैं निहाल हो गयी

हृदय उल्लाससे भरा था। हां, मैं उन्हींके दर्शन करने जा रही थी जिन्होंने मुझे धरतीपर बुलाया था। मनमें तरंगें उठ रही थीं। प्रेम कहूं, हर्ष कहूं, उत्साह कहूं या कुछ भी न कहूं, सभी शब्द मेरे भावको व्यक्त करनेमें समान रूपसे असमर्थ हैं।

मैं अपने भाग्यकी सराहती जाती थी। मैं सचमुच उनके चरणोंके दर्शन कर पाऊंगी। यूं देखा जाय तो यह पहली बार न था। मैं न जाने कितनी बार उनके पास हो आयी थी पर हर बार यही लगता था कि आज प्रथम मिलन होगा। उन आंखोंसे बरसते प्रेमको अपने पास सहेजकर रखनेके लिये मेरे पास उपयुक्त पात्र ही कहाँ था?

कोई उन्हें धन देता है, कोई शरीर देता है, कोई अपना सब कुछ समर्पित कर देता है, पर सब कुछ दे चुकनेके बाद भी मन यही कहता है: "हम उन्हें क्या दे सकते हैं?" फिर मुझ कंगालके पास उन्हें देनेके लिये है ही क्या?

अपना हृदय दूँ ? उसमें न जाने कहां-कहांके ऊट-पटांग भाव भरे हैं; प्राण दूँ ? वह आसक्तियोंसे, आकर्षणोंसे, राग और द्वेषसे भरा है ; मन दूँ ? वह भी विचारोंके जालोंसे पटा हुआ है। रह गया शरीर। तो वह भी रक्त, मांस और रोगोंका घर है। उनके लायक मेरे पास है ही क्या ? तो क्या इसी तरह खाली हाथ जाना होगा उनके पास ? काश ! मेरे पास सुदामाके तंदुल होते।

इस प्रकारके विचार उठते, दिमागमें चक्कर लगाते और फिर मुझे छोड़कर चले जाते। मैं फिर अपनी रिक्तताको संजोये आगे बढ़ जाती। चिंता न थी, दुःख न था लेकिन कहींपर यह चीज खल जरूर रही थी कि मैं उन्हें कुछ दे नहीं पा रही। जिनसे सब कुछ पाया है उनके पास खाली हाथों जा रही हूं। काश ! मेरा हृदय या मस्तिष्क ही एकदम खाली होता जिसमें वे अपना अमिय रस घोल सकतीं।

ऐं, यह क्या ? सिरपर टपसे कुछ चीज गिरी और मेरे बड़े-बड़े बालोंमें उलझकर रह गयी। मैंने बालोंको सुलझाकर उस चीजको उठाया। वह एक नन्हा-सा फूल था— पीले रंगका सुन्दर-सा, सुकुमार फूल।

उसकी पीली-पीली कोमल पंखुड़ियां, उसकी सुन्दर हरी-लाल केसर, उसकी हल्की-सी महक, हर एक मानों बड़े प्रेमके साथ, बड़ी सावधानीसे, बहुत ही धीमी आवाजमें कह रही थी : "सिवाधर्मो परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।"

मैंने संदेश सुना। वह मेरे भीतर कहींपर पैठ गया। मैं खोयी-सी आगे बढ़ती गयी। होशमें आयी तो मैंने देखा मैं उस छोटे-से फूलको उनके चरणोंपर रख रही हूं। हां, यह बहुत बड़ा व्रत था और मैं उसके उत्तरदायित्वसे, उसकी कठोरतासे अनभिज्ञ थी। अब मैं अपने-आपको बहुत हल्का अनुभव कर रही थी।

अगले क्षण उन्होंने मेरे उस छोटे-से उपहारको अपने हाथोंमें ले लिया और देखते-ही-देखते मेरी अंजलिमें डाल दिया। मेरे ऊपर

प्रेमकी, आनन्दकी, अपार हर्षकी वर्षा होने लगी। मैं निहाल हो गयी ! मेरा जीवन सार्थक हो गया।^१

—वन्दना

सोसायटी समाचार

नइवेल्ली (तमिल नाडुमें), सोसायटी शाखाद्वारा संचालित श्री-अरविन्द बाल मंदिरकी वर्षगांठके दिन डा. एच. मशह्वरीने 'भविष्यकी तैयारी' पर भाषण दिया। शामको स्कूलके बच्चोंने एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। श्री एस. डी. गुप्त उसके सभापति थे।

बड़ोदा (गुजरात) से हमें यह खबर मिली है कि पांडिचेरीके श्री हीरालाल अमीन और शेरा केंद्रके श्री मणिभाई एस. पटेलने ग्रामोंमें जा-जाकर लोगोंसे श्रीअरविन्द तथा माताजीके बारेमें बात की। माताजीकी जन्मशताब्दी कैसे मनायी जाय, इसके बारेमें भी उन्होंने केंद्रोंके आयोजकोंके साथ बातचीत की। मणिभाईने गुजरातीमें २०-२५ पुस्तकें तैयार की हैं जिनका जिलेमें गांव-गांवमें प्रचार होता रहता है।

श्रीलंकाकी श्रीअरविन्द सोसायटीसे समाचार मिला है कि १४ फरवरीको, श्री एम. पी. पंडितके निर्देशनमें माताजीकी जन्मशताब्दीके कार्यक्रमकी रूप-रेखा तैयार की गयी। उसमें निम्नलिखित चीजें प्रस्तुत की गयीं :

१) एक मकान किरायेपर लिया जायगा जिसमें 'श्रीअरविन्द पुस्तकालय' शुरू करेंगे।

^१ श्रीमाताजीसे "सर्विस" या "सेवा" नामक फूल पानेपर।

२) बच्चोंके लिये एक स्कूल खोला जायगा ताकि वे माताजीकी शिक्षा-पद्धतिके अनुसार विकसित हो सकें।

३) एक कृषि फार्मकी स्थापना होगी जिसका संचालन पांडिचेरीके आश्रमकी पद्धतिके अनुसार होगा।

अहमदाबादमें श्री रोहित मेहताने दो भाषण दिये। विषय थे : 'भारतमें माताजीका आगमन' और 'माताजी और आध्यात्मिक जीवन'।

देहरादूनमें माताजीके जन्मशताब्दी-कार्यक्रममें कुछ भाषण दिये गये। विषय थे : 'माताजीका जीवन और उनके संस्मरण', 'चेतनाका विकास' इत्यादि।

मार्च और अप्रैलमें श्री शिवाभाई अमीनने गुजरात, मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्रका दौरा किया और ग्रामोंमें श्रीअरविन्द तथा माताजीकी चर्चाएं कीं।

मथुरामें 'बालिका महाविद्यालय' ने एक विचार गोष्ठीकी व्यवस्था की जिसमें लखनऊ महाविद्यालयके श्री सीताराम जायसवालने माताजीके एक संदेशको सविस्तार समझाया। उन्होंने उस आंतरिक अवस्थाका भी जिक्र किया जो निष्ठा, सच्चाई और समर्पणसे पूर्ण है। उन्होंने माताजीके चार रूपों (महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती) के बारेमें भी बताया।

इसी अवसरपर श्रीमती वीणा पांडेने चेतनाके विकासपर भाषण दिया। श्रीमती सरला महेश्वरीने सर्वांगीण शिक्षापर भाषण दिया। इस प्रकार अनेक भाषण हुए। इस कार्यक्रमके सभापति थे श्री बौन महाराज।

बर्मिंघम (यू. के.) के 'धर्म और दर्शन' विभागने ओरोवीलके बारेमें एक प्रदर्शनी की। वह महीने-भर रही।

लंदनमें वेल स्ट्रीट सेंटरमें श्री बालमुकुंद पारीखने श्रीअरविन्दकी पुस्तक 'गीता प्रबंध' पर भाषण दिया।

आश्रमके बारेमें वृत्तचित्र

यह बांछनीय है कि माताजीकी जन्मशताब्दीके सालके सुअवसरपर, हमारे देशके हर एक प्रदेशके पास तीन रंगीन फिल्मोंका एक सेट जरूर रहे। इन फिल्मोंमें माताजी तथा श्रीअरविन्दकी जीवनी और उनके कार्य रुचिकर रूपसे प्रस्तुत किये गये हैं। एक-एक फिल्मकी अवधि है १८ से २२ मिनट।

शैक्षिक संस्थाओंमें श्रीअरविन्द और माताजीके आदर्शोंका परिचय देनेका यह श्रेष्ठ तरीका है। तीनों रंगीन फिल्मोंका मूल्य होगा ४७००/-, बिना रंगके २२००/-। केंद्र इन्हें खरीदकर कालेज और अन्य शिक्षा केंद्रोंमें प्रदर्शित कर सकते हैं। इस मामलेमें अधिक जानकारीके लिये लिखें :

ओरो फिल्मस, 'भावना' ४२२, वीर सावरकर मार्ग, प्रभा देवी, बंबई ४०००२५।

घोषणाएं

अभी हमारे देशमें और विशेष रूपसे शिक्षाके क्षेत्रमें परिवर्तन आ रहा है। माताजी तथा श्रीअरविन्दकी शिक्षाको फैलानेके लिये हम यह सुझाव देते हैं कि हर एक कालेज एक श्रीअरविन्द केंद्र खोले जहां पुस्तकालय, ध्यान कक्ष, ध्वन्यांकित संगीत और फिल्म इत्यादि हों और जहां विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों बैठकर पढ़ाईमें ध्यानमग्न हो सकें। अध्ययन करके माताजी तथा श्रीअरविन्दकी शिक्षाके अनुसार चलनेकी कोशिश करें।

जून १९७७

३५

जो सदस्य कॉलेजोंके प्रधानाचार्यों या कुलपतिसे संपर्क स्थापित कर सकें वे कृपया हमें व्योरोके लिये चिट्ठी लिखें —

श्री ए. एस. महादेविया, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

भविष्यके लिये शिक्षा : पांडिचेरीमें २ से १६ नवंबर तक एक शिक्षा अन्वेषण केंद्र रहेगा। इसका उद्देश्य है श्रीअरविन्दके शिक्षा-मनोविज्ञानसे परिचय करना और शिक्षासे संबद्ध जगत्की समस्याओंके बारेमें कुछ विचार-विमर्श करना। भारत और विदेशके अव्यापक इस प्रस्तावका निर्देशन करेंगे।

सभी आयुके लोग इसमें भाग ले सकते हैं। लेकिन अंग्रेजीपर अधिकार होना जरूरी है। जिनको इस प्रस्तावमें रुचि है वे अगस्त-से पहले-पहले निम्नलिखित पतेपर लिखें :

नौमन डाउसेट, निर्देशक, डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलेपमेंट, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००२।

सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन १२ और १३ अगस्त १९७७ को पांडिचेरीमें होगा।

रेलवे कन्सेशन केवल सोसायटीके सदस्योंको प्राप्त होगा। इसके लिये वे सोसायटीके साथ पत्र-व्यवहार करें।

नये केंद्र और शाखाएं

१. श्रीअरविन्द अभ्यास केंद्र,
द्वारा श्री कुमुद चंद्र एम. वैद्य
एस. एन. कालेज होस्टेल
छोटा उदैपुर ३९११६५
जिला बड़ोदा (गुजरात)

२. श्रीअरविन्द सोसायटी,
द्वारा श्री जयंत मादुड़ी,
४३, गंगा कांता मादुड़ी मार्ग,
बैली-७११२०१
जिला हावड़ा (प. बंगाल)

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१

दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

बंबई कार्यालय

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्र. १००
कफ परेड,

बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१

पाठकोंसे

माताजीकी जन्म शताब्दीके सिलसिलेमें हम सबको कुछ सक्रिय कार्य करना चाहिये ।

‘पुरोधा’ और ‘अग्निशिखा’ माताजीकी वाणीको आपतक पहुंचानेकी कोशिश कर रही हैं, छोटी-छोटी पुस्तकें भी आपके सामने प्रस्तुत कर रही हैं ।

अगर आप अभीतक ग्राहक नहीं बने हैं तो शीघ्र ही ग्राहक बनकर तथा इन पत्रिकाओंको अपने मित्रोंतक पहुंचाकर इस पुण्य कार्यमें हमारा हाथ बंटाइये ।

आप एक बार १५० देकर ‘पुरोधा’के और १०० देकर ‘अग्निशिखा’के आजीवन सदस्य बन सकते हैं । ‘पुरोधा’का वार्षिक चंदा ८.०० और ‘अग्निशिखा’का ६.०० है ।

माताजीकी समस्त उपलब्ध सामग्री आपको ‘श्रीमातृवाणी’के १५ खंडोंमें मिल सकती है । पांच खंड तैयार हैं । छपाईका काम आगे चल रहा है । अभीसे ग्राहक बन जायं तो डाक व्यय सहित ३००.०० ही देने होंगे, किस्तोंमें भी दे सकते हैं ।

हमारी कुछ छोटी पुस्तकोंकी सूची यहां दी जा रही है :

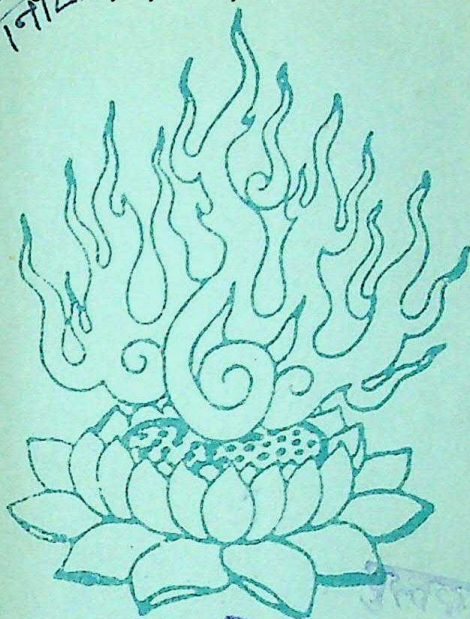
श्रीअरविंद, — जीवन और दर्शन	रु. ४.००
बच्चोंके श्रीअरविंद	रु. ०.७५
माताजी — एक झलक	रु. ४.००
हमारी मां	रु. १.२५
श्रीअरविंद और उनका आश्रम	रु. १.५०
नर और नारी	रु. १.५०
शिक्षाके आधार (माताजीके शिक्षाविषयक लेख)	रु. १.५०
शिक्षाके आयाम (श्रीअरविंदके शिक्षाविषयक लेख)	रु. १.५०
समयकी आवश्यकता	रु. १.५०
माताजीके मंत्र-वचन	रु. १.५०
ध्यान	रु. १.५०
शताब्दी दैनन्दिनी	रु. ५.००

कहानियां जो कुछ और भी कहती हैं :

उसकी राहपर	रु. १.२५
दिलका आईना	रु. १.२५
प्रेमकी विजय	रु. १.५०

पत्र, धनादेश आदि भेजनेका पता :

संपादक 'पुरोधा' एवं 'अग्निशिखा', श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी-६०५००२



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

भारत अंक

वर्ष १९७७

वर्ष ७, अंक १२, पूर्णांक ८४

(श्रीअरविंद सोसायटी और ऐक्शनकी सम्मिलित मासिक पत्रिका)

सूची

माताजी और भारत	१
माताजी भारतके विषयमें	२१
दिव्य खोज	२४
भारत और फ्रांस	२९
भारतके बारेमें कुछ और वचन	२९
सोसायटी समाचार	३२

अग्निशिखाका अगला अंक अगस्त और सितंबरका सम्मिलित अंक होगा। उसमें माताजी और श्रीअरविंदके लगभग ४० चित्र होंगे। हम कोशिश करेंगे कि वह १५ अगस्तसे पहले आपके हाथोंमें पहुंच जाय।

जिन मित्रोंने अभीतक अपना चंदा नहीं भेजा है वे शीघ्र भेजने की कृपा करें।

वार्षिक चंदा ६.००

आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :
संपादक पुरोषा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

भाताजी और भारत

माताजीका जन्म तो फ्रांसमें हुआ था परंतु वे बहुत बार कहा करती थीं : "मैं यूरोपीय नहीं हूँ।" उनमें मिस और तुर्कोंके कुलीन घरानोंका रक्त था। फ्रांसमें रहते हुए उन्होंने भारतके बारेमें बहुत कुछ पढ़ा-सुना था। वहां रहते हुए भी उन्होंने ईशोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्, अमृत विन्दूपनिषद्, नारद भक्ति सूत्र आदिका फ्रेंचमें अनुवाद किया था। उन्हें स्वप्नोंमें बहुत बार भारतीय महापुरुषोंका साक्षात्कार मिलता रहता था जो उन्हें भूत, भविष्य और वर्तमानके बहुत-से रहस्य बताया करते थे। वे उनमेंसे एकको कृष्णके नामसे पहचानती थीं। १९१४ में जब माताजी भारत आयीं तो उन्हें मालूम हुआ कि ये कृष्ण और कोई नहीं श्रीअरविंद ही थे। श्रीअरविंद जो काम हिंदुस्तानमें कर रहे थे उसका पूरक माताजी फ्रांसमें कर रही थीं।

यू तो समस्त विश्व माताजीका था और माताजी समस्त विश्वकी थीं। लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि माताजीको भारतवर्ष बहुत अधिक प्रिय था। उनके लिये एक देशसे प्रेम होनेका अर्थ दूसरेके लिये घृणा या अवज्ञाका भाव नहीं था। परिस्थितियोंके अनुकूल होनेपर १९५४ में उन्होंने चाहा था कि फ्रेंच राष्ट्रीयता त्यागे बिना भारतीय नागरिकता मिल जाय। बड़ा ही क्रांतिकारी विचार था यह। उस समय उन्होंने घोषणा की थी :

"मैं इस दिनके साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषाकी अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ — वह है भारतीय नागरिक बननेकी अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारतमें आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अंतःकरणका देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों

ही भारत स्वतंत्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहां, पांडिचेरीके आश्रमके प्रति अपने भारी उत्तरदायित्वके कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषयमें यह घोषणा कर सकती हूं।

“लेकिन श्रीअरविंदके आदर्शके अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्वमें है, न कि विभाजनमें। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिये दूसरीको छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिये मैं आशा करती हूं कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनानेकी छूट रहेगी, अर्थात्, भारतीय हो जानेपर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।”

“जन्म और प्रारंभिक शिक्षासे मैं फ्रेंच हूं। अपनी इच्छा और रुचिसे मैं भारतीय हूं। मेरी चेतनामें इन दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं, इसके विपरीत, वे एक-दूसरेसे भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरेकी पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूं कि मैं दोनों देशोंकी समान रूपसे सेवा कर सकती हूं, क्योंकि मेरे जीवनका एकमात्र ध्येय है श्रीअरविंदकी महान् शिक्षाओंको मूर्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षाओंमें यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधताके द्वारा इस भूमिपर भागवत एकत्वको अभिव्यक्त करनेके लिये ही उनका अस्तित्व है।”

शायद हम जरा ज्यादा आगे निकल गये हैं। जरा पीछे चलिए। दूसरा महायुद्ध घोर रूपमें चल रहा था। भारतमें चारों ओर अंगरेजोंके और उनके साथ ही मित्र राष्ट्रोंके विरुद्ध जोरों की आंधी चल रही थी और कांग्रेस मंत्रिमंडल त्यागपत्र देकर, तात्कालिक ठोककर मैदानमें उतर आये थे। ‘भारत छोड़ो आंदोलन’ शुरू हो गया था। स्वभावतः पांडिचेरीमें स्थित श्रीअरविंदाश्रम भी इस हवासे अछूता न रहा। आश्रममें काफी लोग ऐसे थे जो राष्ट्रीय आंदोलनोंमें भाग ले चुके थे। उनके दिलोंमें भारतकी स्वाधीनताके लिये तड़प थी, उनमेंसे कुछके अंदर कुछ कर बैठनेके लिये दि



भारत माताके साथ श्रीमां

जुला

पुछल

स्वार्थ

तमा

माता

"

महत्त्व

रहा

रस न

निम्न

अन्याय

के लि

जहरत

"

माग

जुता

लाते

स्थान

और नि

भावना

"श्री

वे चाहें

प्रत्येक

अपरिष्कृ

इसीलिये

मानव

हुए, सत

उन सब

उछल रहा था लेकिन आश्रममें राजनीति वर्जित थी। आश्रमके स्वाधीनता-भरे वातावरणमें केवल चार चीजोंकी सख्त मनाही थी — तमाखू, शराब, सेक्स और राजनीति। इसके बारेमें बादमें माताजीने बतलाया था :

“श्रीअरविंद राजनीतिसे अलग हो गये थे और उनके आश्रमके महत्वपूर्ण नियमोंमेंसे एक यह है कि सब प्रकारकी राजनीतिसे अलग रहा जाय। यह बात नहीं है कि श्रीअरविंदको संसारकी गतिविधियों से नहीं था, बल्कि इसलिये कि आजकल राजनीति एक बहुत ही निम्न कोटिकी और भद्दी चीज है जो पूरी मिथ्यात्व, चालाकी, अन्याय, शक्तिके दुरुपयोग आदिसे भरी है। राजनीतिमें भाग लेने-के लिये कपट, धोखेबाजी और बेतहाशा महत्त्वाकांक्षा पैदा करनेकी जरूरत है।

“हमारे योगका आधार है सच्चाई, ईमानदारी, अहंकारका निषेध, मार्गगत कार्यके लिये निःस्वार्थ आत्मदान, चरित्रकी उदात्तता और ऋजुता। जो लोग इन आधारभूत गुणोंको अपने जीवनमें नहीं लाते वे श्रीअरविंदके शिष्य नहीं हैं और इस आश्रममें उनके लिये स्थान नहीं है। इसलिये मैं आश्रमपर किये गये उन मूर्खतापूर्ण और निराधार आक्षेपोंका उत्तर देनेसे इंकार करती हूं जो विकृत भावना और बुरे इरादोंसे किये जाते हैं।

“श्रीअरविंद हमेशा अपनी मातृभूमिसे प्रगाढ़ प्रेम रखते थे, लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र हो, संसारमें अपने महान् लक्ष्यके अनुरूप हो। उन्हें यह स्वीकार न था कि वह गंदे, अधम, अपरिष्कृत, अंधे, स्वार्थपूर्ण और अज्ञान-भरे पूर्वाग्रहोंके स्तरपर उतरे। इसीलिये हम उनकी इच्छाके साथ-साथ चलते हुए सत्य, प्रगति और मानव रूपांतरकी ध्वजा ऊंची उठाते हैं, उन सबकी परवाह न करते हुए, सत्य, प्रगति और मानव रूपांतरकी ध्वजा ऊंची उठाते हैं, उन सबकी परवाह न करते हुए जो अज्ञान, मूढ़ता, ईर्ष्या और

दुर्भावनाके कारण उसे गंदा करना या कीचड़में घसीटना चाहते हैं—
उसे ऊंचे-से-ऊंचा फहराते हैं ताकि जिन्हें उससे प्रेम हो वे उसे देख
सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।” (२५.४.५४)

तो इन्हीं दिनोंकी बात है। एक युवक माताजीके साथ भारतकी
राजनीतिक स्थितिके बारेमें बात कर रहा था। माताजी उससे कह
रही थीं :

“भारतकी स्वाधीनताकी कोई समस्या नहीं है। वह स्वतंत्र
होगा और अवश्य होगा। यह एक निश्चित तथ्य है। ऊपरी
लोकोंसे आदेश जारी हो चुका है। उसके बस यहां कार्यान्वित
होनेकी देर है। मैंने १९२० में देखा था और श्रीअरविंदसे कहा
था कि भारत स्वाधीन है। अब मुझे चिंता है तो इस बातकी :
भारतीय स्वाधीन होनेके बाद कैसा व्यवहार करेंगे ? क्या वे इस
अनुपम भेंटके योग्य सिद्ध होंगे ? कहीं वे निचली वृत्तियोंके शिकार
होकर इतने परिश्रमसे प्राप्त किये गये फलको बिगाड़ न दें। दुःख-
की बात यह है कि भारतमें इस ओर किसीका ध्यान नहीं जा रहा।”

युवकको ये बातें अच्छी नहीं लगीं। उसने सोचा : “विदेशी
होनेके कारण माताजी भारत या भारतीय लोगोंको पूरी तरह नहीं
समझ पातीं, उन्हें हमारे लक्ष्यके साथ सहानुभूति नहीं है।” उसने
कहा तो कुछ नहीं पर इतनी बड़ी बात माताजीकी पैनी दृष्टिसे कब
छिप सकती थी। उन्होंने बातचीत बीचमें ही रोक दी और अचा-
नक उससे पूछा : “तुम कितने वर्षके हो ?” उसने कहा : “मेरा जन्म
१९१७ में हुआ था।” माताजी बोलीं : “और मैं १९१४ में भारत
आ गयी थी। मुझे भारतके लिये तुमसे कम प्रेम या चिंता नहीं
है।”

उस समय कौन देख सकता था कि भारतीय लोगोंकी अक्षमता

जुलाई १९७७

और अद्वर्दशिताके कारण देशका बटवारा होगा, इतना अधिक रक्त-पात होगा और इसके घाव न जाने कबतक हरे रहेंगे।

दूसरे महायुद्धके शुरूमें ही माताजी और श्रीअरविन्दने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि यह साधारण युद्ध नहीं है, इसमें आध्यात्मिक मूल्योंकी, मानवताके भविष्यकी बाजी लगी हुई है। अगर हिटलर जीत गया तो मानव सभ्यता कम-से-कम एक हजार वर्ष पीछे जा पड़ेगी। माताजीने कहा था, “नाजी पूरी तरह असुरके कब्जेमें हैं और जापानियोंको उनका चप लगा गया है; लेकिन जापानियोंकी सौंदर्य-प्राप्ति वृत्ति उन्हें पूरी तरह आसुरिक होनेसे बचायेगी।”

भारतमें बहुत-से हिटलरकी जीत मना रहे थे। लोगोंकी वृत्ति कुछ इस तरहकी थी, “हे भगवान्, हम तो अपने शत्रुसे लोहा नहीं ले सकते, चल तू इतना ही कर दे कि उसे बिच्छू काट खाये, सांप इस ले।” इस समय जो भी मित्र राष्ट्रोंके पक्षमें बोलता था उसे दोड़ी बच्चा, अंगरेजोंका पिटू और देशद्रोही मान लिया जाता था। देशके ऐसे वातावरणमें राष्ट्रीयताके सिरमौर, एक समयके महान् क्रांतिकारी नेता श्रीअरविन्द तथा माताजीने वाइसरॉयके युद्धकोषमें कुछ पैसा दिया और साथ ही उस समयके मद्रासके राज्यपालको एक सम्मिलित पत्रमें लिखा :

“हम अनुभव करते हैं कि यह युद्ध न केवल न्यायसंगत आत्म-रक्षा और जर्मनी तथा नाजी जीवन-पद्धति तथा सारे संसारको हड़पनेकी नाजी हानससे आक्रांत देशोंकी रक्षाके लिये लड़ा जा रहा है, बल्कि सभ्यता और उससे आजतक प्राप्त उच्चतम सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों तथा मानवजातिके भविष्यकी रक्षाके लिये भी है। चाहे कुछ क्यों न हो, इस लक्ष्यके लिये हमारी सहायता और सहानुभूति अटल रहेगी। हम ब्रिटेनकी विजयकी आशा लगाये हैं और उसके परिणामस्वरूप शांति और राष्ट्रोंमें ऐक्य तथा आजसे अधिक अच्छे और सुरक्षित जगत्की ओर आंखें लगाये हैं।”

आश्रममें भी ऐसे लोग थे जो ब्रिटेन-विरोधी वारामें बहे जा रहे थे। उनके लिये तथा उन लोगोंके मार्ग-दर्शनके लिये जो माताजी और श्रीअरविंदकी रायको मूल्य देते थे माताजीने ६ मई, १९४१ को एक वक्तव्य दिया :

“जोरदार और स्पष्ट शब्दोंमें यह कहना जरूरी हो गया है कि जो लोग अपने विचारों और इच्छाओंसे नाजी लोगोंकी विजय मना रहे हैं वे अपनी इस इच्छाके कारण ही भगवान्‌के विरुद्ध असुरका साथ दे रहे हैं और असुरोंकी जय लानेमें सहायक हो रहे हैं।”

माताजी और श्रीअरविंदने युद्धकोषमें जो पैसा दिया था वह तो एक भौतिक प्रतीक मात्र था। स्वयं श्रीअरविंदने लिखा है :

“उन्होंने डंकर्कके समयसे अपनी आध्यात्मिक शक्ति मित्र-राष्ट्रोंके पक्षमें लगा दी थी। उन्होंने यह इसलिये किया क्योंकि उन्होंने देखा कि हिटलर और नाजीवादके पीछे अंधकारमय आसुरी शक्तियाँ थीं और उनकी विजयका अर्थ होगा अशुभके अत्याचारोंके नीचे मानव जातिकी दासता। इससे मानव जातिके क्रम-विकास, विशेषकर आध्यात्मिक क्रम-विकासका काम अटक जायगा। इसका परिणाम होगा सारे यूरोप और सारे एशियाकी, जिसमें भारत भी शामिल है, दासता। और यह दासता अभीतक सही गयी सभी दासताओंसे कहीं अधिक भयंकर होगी, देशकी स्वाधीनताके लिये अभीतक जो कुछ प्रयास हुआ है उसे चौपट कर देगी।”

१९४२ के शुरू-शुरूमें भारतका भाग्य भी डांवाडोल था। जापान सिंगापुर और मलेशियाको ले चुका था और उसकी नजरें भारतपर लगी हुई थीं। यहां ऐसे लोग थे जो जापानका मुक्तिदाताके रूपमें स्वागत करनेको तैयार बैठे थे। उन दिनों माताजी कहा करती थीं :

जुलाई १९७७

"ब्रिटेन काफी लंबे समयसे बड़ा साम्राज्य रहा है और उसका पेट काफी भरा हुआ है। वह तुम्हें थोड़ा-थोड़ा करके खायेगा, लेकिन अगर जर्मनी या जापान जैसा कोई भूखा देश आ जाय तो वह तुम्हें कच्चा चबा जायगा।"

वे कहा करती थीं: "हिटलरकी विजय-कामना करना श्रीअरविंदके साथ विश्वासघात है। श्रीअरविंदके कार्यका मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके साथ गहरा संबंध है। वे इसके लिये दिन-रात काम कर रहे हैं। अगर हिटलर या स्टालिनकी विजय हो तो आध्यात्मिकताका सत्यानाश समझो।"

१९४१ में किसी शिष्यको अपने परिवारकी सुरक्षाकी बहुत चिंता थी। उसकी और उस जैसीकी प्रार्थनापर माताजीने कहा:

"आज संसारकी स्थिति बड़ी नाजुक है। हिंदुस्तानका भाग्य भी कच्चे घागेसे लटक रहा है। एक समय था जब भारत पूरी तरह सुरक्षित था। उसपर आसुरी आक्रमणका कोई भय न था, लेकिन स्थिति बदल गयी है। हिंदुस्तानके लोगोंने और शक्तियोंने इस तरह काम किया है कि आसुरी शक्तियोंके प्रभावको अपने ऊपर बुला लिया और इस घातक प्रभावने यहांकी सुरक्षाको संकटमें डाल दिया है।"

"अगर भारत संकटमें हो तो यह आशा नहीं की जा सकती कि गांधिचैरी संकटसे बाहर रहेगी।"

"उसे भी सारे देशके भाग्यका भागीदार बनना होगा। मैं जो सुरक्षा दे सकती हूं वह बिना शर्त नहीं है। यह आशा करना व्यर्थ है कि हर परिस्थिति और हर क्रियाके बावजूद सबपर सुरक्षाका छत्र रहेगा। अगर शर्तें पूरी की जायं तभी मेरी सुरक्षा मिल सकती है। यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि नाजी या उनके साथी देशोंके लिये सहानुभूति या उनका अनुमोदन सुरक्षाकी लक्ष्मण-रेखाको

काटता है। इस स्पष्ट बाहरी तौरपर प्रकट बातके अतिरिक्त कुछ मौलिक शर्तें हैं जिन्हें पूरा करना जरूरी है। भगवान् उन्हींको सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं जो भगवान्के प्रति पूरे दिलसे वफादार हैं, जो सचमुच साधनाके भावमें रहते हैं, अपनी चेतना और अपनी तन्मयताको पूरी तरह भगवान्पर और उनकी सेवामें लगाये रहते हैं। उदाहरणके लिये, कामना, अपनी पसंद-नापसंदका आग्रह, दिखावा, ढोंग, कपट, मिथ्यात्व भागवत सुरक्षाके मार्गमें बहुत बड़ी रूकावटें हैं। अगर तुम भगवान्पर अपनी इच्छा थोपना चाहो तो यह अपने ऊपर बमको निमंत्रण देनेके समान है। मैं यह नहीं कहती कि चीजें इस प्रकारका रूप अवश्य लेंगी, लेकिन अगर लोग सचेतन न बनें, पूरी तरह जागरूक न हों, और सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासुके भावसे काम न करें तो इस प्रकारकी संभावना बहुत अधिक है। अगर यहांका मनोवैज्ञानिक वातावरण भी वैसा ही बना रहे जैसा बाहर है तो अंधकारकी शक्तियोंको रोकनेके लिये कोई निश्चित दीवार नहीं रह सकती, फिर संकट, यातना और विनाशकी शक्तियोंको यहां घुसनेसे नहीं रोका जा सकता।”

उसके बाद आया इतिहास-प्रसिद्ध क्रिप्स प्रस्ताव। अंगरेज सरकार झुकी थी, भारतको आंतरिक स्वाधीनता देनेके लिये तैयार हो गयी थी। सरकारी प्रस्ताव लेकर आये पं. जवाहर लाल नेहरूके मित्र सर स्टेफर्ड क्रिप्स। श्रीअरविंदने खुले तौरपर इन प्रस्तावोंका स्वागत किया। उन्होंने कहा : “भारतको आत्म-निर्णय करनेका एक अवसर मिल रहा है। वह अपनी स्वाधीनता और एकताकी व्यवस्था कर सकेगा और संसारके स्वाधीन देशोंमें अपना प्रभावशाली स्थान पा लेगा। मैं आशा करता हूं कि सब असंगतियों, मतभेदों और विभाजनोंको एक ओर रखकर इन प्रस्तावोंको स्वीकार कर लिया जायगा। मैं यह भी आशा करता हूं कि भारत और ब्रिटेन के बीच पिछले संघर्षोंको भुलाकर नये मंत्रीपूर्ण संबंध स्थापित

जुलाई १९७७

९

होंगे और यह विश्व ऐक्यकी ओर एक बड़ा कदम होगा। इसमें आध्यात्मिक शक्तिसे संपन्न भारत मानव जातिके लिये ज्यादा आनंदमय और ज्यादा अच्छे जीवनके निर्माणमें सहायक होगा। इस दृष्टिसे मैं सार्वजनिक रूपमें इन प्रस्तावोंका स्वागत करता हूँ।”

यहां यह कहनेकी जरूरत नहीं कि माताजी और श्रीअरविंद जो कुछ करते या कहते थे वह दोनोंकी सम्मिलित चीज होती थी। उनमें न कोई भेद किया जा सकता था, न किया जा सकता है। श्रीअरविंदने एक संदेशवाहक दिल्ली भेजकर कांग्रेसके नेताओंसे कहला भेजा: “देशका कल्याण अभीष्ट हो तो क्रिप्स प्रस्ताव स्वीकार कर लो।” जिस देशमें राजा हमेशा ऋषि-मुनियोंकी सलाहसे काम करते थे उसी देशके नेताओंने श्रीअरविंदकी सलाहपर कान न दिया और परिणाम — देशका विभाजन, इतनी मार-काट और इतनी विभीषिकाएं। बादमें कई कांग्रेस नेताओंने इस बातको व्यक्तिगत बात-चीतमें स्वीकार भी किया। कांग्रेसके प्रसिद्ध नेता कन्हैया लाल मुंशीने तो खुले आम एक भाषणमें कहा :

“श्रीअरविंद वस्तुओंके हार्दको देख सकते थे। भारतकी राजनीतिक स्थितिके बारेमें उनकी दृष्टि हमेशा विलकुल ठीक-ठीक रही। जब १९३९में विश्व युद्ध शुरू हुआ तो उन्होंने कहा, ‘इंग्लैंड और फ्रांसकी विजय आसुरी शक्तियोंपर भगवान्की विजय होगी।’ जब सर स्टेफर्ड क्रिप्स अपने पहले प्रस्ताव लेकर आये तो श्रीअरविंदने कहा, ‘भारतको इन्हें स्वीकार कर लेना चाहिये।’ हमने उनकी सलाहको न माना...। आज हम देख रहे हैं अगर उनकी बात मान ली जाती तो देशका विभाजन न होता, विस्थापितोंकी और कश्मीरकी समस्याएं न खड़ी होतीं।” हम इसमें जोड़ सकते हैं कि बांग्ला देश तथा उसके बादकी आनेवाली विभीषिकाएं भी न आतीं। माताजी और श्रीअरविंद मित्र-राष्ट्रोंके दोषोंसे अपरिचित न थे।

उन्होंने उनकी ओरसे आखें भी नहीं मूदी थीं। वे हर एककी त्रुटियोंको भली-भांति जानते थे। श्रीअरविद कहते हैं:

“मनुष्य जैसे हैं, भगवान् उन्हें उसी हालतमें यंत्रके रूपमें स्वीकार करते हैं, वे भले देवदूतों जैसे शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक न हों। अगर उनमें सद्भावना है, अगर वे बाइबलकी भाषामें भगवान्की ओर हैं तो यह कार्यके लिये पर्याप्त है। अगर मुझे यह मालूम होता कि मित्र-राष्ट्र अपनी विजयका दुरुपयोग करेंगे या शांतिमें गड़बड़ करेंगे या कम-से-कम आंशिक रूपमें विजयद्वारा प्रदान किये गये अवसरोंको बिगाड़ देंगे तो भी मैं अपनी शक्ति उनके साथ लगाता। उनके साथ कम-से-कम इतना तो है कि हिटलरकी विजयसे स्थिति जितनी बिगाड़ सकती है उसका सौवां हिस्सा भी न बिगाड़ेगी। भगवान्के मार्ग खुले रहेंगे। उन्हें खुला रखना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमें वास्तविक, केंद्रीय तथ्यको स्वीकार करना चाहिये। अंधकारपूर्ण दासता और नया जीवनप्राप्त बर्बरता-के संकटसे देश और संसारको बचाना चाहिये और अभीके लिये बाकी सब गौण या केवल सैद्धांतिक समस्याओंको एक ओर रख देना चाहिये।”

इतिहासका सबसे भयंकर युद्ध समाप्त हुआ और मित्र-राष्ट्रोंकी विजय हुई। उस दिन माताजीने यह संदेश दिया:

“विजय आ गयी है, नाथ, यह तेरी विजय है। इसके लिये हम तुझे अनगिनत धन्यवाद देते हैं।

“अब हमारी एक प्रबल प्रार्थना तेरी ओर उठ रही है। विजेताओं-ने तेरी शक्तिसे, तेरी ही शक्तिद्वारा विजय पायी है। वर दे कि सफलताकी घड़ीमें इस बातको भूल न जायं, वर दे कि संकट और तीव्र व्यथाकी घड़ियोंमें उन्होंने तुझे जो वचन दिये थे, वे उनका

पालन करें। उन्होंने युद्ध करनेके लिये तेरा नाम लिया है, शान्ति स्थापित करते समय वे तेरी कृपाको भूल न जायें।”

भारतमें स्थिति अच्छी न थी। बंगालकी हालत बहुत शोचनीय हो उठी थी। नवाखली और कलकत्ताके हत्याकांड सारे देशमें उल-पुल मचा रहे थे। हिन्दू-मुस्लिम संबंध बिगड़ते जा रहे थे। श्रीअरविदने किसीको लिखा :

“जहांतक बंगालका प्रश्न है, स्थिति निश्चित रूपसे खराब है। हिंदुओंकी अवस्था भयानक है और दिल्लीके अस्थायी गठबंधनके बावजूद अधिक खराब होती जायगी। लेकिन हमारी प्रतिक्रिया सीमासे बाहर न होनी चाहिये और न हमें निराशाको स्थान देना चाहिये। बंगालमें कम-से-कम दो करोड़ हिंदू तो होंगे ही और उनका मूलोच्छेदन नहीं किया जा सकता। हिटलर हत्याकांडके वैज्ञानिक साधनोंके होते हुए सभी यहूदियोंका सफाया नहीं कर पाया और आज वे बहुत ज्यादा जीवित-जाग्रत् दिखायी दे रहे हैं। और रही हिंदू संस्कृति, तो वह इतनी कमजोर या छुई-मुई जैसी नहीं है कि कोई आसानीसे उखाड़ सके। वह कम-से-कम पांच हजार वर्षसे चली आ रही है और अभी इससे अधिक चल सकती है। उसने जीते रहनेके लिये काफी शक्ति जुटा ली है। आज जो हो रहा है इससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। जब मैं बंगालमें था तभी मैंने इसे पहलेसे देख लिया था और लोगोंको सावधान किया था। यह बहुत संभव और लगभग अनिवार्य है और उन्हें इसके लिये तैयार रहना चाहिये। उस समय मैंने जो कुछ कहा उसे किसीने कोई महत्व न दिया। बादमें जब पहले-पहल गड़बड़ शुरू हुई तो कुछ लोगोंने इन बातोंको याद किया और कहा कि मेरी बात ठीक थी। केवल चित्तरंजन दासको इस चीजका भय था और जब वह पांडिचेरी आये तो उन्होंने मुझसे कहा कि वे नहीं चाहेंगे कि

अंगरेज इस खतरनाक समस्याके हल होनेसे पहले यहांसे चले जायें। लेकिन जो हो रहा है उससे मैं हतोत्साह नहीं हुआ हूं। क्योंकि मैं जानता हूं और मैंने सैकड़ों बार अनुभव किया है कि घने-से-घने अंधकारके परे, जो भगवान्‌का यंत्र है उसके लिये, भागवत विजयका प्रकाश मौजूद है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मैंने संसारमें किसी चीजके होनेके लिये प्रबल और निरंतर संकल्प किया और वह पूरी नहीं हुई — यहां मैं व्यक्तिगत चीजोंकी बात नहीं कर रहा। ये चीजें विलंब, पराजय और घोर विपदाके बाद भले हुई हों पर हुई जरूर हैं। एक समय था जब हिटलर सब जगह विजयी होता जा रहा था और ऐसा लगता था कि असुरका काला जुआ सारे संसारपर रख दिया जायगा। पर आज कहां है हिटलर और कहां है उसका राज्य? बर्लिन और न्यूरेम्बर्गने मानव इतिहासके उस अंध-कारमय अध्यायकी इतिथ्री कर दी। दूसरे अंधकार मनुष्य जातिपर छाया डाल रहे हैं और उसे लील जानेका भय दिखाते हैं, लेकिन उनका अंत भी उसी तरह आयेगा जैसे इस दुःस्वप्नका अंत आया।”

इस बीच भारतकी स्वाधीनता नजदीक आती जा रही थी। १ जून, १९४७ को उस समयके वाइसरायने भारतके विभाजनके बारेमें अपनी घोषणा की। माताजीने रेडियोपर वह घोषणा सुनी और फिर श्रीअरविंदकी पूरी सहमतिके साथ यह संदेश दिया :

(यह रेडियोमें सुननेके बाद माताजी को सुनायी दिया था।)

“भारतकी स्वाधीनताको सुसंगठित करनेमें हमारे सामने जो कठिनाइयां दिखायी दे रही हैं उनका समाधान करनेके लिये एक प्रस्ताव रखा गया है और भारतके नेता उसे काफी दुःखके साथ और हृदय की टटोलते हुए स्वीकार रहे हैं। परंतु क्या तुम जानती हो कि

यह प्रस्ताव हमारे सामने क्यों रखा गया है? यह हमें यह दिखानेके लिये रखा गया है कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

“और क्या तुम जानती हो कि इस प्रस्तावको हमें क्यों स्वीकार करना होगा? हमें अपने सामने यह साबित करनेके लिये इसे स्वीकार करना होगा कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

“यह स्पष्ट ही है कि यह कोई समाधान नहीं है। यह एक प्रकारकी परीक्षा है, एक अग्नि-परीक्षा है, जो, अगर हम इसे पूरी सचाईके साथ स्वीकार करें और अपने जीवनमें उतारें तो हमें यह सिद्ध करके दिखा देगी कि किसी देशको टुकड़े-टुकड़े करके हम उसमें एकता नहीं स्थापित कर सकते, उसे महान् नहीं बना सकते; विभिन्न विरोधी स्वार्थोंको एक-दूसरेके विरुद्ध खड़ा करके उसे हम समृद्ध नहीं बना सकते; एक मतवादको दूसरे मतवादके विरोधमें उपस्थित कर हम सत्यकी सेवा नहीं कर सकते। जो हो, भारतकी एक ही आत्मा है और जबतक ऐसी अवस्था नहीं आ जाती कि हम एक भारतकी, एक और अखंड भारतकी बात कह सकें, तबतक हमें बराबर बस यही रट लगानी चाहिये :

“भारतकी आत्मा चिरंजीवी हो।”

(३-६-१९४७)

यहां शायद यह बताना अप्रासंगिक न हो कि एक बार बातचीतमें माताजीने किसीसे कहा था :

“भारत इस जमीन, यहांकी नदियों और यहांके पहाड़ोंका नाम नहीं है। इस देशके वासियोंका सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक जीवित सत्ता है, यह सत्ता उतनी ही जीवित जाग्रत् है जितने शिव आदि देवता। सभी देशोंकी अपनी-अपनी आत्मा होती है और अगर तुम देशमें परिवर्तन करना चाहते हो तो वह अवास्तविक होगा। उदाहरणके लिये, आजकल ऑस्ट्रिया जर्मनीका भाग बना

हुआ है, फिर भी दोनों देश एकदम मित्र हैं। ऑस्ट्रियाकी आत्मा बहुत दुःखी है। भारत एक देवी है, अगर वह चाहे तो मानव रूपमें प्रकट हो सकती है।”

इसी तरह और एक बार कुछ बात चल रही थी। माताजीने कहा :

“राष्ट्र एक जीवित-जाग्रत व्यक्तित्व है। मानव व्यक्तिकी तरह उसमें भी अंतरात्मा होती है। उसमें एक चैत्य पुरुष भी होता है। यानी, एक सचेतन सत्ता जो दिव्य चेतनामेंसे रूप लेती है और महा-शक्तिके किसी रूप और शक्तिके साथ उसका सीधा संपर्क होता है। राष्ट्र देशमें रहनेवालोंका कुलयोग नहीं होता। वह एक सामूहिक व्यक्तित्व होता है और उस देशके वासी किसी भी जीवित सत्ताके कोषाणुओंकी तरह उसके जीवित कोषाणु होते हैं।”

जब भारतको स्वाधीनता मिली तो श्रीअरविन्दने एक संदेश दिया। माताजीके कथनानुसार प्रत्येक भारतीयको इसका मनन करना चाहिये और जबतक भारत सचमुच एक होकर उन्नतिके शिखरपर न पहुँच जाय तबतक इसे अपने सामने रखना चाहिये। वे कहते हैं :

“१५ अगस्त १९४७ स्वाधीन भारतका जन्मदिन है। यह दिन भारतके लिये पुराने युगकी समाप्ति और नये युगका प्रारंभ सूचित करता है। परंतु हम एक स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें अपने जीवन और कार्योंके द्वारा इसे ऐसा महत्वपूर्ण दिन भी बना सकते हैं जो संपूर्ण जगत्के लिये, सारी मानवजातिके राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भविष्यके लिये, नवयुग लानेवाला सिद्ध हो।

“१५ अगस्त मेरा अपना जन्मदिन है और स्वभावतः यह मेरे लिये प्रसन्नताकी बात है कि इस दिनने इतना विशाल अर्थ तथा महत्त्व प्राप्त कर लिया। परंतु इसके भारतीय स्वाधीनता-दिन

१ उन दिनों हिटलरने ऑस्ट्रियाको निगल रखा था।

जुलाई १९७७

१५

मो हो जानेको मैं कोई आकस्मिक संयोग नहीं मानता, बल्कि यह मानता हूँ कि जिस कर्मको लेकर मैंने अपना जीवन आरंभ किया था उसको मेरा पथ-प्रदर्शन करनेवाली भागवती शक्तिने इस तरह मंजूर कर लिया है और उसपर अपनी मुहर भी लगा दी है और वह कार्य पूर्ण रूपसे सफल होना आरंभ हो गया है। निःसंदेह, आजके दिन, मैं प्रायः उन सभी जागतिक आंदोलनोंको, — जिन्हें मैंने अपने जीवनकालमें ही सफल देखनेकी आशा की थी, यद्यपि उस समय वे अतंभव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, — सफल होते हुए या अपनी सफलताके मार्गपर जाते हुए देख सकता हूँ। इन सभी आंदोलनोंमें स्वाधीन भारत एक बड़ी भूमिका अच्छी तरह अदा कर सकता है और एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

"इन स्वप्नोंमें पहला था एक क्रांतिकारी आंदोलन जो स्वाधीन और एकीभूत भारतको जन्म दे। भारत आज स्वाधीन हो गया है, पर उसने एकता नहीं प्राप्त की है। एक समय प्रायः ऐसा सौजन्य था मानों अपने स्वाधीन होनेकी प्रक्रियामें ही वह फिरसे पृथक्-पृथक् राज्योंकी उस अव्यवस्थापूर्ण स्थितिमें जा गिरेगा जो ब्रिटिश विजयसे पहले विद्यमान थी। परंतु सौभाग्यसे अब ऐसी प्रबल संभावना हो गयी है कि यह संकट टल जायगा और अभी पूर्ण न सही, पर एक विशाल तथा शक्तिशाली एकत्व अवश्य स्थापित हो जायगा। विधान-परिषद्की दूरदर्शितापूर्ण प्रबल नीतिने इस बातको संभव बना दिया है कि दलित वर्गोंकी समस्या बिना फूट-फटावके हल हो जायगी। परंतु हिंदुओं और मुसलमानोंका पुराना संप्रदायिक भेद देशके स्थायी राजनीतिक विभाजनके रूपमें सुदृढ़ हो गया दीखता है। यह आशा करनी चाहिये कि इस तथे किये गये विभाजनको पत्थरकी लकीर नहीं मान लिया जायगा और इसे एक काम-चलाऊ, अस्थायी उपायसे बढ़कर और कुछ न माना जायगा क्योंकि यदि यह कायम रहे तो भारत भयानक रूपमें दुर्बल और अग्रगतक हो सकता है; गृह-कलहका होना सदा ही संभव बना रह

सकता है, नये आक्रमण और विदेशी राज्यका हो जाना तक संभव हो सकता है। भारतकी आंतरिक उन्नति और समृद्धि रुक सकती है, राष्ट्रोंके बीच उसकी स्थिति दुर्बल हो सकती है, उसका भविष्य कुंठित, यहांतक कि व्यर्थ भी हो सकता है। यह नहीं होना चाहिये; देशका विभाजन अवश्य दूर होना चाहिये। हम आशा करें कि यह कार्य स्वाभाविक रूपसे ही हो जायगा, न केवल शांति और मेल-मिलापकी, बल्कि मिल-जुलकर काम करनेकी भी आवश्यकताको उत्तरोत्तर समझ लेने तथा मिल-जुलकर काम करनेके अम्यास और उसके लिये साधनोंको उत्पन्न कर लेनेसे संपन्न हो जायगा। इस प्रकार अंतमें एकता चाहे किसी भी रूपमें आ सकती है — उसके ठीक-ठीक रूपका व्यावहारिक महत्त्व भले ही हो, पर कोई प्रधान महत्त्व नहीं। परंतु चाहे किसी भी उपायसे हो, चाहे किसी भी प्रकारसे ही, विभाजन अवश्य हटाना चाहिये, एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिये और स्थापित होगी ही, क्योंकि भारतके भविष्यकी महानताके लिये यह आवश्यक है।

“दूसरा स्वप्न था एशियाकी जातियोंका पुनरुत्थान तथा स्वातंत्र्य और मानव सभ्यताकी उन्नतिके कार्यमें एशियाका जो महान् स्थान पहले था उसी स्थानपर उसका लौट जाना। एशिया जग गया है; उसके बड़े-बड़े भाग स्वतंत्र हो गये हैं या इस समय बंधनमुक्त हो रहे हैं; इसके अन्य भाग, जो अभी परतंत्र या अंशतः परतंत्र हैं वे भी, चाहे कैसे भी घोर संघर्षोंमेंसे गुजरते हुए, स्वतंत्रताकी ओर बढ़ रहे हैं। केवल थोड़ा ही करना बाकी है और वह आज न सही, कल पूरा हो जायगा। उसमें भारतको अपनी भूमिका अदा करनी है और उसे उसने एक ऐसी सामर्थ्य और योग्यताके साथ करना शुरू कर दिया है जो अभीसे उसकी संभावनाओंकी मात्रा तथा उस स्थानको सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रोंकी सभामें ग्रहण कर सकता है।

“तीसरा स्वप्न था एक विश्व-संघ जो समस्त मानवजातिके लिये एक सुन्दरतर, उज्ज्वलतर और महत्तर जीवनका बाहरी आवरण

जुलाई १९७७

१७

निर्मित करे। मानव संसारका वह एकीकरण प्रगतिके पथपर है। एक अवूरा प्रारंभ संगठित किया गया है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयोंके विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। किंतु उसमें एक वेग है और वह अनिवार्य रूपसे बढ़ता चला जायगा और विजयी होगा। इस कार्यमें भी भारतवर्षने प्रमुख भाग लेना प्रारंभ कर दिया है और, यदि वह उस अधिक विशाल राजनीतिज्ञताको विकसित कर सके जो वर्तमान घटनाओं और तात्कालिक संभावनाओंसे ही सीमित नहीं होती, बल्कि भविष्यको देख लेती और उसे निकट लाती है, तो भारतकी उपस्थिति मंद एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं सहस्रपूर्ण विकासमें जो महान् भेद है उसे प्रदर्शित कर सकती है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान् विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती है या उसे नष्ट कर सकती है, किंतु तो भी अंतिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि एकीकरण प्रकृतिकी आवश्यकता है, अनिवार्य गति है। इसकी आवश्यकता राष्ट्रोंके लिये भी स्पष्ट है; क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रोंकी स्वाधीनता किसी भी क्षण खतरमें पड़ सकती है और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्रोंका भी जीवन असुरक्षित हो सकता है, इसलिये इस एकीकरणमें ही सवका हित है और केवल मानवीय निःशक्तता तथा मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ही इसे रोक सकती है; परंतु ये भी प्रकृतिकी आवश्यकता और भगवानकी इच्छाके विरुद्ध हमेशा नहीं ठहर सकतीं। परंतु एक बाहरी आधार ही पर्याप्त नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय भाव और दृष्टिकोण भी अवश्य विकसित होने चाहिये, अंतर्राष्ट्रीय पद्धति तथा संस्थाएं भी अवश्य प्रादुर्भूत होनी चाहिये, शायद इस प्रकारकी प्रगतियां भी पैदा हों जैसे कि दो या अनेक देशोंका एक संग नागरिक होना, संस्कृतियोंका आपसमें ऐच्छिक दान-प्रतिदान या उनका स्वेच्छापूर्वक घुलना-मिलना। राष्ट्रीयता तब अपने-आपको चरितार्थ कर चुकी होगी, और अपनी युद्धप्रियताको छोड़ चुकी होगी, और तब वह ऐसी चीजोंकी आत्म-संरक्षण तथा अपनी दृष्टिकी अखण्डतासे

असंगत नहीं अनुभव करेगी। एकत्वकी एक नयी भावना मनुष्य जातिपर आधिपत्य जमा लेगी।

“चौथा स्वप्न, संसारको भारतका आध्यात्मिक दान, पहलेसे ही प्रारंभ हो चुका है। भारतकी आध्यात्मिकता यूरोप और अमरीकामें नित्य बढ़ती हुई मात्रामें प्रवेश कर रही है। यह आंदोलन बढ़ेगा; वर्तमान कालकी विपदाओंके बीच अधिकाधिक लोगोंकी आंखें आशा-के साथ भारतकी ओर मुड़ रही है और न केवल उसकी शिक्षाओंका अपितु उसकी आंतरात्मिक और आध्यात्मिक साधनाका भी उत्तरोत्तर आश्रय लिया जा रहा है।

“अंतिम स्वप्न था क्रम-विकासमें अगला कदम जो मनुष्यको एक उच्चतर और विशालतर चेतनामें उठा ले जायगा और उन समस्याओंका हल करना प्रारंभ कर देगा जिन समस्याओंने मनुष्यको तभीसे हैरान और परेशान कर रखा है जबसे कि उसने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण समाजके विषयमें सोचना-विचारना शुरू किया था। यह अभीतक एक व्यक्तिगत आशा और विचार और आदर्शमात्र है जिसने भारत और पश्चिममें, दोनों जगह दूरदर्शी विचारकोंको वशमें करना शुरू कर दिया है। इस मार्गकी कठिनाइयां प्रयासके किसी भी अन्य क्षेत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक जवर्दस्त हैं, परंतु कठिनाइयां जीती जानेके लिये ही बनी थीं और यदि दिव्य परम इच्छा शक्ति-का अस्तित्व है तो वे दूर होंगी ही। यहां भी, यदि इस विकास-को घटित होना है तो, चूंकि यह आत्मा और आंतर चेतनाकी अभिवृद्धिद्वारा ही होगा, इसका प्रारंभ भारतवर्ष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र सार्वभौम होगा, तथापि केंद्रीय आंदोलन भारत ही करेगा।

“ये हैं वे भाव और भावनाएं जिनको मैं भारतीय स्वाधीनताकी इस तिथिके साथ संबद्ध करता हूं। क्या ये आशाएं ठीक सिद्ध होंगी, या कहांतक सिद्ध होंगी, यह बात नये और स्वाधीन भारतपर निर्भर करती है।”

और उसी दिन माताजीने भारत मांका आवाहन इन शब्दोंमें किया :

“हे हमारी मां ! हे भारतकी आत्म-शक्ति ! हे जननी ! तूने कभी, अत्यंत अंधकारपूर्ण अवसादके दिनोंमें भी, यहांतक कि जब तेरे वक्त्रोंने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओंकी सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी, तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे मां ! आज, इस महान् घड़ीमें जब कि वे जग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रताके इस उपःकालमें तेरे मुखमंडलपर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतंत्रताका जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानताका तथा विश्वके राष्ट्र-समाजके अंदर तेरे सच्चे जीवनका भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शोंके पक्षमें ही खड़े हों और अध्यात्म-मार्गके नेताके रूपमें तथा सभी जातियोंके मित्र और सहायकके रूपमें तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजातिको दिखा सकें।”

प्रत्येक व्यक्तिको यह याद दिलानेके लिये कि भारत एक और अखंड है माताजीने प्लेग्राउंडकी दीवारपर अखंड भारतका एक नक्शा बनवाया। ध्यान और मार्च-पास्ट के समय माताजी उसीके सामने खड़ी हुआ करती थीं ताकि जाने-अजाने हर आनेवालेके अंदर यह भाव भरता रहे कि भारतका विभाजन असत्य है, उसको मिटना चाहिये और वह मिटकर रहेगा। इस अंकमें दिये गये चित्रमें माताजी उसी नक्शेके सामने बैठी हुई दिखायी देती हैं।

माताजीने समय-समयपर भारतके बारेमें आश्रमवासियोंको कुछ वार्ता दिये थे। उनमें हम देख सकते हैं कि माताजी कितनी अधिक भारतीय थीं, शायद हम लोगोंसे बहुत अधिक। विदेशोंकी तो कौन रहे, स्वयं भारतमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो यह मानते हैं कि

आजके संसारमें आध्यात्मिकताको कहीं सिर छिपानेके लिये भी जगह नहीं मिल सकती। लेकिन भारत आध्यात्मिकताका पालना रहा है। हजारों वर्षोंसे यहांके “वन, पर्वत और नदी नीर” ने आध्यात्मिकताके गीत गाये हैं। माताजी कहती हैं:

“भारत वह देश है जहां आध्यात्मिकताका राज हो सकता है और होना चाहिये और यहां उसका समय आ गया है। और फिर उस देशकी मुक्तिका यह एकमात्र संभव साधन है जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश, विदेशी राज्य और प्रभावके कारण मिथ्या हो गयी है। लेकिन फिर भी उसके पास एक अद्भुत आध्यात्मिक परंपरा है।”

१९६९ में तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी आश्रम आयी थीं। माताजीने उन्हें निम्नलिखित संदेश दिया था:

“भारतको भविष्यके लिये काम करना चाहिये और राह दिखानी चाहिये। इस तरह वह जगत्में अपना सच्चा स्थान फिरसे पा लेगा।

“एक लंबे अरसेसे विभाजन और विरोधके द्वारा शासन करनेकी प्रथा चली आ रही है। समय आ गया है जब एकता, पारस्परिक समझौता और सहयोगके द्वारा शासन किया जाय।

“सहयोगी चुननेके लिये मनुष्यका मूल्य अधिक है, इस बातका नहीं कि वह किस दलका है।

“किसी राष्ट्रकी महानता किसी दलकी जीतपर नहीं, सभी दलोंकी एकतापर निर्भर है।”

सारे संसारके विकासमें भारत मांकी एक विशेष भूमिका है।

माताजी भारतके विषयमें

प्र०—वर्तमान संकटकालमें प्रत्येक भारतीयका आज क्या कर्तव्य है ?

उ०—अपने तुच्छ अहंकारपूर्ण व्यक्तित्वके परे उठ जाओ और हम सबकी भारत माताकी एक सुयोग्य संतान बनो, अपने कर्तव्योंको ईमानदारी और सरलताके साथ पूरा करो और भागवत कृपापर अडिग विश्वास रखकर सर्वदा प्रसन्न और निश्चित बने रहो।

★

सच्ची आध्यात्मिकता जीवनका त्याग करना नहीं, बल्कि दिव्य परिपूर्णताके साथ जीवनको पूर्ण बनाना है।

यह चीज है जिसे अब भारतको संसारके संमुख रखना होगा।

२६.१.१९६३

★

भारतके लिये अब पहले नंबरकी समस्या है अपनी अंतरात्माको फिरसे प्राप्त करना और उसे अभिव्यक्त करना।

★

विश्वकी भलाईके लिये भारतकी रक्षा करनी होगी, क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्वको शांति और एक नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

एकमात्र भागवती शक्ति ही भारतकी सहायता कर सकती है।

यदि तुम देशके अंदर विश्वास और मेल उत्पन्न कर सको तो वह मनुष्यनिर्मित किसी भी शक्तिसे अधिक शक्तिशाली होगा।

★

देशमें एक ऐसा दल अवश्य होना चाहिये जो आध्यात्मिक ज्ञानके द्वारा भारत और विश्वकी रक्षा करनेकी एक प्रबल और संहत संकल्प-शक्तिका निर्माण करे। एकमात्र भारत ही विश्वमें सत्यको ला सकता है। भागवत संकल्प और शक्तिको अभिव्यक्त करके एकमात्र भारत ही विश्वके सामने अपना संदेश प्रचारित कर सकता है, पर वह कार्य पश्चिमके जड़वादका अनुकरण करनेसे नहीं होगा। भागवत इच्छाका अनुसरण करनेपर भारत आध्यात्मिक पर्वतके शिखर-पर जगमगा उठेगा, सत्यका मार्ग दिखायेगा और विश्व ऐक्यका संगठन करेगा।

★

भारतका भविष्य एकदम स्पष्ट है। भारत जगत्का गुरु है। विश्वका भावी संगठन भारतपर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत आध्यात्मिक ज्ञानको विश्वमें मूर्तिमान कर रहा है। भारत सरकारको इस क्षेत्रमें भारतके महत्त्वको स्वीकार करना चाहिये और अपने कार्यको इसीके अनुसार सुयोजित करना चाहिये।

★

(भारतके राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसादके आश्रम आनेपर)

भारतको अपना भगवन्निर्दिष्ट कार्यकी ऊंचाईतक ऊपर उठना चाहिये और विश्वके सामने सत्यकी घोषणा करनी चाहिये।

११-११-१९५५

भारतके भूतकालकी गौरव-गरिमा उसकी जीवन्त आत्माकी सहायता और आशीर्वादसे उसके आसन्न भविष्यकी सिद्धिमें फिरसे जन्म ग्रहण करे।

२३.८.१९५१

★

भारतकी आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत विश्वमें किये जानेवाले अपने जीवन-कार्यके विषयमें सचेतन है। वह उसकी अभिव्यक्तिके बाहरी साधनोंकी प्रतीक्षा कर रहा है।

६.६.१९४७

★

एक समय था जब भारत एकदम सुरक्षित था, उसके लिये आसुरिक आक्रमणका शिकार बननेका किसी प्रकारका कोई खतरा नहीं था, परंतु अब परिस्थिति बदल गयी है। भारतकी प्रजा और उसकी शक्तियोंने ऐसे ढंगसे कार्य किया है कि उससे आसुरिक प्रभावोंको उसके ऊपर आ पड़नेका निमंत्रण मिल गया है : उन्होंने एक विश्वासघातककी तरह कार्य किया है और देशके लिये जो सुरक्षाकी स्थिति थी उसे जड़से खोद डाला है।

२५.५.१९४१

★

समस्त सृष्टिमें पृथ्वीका एक विशेष स्थान है क्योंकि दूसरे ग्रहोंसे भिन्न यह विकसनशील है और अपने केंद्रमें एक चैत्य पुरुषको लिये हुए है। उसमें भारत विशेष रूपसे भगवान्‌का चुना हुआ देश है।

✱

(‘आकाशवाणी’ को संदेश)

सच्ची स्वतंत्रता ऊपरकी ओर उठती हुई गति है जो निचली संहज प्रवृत्तियोंके आगे नहीं झुकती।

सच्ची स्वतंत्रता एक दिव्य अभिव्यक्ति है।

हम भारतके लिये सच्ची स्वतंत्रता चाहते हैं ताकि वह जगत्के आगे, मानव जातिको जो बनना चाहिये उसका ठीक उदाहरण और प्रदर्शन बन सके।

१३.२.७१

*

भारत सरकारके बारेमें एक चीज जाननी चाहिये — क्या वह भविष्यके लिये जीना चाहती है या किसी तरह निराश होकर अतीतसे चिपकी रहती है ?

२०.६.६७

*

भारतके पास आत्माका ज्ञान है, बल्कि था, लेकिन उसने जड़-भौतिक पदार्थकी उपेक्षा की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिमके पास जड़-भौतिक पदार्थका ज्ञान है, लेकिन उसने आत्माको अस्वीकार किया और इस कारण बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

एक सर्वांगीण शिक्षा जो थोड़े-बहुत परिवर्तनके साथ सभी राष्ट्रोंके अनुकूल बनायी जा सके, पूर्णतया विकसित और उपयोगमें लाये हुए जड़-पदार्थपर आत्माका न्यायसंगत अधिकार वापस लाना होगा।

दिव्य खोज

(माताजीकी एक टिप्पणी)

“ओह ! चूंकि भारत धर्मका पालना है और क्योंकि इतने सारे देवता उसकी नियतिका संचालन करते हैं, उनमेंसे कौन इस देशको पुनर्जीवित करनेका चमत्कार सिद्ध करेगा ?...”

ए. शुमैल (१९२२ में लिखे गये पांडिचेरीपर एक लेखसे)

झूठे दिखावोंसे अंधा बनकर, निदाओंसे धोखा खाकर, मय और पूर्वग्रहोंसे अवरुद्ध, वह उन भगवान्‌के पाससे गुजरा है जिनके हस्त-क्षेपके लिये वह प्रार्थना करता है और वह उन्हें देख नहीं पाया। वह उन शक्तियोंके नजदीक आया जो उस चमत्कारको सिद्ध करेंगी, लेकिन उन्हें पहचाननेका उसमें संकल्प नहीं था। इस तरह वह अपने जीवनका सबसे बड़ा मौका खो बैठा है। वह उन रहस्यों और चमत्कारोंके संपर्कमें आनेका अनोखा मौका खो बैठा है जिनके अस्तित्वके बारेमें उसकी बुद्धिने अनुमान लगा लिया है और जिनके लिये उसका हृदय अस्पष्ट रूपसे अभीप्सा करता है।

हमेशा, दीक्षा पानेसे पहले साधकों की परीक्षाओंमेंसे गुजरना पड़ा है। पुराने संप्रदायोंमें ये परीक्षाएं कृत्रिम होती थीं और उस कारण वे अपने मूल्यका अधिकतर भाग खो देती थीं। लेकिन अब ऐसी बात नहीं है। परीक्षा किसी बहुत ही साधारण-सी और दैनिक परिस्थितिके पीछे छिपी रहती है और ऊपर दैवयोग या संयोगका मुखांटा पहने रहती है जिससे वह और भी कठिन और खतरनाक बन जाती है।

भारत अपने खजानेका रहस्य केवल उन्हीं लोगोंपर प्रकट करता है जो मनकी अभिरुचियोंपर और जाति तथा शिक्षाके पूर्वग्रहोंपर विजय पा सकते हैं। बाकीके सब वांछित चीज न पानेके कारण हताश होकर चले जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उसकी खोज गलत तरीकेसे की थी और दिव्य खोजका मूल्य चुकानेको तैयार नहीं थे।
(११ सितम्बर, १९२२)

(माताजीकी हालकी टिप्पणी)

"यह अब भी सच है।"

*

जब मैं कहती हूं कि समझदार लोगोंको जगत्‌पर शासन करना

चाहिये तो यह बात राजनैतिक दृष्टिसे नहीं, बल्कि आध्यात्मिक दृष्टिसे कही जाती है।

शासनके विविध प्रकार जैसे-के-तैसे बने रह सकते हैं। उसका महत्त्व गौण है। लेकिन अधिकारियोंकी सामाजिक स्थिति चाहे कैसी क्यों न हो, उन्हें उन लोगोंसे प्रेरणा मिलनी चाहिये जिन्होंने सत्यको पा लिया है और जिनकी इच्छा भागवत इच्छाके साथ एक है।

★

(क्रीड़ांगनमें लगे भारतके नक्शेके बारेमें)

नक्शा विभाजनके बाद बनाया गया था।

सभी गुजरते हुए बाहरी रूपोंके बावजूद यह सच्चे भारतका नक्शा है। और लोग चाहे उसके बारेमें कुछ क्यों न सोचें, यही हमेशा सच्चे भारतका नक्शा रहेगा।

२९.७.३४

★

(अखिल भारतीय भाषाका प्रश्न। माताजीकी राय)

एकमात्र तात्कालिक समाधान यह है कि हर प्रदेश अपनी भाषा को प्रादेशिक राजभाषा रखे और केंद्रीय शासनके लिये वर्तमान सामान्य अंग्रेजी भाषाको अभीके लिये जारी रखा जाय।

★

यह सोचना बंद कर दो कि तुम पश्चिमके हो और दूसरे पूरबके। सभी मानव एक ही दिव्य-स्रोतके हैं और धरापर इस स्रोतकी एकता को अभिव्यक्त करने आये हैं।

४.८.४९

★

स्वतंत्रता बाहरी परिस्थितियोंसे नहीं, बल्कि आंतरिक मुक्तिसे आती है। अपनी आत्माको खोजो, उसके साथ एक होओ, उसे अपने जीवनपर शासन करने दो और तुम स्वतंत्र हो जाओगे।

★

माताजी, मैंने सुना है कि १९६७ में भारत "जगत्का आध्यात्मिक गुरु बन जायगा..."

लेकिन कैसे? जब हम वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हैं...

भारतको जगत्का गुरु होना चाहिये। अंदर उसमें क्षमता है, लेकिन बाहर...। वास्तवमें जगत्का गुरु बननेके लिये उसे अभी बहुत कुछ करना है।

अभी ऐसा अद्भुत अवसर है! लेकिन...

८.६.६७

★

श्रीअरविंदके जन्मतक हमेशा, धर्म और आध्यात्मिकताका केंद्र अतीतके व्यक्ति रहे और वे हमेशा 'लक्ष्य' के रूपमें घरापर जीवनका निषेध दिखाते थे। इसलिये तुम्हारे सामने दो विकल्प होते थे :

— तुच्छ ऐंद्रिय सुख-दुःख, खुशी और कष्टसे भरा इहलोकका जीवन और अगर अच्छी तरह व्यवहार न करो तो नरककी धमकी

या

— किसी दूसरे जगत्, स्वर्ग या जन्नतमें वच निकलना...। इन दोनोंमें चुनने लायक कुछ नहीं है।

श्रीअरविंदने हमसे कहा है कि यह एक मूलभूत गलती थी जो भारत की दुर्बलता और अधोगतिके लिये जिम्मेदार है। यह देशकी सारी ऊर्जाको नष्ट कर देनेके लिये काफी थी।

सचमुच, सारे संसारमें भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बातके प्रति सचेत है कि भौतिक पदार्थके अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश इसे भूल चुके हैं, चाहे यूरोप, अमेरिका या दूसरा कोई देश, कोई भी क्यों न हो...। इसी कारण भारतके पास अभीतक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे जगत्को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्थामें छितरा हुआ छटपटा रहा है।

श्रीअरविंदने बताया है कि सत्य भौतिक जीवनसे पलायन करनेमें नहीं, बल्कि उसके अंदर रहनेमें, उसे रूपांतरित करनेमें, उसे दिव्य बनानेमें है, ताकि भगवान् यहां, इस भौतिक जगत्में अभिव्यक्त हो सकें।

३१.३.६७

*

(नव्ववीं वर्षगांठपर 'ऑल इण्डिया रेडियो' ने माताजीसे संस्मरण मांगे थे। उन्होंने कहा :)

संस्मरण छोटे होंगे।

मैं श्रीअरविंदसे मिलनेके लिये हिंदुस्तान आयी थी। मैं श्रीअरविंदके साथ रहनेके लिये हिंदुस्तानमें रही। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया तो मैं उन्हींका काम करनेके लिये यहां बनी रही। उनका काम है 'सत्य' की सेवा करके और मानव जातिमें ज्योति लाकर, धरतीपर भागवत प्रेमके राज्यको जल्दी लाना।

*

विभाजनकी शक्ति अस्थिर और अस्थायी है।

एकता स्थायी शक्ति और ज्योतिर्मय भविष्यके लिये काम करती है।

२५.४.६९

भारत और फ्रांस

किसी भी देशमें बच्चोंको जो सबसे अच्छी शिक्षा दी जा सकती है वह यह है: उन्हें यह दिखाया जाय कि उनके देशका सच्चा स्वरूप और निजी विशेषताएं क्या हैं, जगत्में उनके राष्ट्रको कौन-सा कर्तव्य पूरा करना है और पार्थिव सामंजस्यमें उसका सच्चा स्थान क्या है। उसमें दूसरे राष्ट्रोंकी भूमिकाका विस्तृत ज्ञान भी जोड़ देना चाहिये, लेकिन नकलके भावके बिना और अपने देशकी प्रतिभाको आंखोंसे ओझल किये बिना।

फ्रांसका मतलब है भावनाकी उदारता, विचारोंकी नूतनता और निर्भिकता, और क्रियामें शौर्य। वही फ्रांस सबके आदर, सम्मान और प्रशंसाका पात्र था। इन्हीं गुणोंसे वह जगत्पर छा गया था।

व्यावहारिकतामें फ्रांस, मतलबी और व्यापारिक फ्रांस फ्रांस नहीं रहा। ऐसी चीजें उसके सच्चे स्वरूपके साथ मेल नहीं खातीं और इन चीजोंको अपने आचरणमें लाकर वह संसारमें अपनी भव्य प्रतिष्ठाकी स्थितिको खो रहा है।

आजके बच्चोंको यही सिखाया जाना चाहिये।

(माताजीका कहना है कि फ्रांस ही यूरोपको भारतका संदेश देने में समर्थ होगा।)

भारतके बारेमें कुछ और वचन

लोग, विशेष रूपसे पश्चिमके लोग, यह समझते हैं कि योगका मतलब है हठ योग या उससे बदतर कोई और चीज। भारतमें भी, मध्य कालमें बौद्ध धर्म, मायावाद इत्यादिके प्रभावके कारण योगका अर्थ था जीवनका त्याग। प्राचीन कालमें ऐसा नहीं था।

यूरोपमें लोगोंको लगता था कि भारतकी बुरी दशा उसके जीवनसे वैराग्यके कारण हुई है। उसके बाद पश्चिमके लोगों और उनकी जड़-द्रव्यके बारेमें गलत धारणाओं और जीवनके संबंधमें दंभपूर्ण विचारोंके साथ संपर्क हुआ। इन सबने भारतके जीवनके प्रति वैराग्यके साथ मिलकर देशकी वर्तमान पतित अवस्थाको जन्म दिया।

हमारा योग जीवनको अस्वीकार नहीं करता। हमें उनके दिमागमें यह घुसा देना चाहिये।

हम कोशिश करेंगे — नहीं, कोशिश नहीं — हम देशकी वर्तमान स्थितिको बदलेंगे। जो लोग एक नये भारतका निर्माण करनेमें हमारी सहायता करना चाहें वे कर सकते हैं।

शिक्षामें — उसमें तकनीकी शिक्षा भी शामिल है — हम पाश्चात्य पद्धतिका अंधा अनुकरण नहीं करेंगे। निश्चय ही हमारे बच्चोंका दिमाग प्रशिक्षित होगा, लेकिन हम उनके अंदर अंतर्भासी क्षमता और तादात्म्यद्वारा ज्ञान भी विकसित करेंगे।

४-४-६७

★

भारतकी आत्मा ही देशको एक कर सकती है।

बाहरी रूपमें भारतके प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषाकी दृष्टिसे, एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं और कृत्रिम रूपसे उन्हें एक करनेका कोई भी प्रयास अनर्थकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है, आध्यात्मिक सत्यके प्रति, तीव्र सर्जनकी तात्त्विक एकता और जीवनके दिव्य स्रोतके प्रति उसकी अभीप्सा तीव्र है। और इस अभीप्साके साथ एक होकर समस्त देश एक ऐसी एकताको फिरसे स्थापित कर सकता है जिसका अस्तित्व उच्चतर मनके लिये कभी लुप्त नहीं हुआ।

★

जुलाई १९७७

(२६ जनवरी १९६४ को 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' नामक पत्रिकामें कुछ प्रश्न छापे गये थे, जिनका उत्तर माताजी दे रही हैं :)

अगर आपसे, संक्षेपमें, केवल एक ही वाक्यमें, भारतके बारेमें अपनी दृष्टिको प्रस्तुत करनेके लिये कहा जाय, तो आपका क्या उत्तर होगा ?

भारतकी सच्ची नियति है जगत्का गुरु बनना ।

इसी तरह, अगर आपसे कहा जाय कि आपको वास्तविकता जिस रूपमें दिखायी देती है उसपर एक ही वाक्यमें टिप्पणी करें तो आप क्या कहेंगी ?

वर्तमान वास्तविकता एक बड़ा मिथ्यात्व है जो एक शाश्वत सत्यको छिपाये हुए है ।

आपके मतानुसार कौन-सी तीन बाधाएं अंतर्दृष्टि और वास्तविकता-के बीच खड़ी हैं ?

(क) अज्ञान; (ख) भय; (ग) मिथ्यात्व ।

स्वाधीनताके बाद सब मिलाकर भारतने जो प्रगति की है उससे आप संतुष्ट हैं ?

नहीं ।

आधुनिक कालमें हमारी सबसे उत्कृष्ट उपलब्धि कौन-सी है ? आप उसे इतना महत्वपूर्ण क्यों समझती हैं ?

'सत्य' के लिये प्यासका जागना । क्योंकि बिना 'सत्य' के कोई वास्तविकता नहीं होती ।

उसी प्रकार क्या आप यह बता सकती हैं कि सबसे दुःखद

असफलता कौन-सी है ? किन कारणोंसे आप उसे इतना दुःख समझती हैं ?

सच्चाईका अभाव । क्योंकि सच्चाईका अभाव नाशकी ओर ले जाता है ।

★

हे भारत, आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाशके देश ! जगत्में अपने सच्चे कर्तव्यके प्रति सचेतन होओ और एकता तथा सामंजस्यका मार्ग दिखलाओ ।

२३-१-६७

सोसायटी समाचार

श्रीअरविंद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन पांडिचेरीमें १२ और १३ अगस्तको होगा । अधिक जानकारीके लिये 'घोषणाएं' विभाग देखिये ।

९ मईसे १५ दिनके लिये पांडिचेरीके नए स्कूलमें व्यापार-व्यवस्था (बिजनेस मैनेजमेंट) का अध्ययन किया गया । व्यवस्थाकी समस्याओंके साथ-साथ श्रीअरविंदकी शिक्षापर भाषण हुए और शारीरिक शिक्षामें प्रशिक्षण दिया गया ।

भुवनेश्वरके 'उत्कल महाविद्यालय' ने ४ और ५ मईको दो दिनकी सभा रखी । डा. एच. के. मेहताब उसके अध्यक्ष थे और पांडिचेरीके डा. एच. माहेश्वरीने उसका शुभारंभ किया । बैठकोंके विषय थे : 'माताजी और भारत', 'शिक्षाके बारेमें माताजी' और 'माताजी और अतिमानसिक अभिव्यक्ति' । डा. माहेश्वरी हर बैठकके मुख्य वक्ता थे । उनके अतिरिक्त डा. डी. सी. मिश्र, डा. जी. माथुर इत्यादिने भाषण दिये ।

बुलाई १९७३
बंगलौरमें २४ अप्रैलको अशोक होटलमें डा. के. आर. श्री निवास बायंगरने माताजीकी जन्मशताब्दीके महोत्सवका उद्घाटन किया। 'माताजीका आगमन' पर आधारित एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया, जिसमें श्रीअरविंद तथा माताजीकी रचनाओंमेंसे पाठ हुआ। कुछ विद्यार्थियोंने माताजीके चार रूपोंको चित्रित करते हुए नृत्य प्रस्तुत किया। इस अवसरपर इस शाखाने एक छोटी पुस्तिका प्रकाशित की जिसका नाम था 'सारा जीवन योग है'। अशोक होटलके कला मंदिरमें तस्वीरोंकी प्रदर्शनी भी हुई।

२८ अप्रैलको शताब्दी-भाषणोंका पहला भाषण श्री श्रीनिवास बायंगरने दिया। विषय था — 'माताजी — उनकी जीवनी, उनका संदेश'। माताजीके संगीतके साथ स्लाइड भी दिखायी गयीं।

१४ और १५ मईको अन्नकपल्लीमें श्रीअरविंद सोसायटीकी आंच प्रदेशकी शाखाओंकी वार्षिक बैठक हुई। श्री प्रपत्तिने व्यवस्थाके बारेमें काफी सुझाव दिये। डा. माहेश्वरी आदिने श्रीअरविंदकी शिक्षाके बारेमें व्याख्यात्मक भाषण दिये। डा. प्रेमा नंदकुमार और श्रीमती गिरिजा कुमारीने श्रीअरविंदके प्रकाशमें नारियोंकी भूमिका-पर भाषण दिये।

८ और ९ मईको निजामाबाद जिलेमें श्रीअरविंद सोसायटीका अधिवेशन हुआ। डा. वी. मधुसूदन रेड्डीने साधनापर भाषण दिया। उसी अवसरपर तीन ओरोफिल्म दिखायी गयीं।

ऊना (हिमाचल प्रदेश) में श्रीअरविंद मोडेल स्कूलका वार्षिक कार्यक्रम २४ अप्रैलको हुआ। कुछ विद्यार्थियोंने श्रीअरविंदकी कविताएं सुनायीं।

कपड़वणज (गुजरात) में श्रीअरविंद केंद्रोंकी सभा हुई। श्री अंबा प्रेमी शाह उसके अध्यक्ष थे।

नड़ियाद (गुजरात) में १४ मईको श्रीअरविंद साधना-केंद्रने श्रीअनिरुद्ध स्मार्तकी अध्यक्षतामें तीन दिनका शिविर रखा। तीन

भाषण हुए, विषय थे : 'गीताका रहस्य', 'सावित्रीकी साधना' और 'श्रीअरविदका पूर्ण योग'।

नैरोबी (पूर्व अफ्रीका) के श्रीअरविद सर्कलसे निमंत्रण पानेपर श्री रोहित मेहताने वहां जाकर श्रीअरविदके पूर्ण योगके बारेमें भाषण दिया।

इस साल औलिम्पियामें १४ से २४ अप्रैलतक 'तन और मनका उत्सव' का कार्यक्रम हुआ। वहां प्रदर्शनी भी हुई जिसमें आश्रम, ओरोवीलकी चीजें रखी गयीं।

घोषणाएं

श्रीअरविद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन पांडिचेरीमें १२ और १३ अगस्तको होगा। ११ तारीखको सभी शाखाओं तथा केंद्रोंके कार्यकर्ताओंकी विशेष बैठक होगी। सोसायटीके सभी सदस्योंको निमंत्रण है।

अधिवेशनका मुख्य विषय होगा : 'माताजीकी शताब्दी, उसका अर्थ और उसके योग्य बननेके लिये क्या किया जाय'।

सदस्य उपरलिखित विषयपर अपना-अपना लेख तैयार करके ११ जुलाईसे पहले-पहले भेजनेकी कृपा करें। लिफाफेपर लिखा रहना चाहिये, 'वार्षिक अधिवेशनका पत्र — १९७७'। सारा लेख और प्रेषकका नाम और पता टंकित होना चाहिये।

रेलवे कन्सेशन केवल सोसायटीके सदस्योंको ही प्राप्त हो सकता है। घरके सदस्य (पति-पत्नी और २१ वर्षसे कमके बच्चे) यह कन्सेशन ले सकते हैं।

जो सदस्य अधिवेशनमें भाग लेना चाहें वे प्रतिनिधि-पत्र भरनेकी कृपा करें। वे स्पष्ट रूपसे अपनी सदस्यता-संख्या, सदस्यताकी

(शेष आवरण ३ पर)

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१

दूरभाष : २२३६

पाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सबानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्रं. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्ता’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये ।

संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,

अमरावती-४४४६०१



भगवत्कृपापर पूर्ण विश्वास और निर्भरता बनाये रखना ही,
अंतिम विश्लेषणमें, सर्वोत्तम बुद्धिमानी सिद्ध होता है।

— श्रीमाताजी



स्टार आटोमोबाईल सर्विसेज

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर (उ. प्र.)

एवं

भारत आयल कैरियर्स

लक्ष्मणझूला मार्ग

क्राशकेश-२४९२०१



मान्यता और साथ अनिवार्य रिश्तेदारों के नाम और उमर भी लिखें, ताकि रेलवे कन्सेशन के फार्म भेज सकें। जबतक हमें ठीक-ठीक भरे हुए प्रतिनिधि फार्म नहीं मिलते तबतक रेलवे कन्सेशन फार्म नहीं भेजे जायेंगे।

हमारे अतिथिगृहों में रहने की व्यवस्था कुछ सीमित है इसलिये हम स्थानीय होटलों तथा अन्य स्थानों में भी जगह आरक्षित करनी होगी। वहां मनचाही सुविधाएं प्राप्त नहीं होंगी। इसलिये हम आशा करते हैं कि सदस्य इस मामले में सहयोग देंगे। उन्हें पहले से ही १०.०० प्रति व्यक्ति शयनागार या २०.०० प्रति व्यक्ति अन्य सुविधाओं के लिये भेजकर अपने रहने की व्यवस्था आरक्षित कर लेनी होगी। चूंकि होटलों तथा अन्य स्थानों के लिये पैसे पहले ही देने होंगे इसलिये सदस्य भाग लेने के लिये न भी आ सकें तो उनके रुपये लौटाना संभव नहीं होगा। फिर भी अगर ४ अगस्त से पहले वे अपना आरक्षित स्थान रद्द कराना चाहें तो पेशगी दिये गये रुपये लौटाये जा सकते हैं। हमारा तार-पता है : सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२।

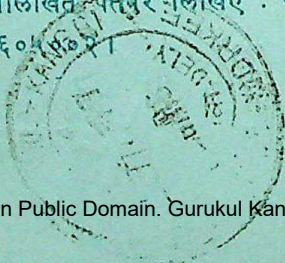
रहने की व्यवस्था के लिये पेशगी रुपये मनीआर्डर द्वारा या ड्राफ्ट-द्वारा भेजिये। सब कुछ पूरे विस्तार से लिखिये, कितने व्यक्ति आ रहे हैं, कब, कितने बजे पांडिचेरी पहुंच रहे हैं, और यहां कितने दिन रहेंगे। निवास का शुल्क प्रति व्यक्ति प्रतिदिन मात्र शयनागार के लिये है ३.००; एक कमरे के लिये सुविधाओं के अनुसार ५.०० से २०.०० और दो कमरों और स्वतंत्र बाथरूम के लिये १५.०० से ३०.०० तक की व्यवस्था है। पत्र-व्यवहार और पेशगी रुपये इस पते पर आने चाहिये : एकोमोडेशन सेक्शन, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२।

शताब्दी वर्ष के एक क्रिया-कलाप के रूप में हम २५०० डॉनर मेम्बरों का नाम दर्ज करना चाहते हैं। २५१.०० देकर आप आजीवन सदस्य बन सकते हैं। हम इस प्रयास में सब सदस्यों

और मित्रोंको भाग लेनेके लिये निमंत्रण देते हैं। जो सदस्य हैं वे इस विभागमें शामिल हो सकते हैं और दो तीन नए सदस्य भी बना सकते हैं। इसके लिये प्रार्थना-पत्र तथा अन्य साहित्य आप निम्न पतेसे प्राप्त कर सकते हैं: श्री ए० एच० महादेविया, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२।

श्रीअरविन्द आश्रमकी दिल्ली छाखाने एक पुस्तिका प्रकाशित की है: 'माताजी और उनका काम'। उसे तैयार किया है डा० इन्द्र सेनने। मूल्य है ५० पैसे। केन्द्रों तथा शाखाओंके उपयोगके लिये वह और भी कम मूल्यमें प्राप्त होगी। ज्यादा जानकारीके लिये लिखिए इस पतेपर: श्रीअरविन्द आश्रम शाखा, नई दिल्ली-११००१६।

इण्टरनेशनल गेस्ट हाउस : ऑल इण्डिया मंगजीनके मार्च अंकमें १२० दिनकी रहनेकी व्यवस्थाकी घोषणा की गयी थी। कुछ सदस्यों ने लिखा है कि अपने कामके कारण सालमें १२० दिन यहां नहीं रह सकते फिर भी इस प्रस्तावका लाभ उठाना चाहते हैं। इसलिये कुछ सुविधाजनक परिवर्तन किये गये हैं, जो लोग इस अतिविशालाके निर्माणके लिये ५००० रुपये देंगे वे सालभरमें ३० दिन मुफ्त रह सकेंगे। जो १०,००० देंगे वे ६० दिन और जो २०,००० देंगे वे १२० दिन मुफ्त रह सकेंगे। अधिक जानकारीके लिये आप निम्नलिखित पतेपर लिखिए : महासचिव, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२।





उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

भारत अंक (२)

अक्तूबर १९७७

वर्ष ८, अंक ३, पूर्णांक ८७

सूची

श्रीअरविंदवाणी : एशिया की भूमिका	१
श्रीमातृवाणी :	
रंग-भेदके बारेमें	६
भारतकी कला	८
योगी और काव्य	९
अन्य वचन	१०
माताजीके चरणोंमें	१६
आपके प्रश्न : प्रार्थना	२४
काम और छुट्टी	२६
अंध-विश्वास नहीं	२८
सोसायटी समाचार	३२

“अक्तूबरसे यह व्यवस्था की जा रही है कि अग्निशिखा पाठकोंके पास महीनेके शुरूमें ही पहुंच जाया करे। यहांसे अंक जांच-पड़तालके बाद भेजे जाते हैं। फिर भी अगर अंक महीनेके पहले सप्ताहमें न मिल जाय तो हमें सूचना दें। अधिक देर हो तो शायद कुछ न किया जा सके। —संपादक

वार्षिक चंदा ६.००

आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

श्रीअरविदवाणी :

एशियाकी भूमिका

(भारतकी स्वाधीनताके बाद इंग्लैंडका अचानक ह्रास शुरू हो गया। आज उसके सिरपर जो समस्याएं मंडरा रही हैं उनकी कुछ समय पहलेतक कल्पना भी न की जा सकती थी। इसी तरह पिछले कुछ समयसे भारतने जिस तरह उठना शुरू किया है वह भी चमत्कारसे कम नहीं है। इस लेखमें श्रीअरविद १९०८ में इस स्थितिका और आगामी कलका कितना सुन्दर चित्रण कर रहे हैं !
— संपादक)

भारतीय प्रतिभा शुद्ध क्रियाके लिये नहीं है, परंतु क्रियामें चरितार्थ होनेवाले विचार और अभीप्साके लिये है। शरीर आंतरिक आदेशका पालन करे उससे पहले अंतर भली-भांति सोच-विचार कर लेता है। भारतीय आंतरिक जीवन-प्रधान है। उसका बाह्य जीवन उसकी अंतरात्माको प्रकट करता है। उसके विचार और उसकी क्रियाओंका यह घनिष्ठ संबंध ही उसकी सतत प्राण-शक्तिका रहस्य है। अन्य देशोंकी तरह भारतका बाह्य जीवन भी बुद्धि और ह्रासके अधीन है, उसमें भी बड़प्पन और पतनका ज्वार-भाटा आता है, परंतु जहां औरोंके लिये अवधि और सीमा है वहां इसके लिये कोई सीमा नहीं है। जब कभी यमराज अपना कर लेनेके लिये आते हैं, हिंदू जाति अमरताके स्रोतमें डुबकी लगा लेती है, आत्माके झरनेमें गोता लगाती है और फिरसे नयी अवधि और नया जीवन लेकर निकल आती है। केवल भारतने ही राष्ट्रीय अमरता देनेवाले पीयूषकी खोज की है। यह अमरताका रहस्य भारतको

हजारों वर्ष पहले मिला था । वह इस थातीको संजोये, संभाले बैठा था ताकि जब संसार इसके योग्य हो जाये तो उसे भी भाग दे सके । अब उसका समय आ गया है । बड़े-बड़े देश अब अधोगति और मृत्युके कगारपर जा पहुंचे हैं । यूरोपवासियोंने भौतिक जीवनको उसकी चरम सीमातक पहुंचा दिया है, भौतिक जीवनके विज्ञानको पूर्ण बना दिया गया है । लेकिन वे ऐसी बीमारियोंमें फसे हैं जिन्हें उनका विज्ञान ठीक नहीं कर सकता । इंगलैण्डने अपनी व्यावहारिक बुद्धिसे, फ्रांसने अपने निर्मल, तर्क-संगत मस्तिष्कसे, जर्मनीने अपनी मीमांसायुक्त, चिंतनशील प्रतिभासे, रूसने अपनी भावनामयी शक्तिसे, अमरीकाने अपनी व्यापार-शक्तिसे मानव विकासके लिये जितना हो सकता था किया, लेकिन अब वह सब अपनी सीमातक पहुंच रहे हैं । उनमें किसी चीजकी कमी है जिसे यूरोप पूरा नहीं कर सकता । ठीक ऐसे ही समय एशिया जागा है क्योंकि संसारको उसकी जरूरत है । एशिया संसारके मन-की शांतिका अभिभावक है, यूरोपकी पैदा की हुई बीमारियोंका चिकित्सक है । उसे यह आदेश है कि समय-समयपर आत्म-चिंतन, आत्म-निर्भरता, आत्म-लीनतासे बाहर निकलकर कुछ समयके लिये सारे संसारपर छा जाय ताकि सभी राष्ट्र आकर उसके पास इकट्ठे हों — उस चीजके लिये जो केवल वही दे सकता है । जब यूरोप की बेचैन आत्माने, भौतिक जीवनमें विज्ञानकी खोजमें एक नयी तरंग लगा दी, जब उसने राजनीतिको नियंत्रित कर लिया, समाजको नया आधार दिया, कानूनका ढांचा बदला, विज्ञानकी फिरसे खोज की तो आया एशिया — शांत, मननशील और सुसंयत । उसने यूरोप की खोजोंको अपने हाथमें ले लिया, उन अतियोंको, उसके मति-भ्रशको अपने अंतर्भासके द्वारा, आध्यात्मिक प्रकाशके द्वारा ठीक करना उसका काम है । संसारमें इस ज्योतिको वही ला सकता है । जब यूनान और रोमवासियोंने अपने-आपको खतम कर दिया तो उनके छोड़े हुए कामको पूरा करनेके लिये अपने मरुस्थलसे निकल

अक्तूबर १९७७

कर अरब जा पहुंचे। उन्होंने पुराने जगत्की सम्यताको नया जीवन दिया और ज्ञानकी खोजको एशियाई भावनाओंकी गहराइयां प्रदान की। सदा-सर्वदा आरंभ एशियाने किया है और पूरा किया है यूरोपने। यूरोपकी शक्ति विस्तारमें, व्योरेमें है, एशियाकी संश्लेषण और समन्वयमें। जब यूरोप जीवन या विचारके व्योरेको पूरा कर लेता है तो वह उन्हें सामंजस्य देकर स्वरसंगति नहीं बिठा सकता और वह बौद्धिक अपघर्षों, व्यावहारिक उच्छृंखलताओंमें जा गिरता है जो जीवनके तथ्योंका, प्रकृतिकी मानव सीमाओंका और सत्ताके परम सत्त्योंका प्रत्याख्यान करता है। अतः यह एशियाका ही धर्म है कि जब यूरोप ठिठक जाय, व्यर्थ ऊहापोहके संघर्षोंमें, निष्प्रयोजन परीक्षणों और अपनी भूलोंके परिणामसे बच निकलनेके लिये असहाय प्रयासोंमें थककर चूर हो जाय, तो मानव विकासको अपने हाथोंमें ले ले। संसारके इतिहासमें ऐसा समय आ गया है।

प्राचीन कालमें भारत संसारसे अलग-थलग, विचारों और शांतिके लिये, मानों ऋषि-मुनियोंकी कुटियाके समान था। अपनी विशेष भौगोलिक स्थितिके कारण वह बाकी मानव जातिसे कटा हुआ-सा था। वह एक शांत आश्रमकी तरह था जहां अपनी समस्यापर विचार किया जाता था और जीवनके रहस्य खोले जाते थे। उसके चित्तके कण सारे एशियापर कौंध जाते थे और अलग-अलग सम्यताओंका निर्माण करते थे। उसकी संतान अन्य प्रजाओंको प्रकाश देती थी, उसकी अनंत बुद्धिमत्ताके छींटोंसे दर्शन-शास्त्र उठ बड़े होते थे। जब बाघाएं टूट गयीं और हिमालयके दर्राँसे औरों-ने प्रवेश करना शुरू किया तो भारतसे शांति खिसक गयी। भारत-को संघर्षकी सदियां बितानी पड़ीं, अतः क्षोभका काल आया जिसमें उसके बिखरे विचारोंसे उत्पन्न सम्यताएं बड़े आग्रहपूर्ण रूपमें वापिस आयीं और उसपर अपनी दृष्टि, अपने विचार लादनेकी प्रेरणा करने लगीं। उसके लिये वे अपने ही अतीतके बौद्धिक

परीक्षणोंकी स्मृतियां थीं जिन्हें उठाकर एक ओर रख दिया गया था, इतना ही नहीं, भुला दिया गया था। उसने यूनानियोंके साथ यही किया, सीथियनोंके साथ, मुसलमानोंके साथ ऐसा ही किया। वह अपने लौटते हुए सभी बच्चोंके साथ ऐसा ही करेगा, चाहे वह ईसाई धर्म हो या यूरोपीय विज्ञान और जड़वाद। आज उसे जितनी सामग्रीको आत्मसात् करना है वह इतिहासमें अद्वितीय और अनुपम है, परंतु उसके लिये यह बच्चोंका खेल है। उसकी बुद्धि हर चीजको अपनी भुजाओंमें ले सकती है, उसका अंतर्भास हर एककी गहराईको नाप सकता है, उसकी मौलिकतापर कभी आंच नहीं आ सकती और वह दुनियाके बड़े-से-बड़े काम करनेके लिये उपयुक्त है। अब निष्क्रियताका वह जमाना गया जब भारत दूसरोंकी बात सुना करता था। अब वह बाहरकी चीजें लेकर उनकी नकल करने या उन्हींमें कुछ सुधार कर लेनेसे सन्तुष्ट न होगा। जापानकी प्रतिमा नकल करने और सुधार करनेमें है, भारतकी प्रतिमा मौलिक सूत्रपात करनेमें है। वह बाहरवालोंके योगदानको अपनी अनुपम सृजनशक्तिके लिये कच्चे मालके रूपमें स्वीकार कर सकता है। इंग्लैंड का काम था इस अनगढ़ कच्चे मालको हिंदुस्तान तक पहुंचाना, लेकिन उसने भौतिक सफलताके गर्वमें चूर होकर गुरुकी भूमिका अपना ली। उसने अंशतः यह माना कि भारतवासी अबोध शिशु थे जिन्हें शिक्षा देना उसका काम था, एक और दृष्टिसे उसने यह समझा कि भारतवासी उसके गुलाम थे जिन्हें स्वामीकी सेवाके योग्य बनाना उसका कर्तव्य था। अब यह मजाक खतम हो चुका है। हिंदुस्तानमें इंग्लैंडका समय समाप्त हो चुका है। भगवान्की इच्छा थी कि कुछ समयके लिये इंग्लैंड भारतवर्षपर राज करे। सारी दुनिया यह देखकर चकित रह गयी कि अंगरेजोंने कितनी आसानीसे सारे देशको हथिया लिया। लोगोंने सोचा, यह अंगरेजोंकी अप्रतिम प्रतिभाके कारण, उसके असामान्य गुणोंके कारण संभव हो सका है। इंग्लैंडने इस मान्यताको खूब बढ़ावा दिया

रया गया
तानियोंके
ही किया।
चाहे वह
ज उसे
तीय और
की बुद्धि
भीस हर
भी आंच
के लिये
रत दूसरों-
र उनकी
न होगा।
भारतकी
योगदानको
कार कर
हिंदुस्तान-
र होकर
भारतवासी
र दृष्टिको
स्वामीकी
क खतम
चुका है।
वर्षपर राज
अंगरेजोंने
सोचा, यह
के कारण
झावा दिया

और इससे लाभ उठाया। सच्ची बात तो यह है कि इंग्लैंडने भारतवर्षको सचमुच तो जीता ही नहीं। उसे क्यों और कैसे का पता लगे उससे पहले भारत उसके हाथोंमें सौंप दिया गया। सामान्यतः जिन लोगोंने इंग्लैंडके लिये काम किया, कुछ अपवादोंको छोड़कर, वे बहुत छोटे आदमी थे और भागवत कृपाके बिना यूरोपमें वहीँ और, इतिहासमें अपने लिये कोई स्थान न बना पाते। भारत-को हरानेका सेहरा न तो जीतनेवालोंकी विशेष प्रतिभा या क्षमताके सिर बांधा जा सकता है, न परास्त जातिकी दुर्बलताको ही इसके लिये जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह इतिहासका एक ऐसा चमत्कार है जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उदाहरण था जिसमें किन्हीं विशेष गुणोंके बिना ही महान् उद्देश्य सौंपा गया था और एक सौभाग्य-विशेष उसकी निगरानी कर रहा था कि वह अपने उद्देश्यको पूरा कर सके। यह उद्देश्य पूरा होते ही भगवान्‌का वह देवदूत जो इंग्लैंडकी रक्षा करनेके लिये उसके पास खड़ा है, जो हाथके इशारेसे आनेवाली सभी कठिनाइयों और विपदाओंको दूर कर देता है, वह उसकी गल न बनेगा। इंग्लैंड यहां तभीतक रह सकता है जबतक भारतको उसकी जरूरत है, जरूरत पूरी होते ही उसे हट जाना होगा क्योंकि अंग्रेजी राज्य न तो अपने भुजबलसे आया है, न अपने बलबूतेपर खड़ा है जो वह ठहर सके। भारतका पुनरुद्धार शुरू हो चुका है। अगर इंग्लैंड सहायता करना चाहे तो उसकी सहायता लेकर, और न करना चाहे तो उसके बिना, और अगर वह विरोध करे तो विरोधके होते हुए, भारत अपने लक्ष्यको चरितार्थ करेगा।

‘बन्दे मातरम्’, ९ अप्रैल १९०८

मातृवाणी :

रंग-भेदके बारेमें

सौंदर्य-बोधकी दृष्टिसे मैं कह सकती हूं : गेहुंआ रंग गोरे रंगसे ज्यादा अच्छा है, लेकिन यह सोचना कि कोई रंगके कारण ही अच्छा या बुरा है एकदम बाहियात और मूर्खतापूर्ण बात है। अफ्रीकाका नीग्रो सोचता है कि उसका रंग सबसे सुन्दर है। जापानी सोचते हैं कि उनके रंगकी प्रजा ही अन्य रंगोंसे श्रेष्ठ है। रंग-भेद बहुत निकृष्ट चीज है। चेतनाकी बहुत ही नीची अवस्थाकी निशानी है — एक ऐसी चेतनाकी जो अभी-अभी निश्चेतनासे निकल रही है। वह एक विचार नहीं है, एक भावना नहीं है, वह कुछ ऐसी चीज है जो इनसे भी नीचे है। जब तुम रंग-भेदकी दृष्टिसे विचार करते हो तो तुम्हारा चैत्य पुरुष तुम्हारी मूर्खतापर हंसता है, वह जानता है कि उसने गोरे, गेहुंए, पीले, लाल, काले, हर तरहके शरीरोंमें वास किया है। जब तुम्हारे अंदर इस तरहकी भावना उठे तो इसे अपनी चेतनाके सामने लाओ और वह गायब हो जायगी।

★

जैसे व्यक्तिमें चैत्य पुरुष होता है जो उसकी सच्ची आत्मा है और कम या अधिक खुले रूपमें उसकी नियतिपर शासन करती है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्रका भी अपना चैत्य पुरुष होता है जो उसकी सच्ची आत्मा है और परदेके पीछेसे उसकी नियतिका निर्वाण करता है : वह है राष्ट्रकी आत्मा, राष्ट्रीय प्रतिभा, जनताका उत्साह, राष्ट्रीय अभीप्साका केंद्र, राष्ट्रके जीवनमें जो कुछ सुन्दर, उदात्त, महान् और उदार है उसका स्रोत। सच्चे देशभक्त उसकी उपस्थितिको ठोस वास्तविकताके रूपमें अनुभव करते हैं। भारतमें

इसीको प्रायः दिव्य सत्ता बना दिया गया है और जिनको सचमुच अपने देशसे प्रेम है वे उसे "भारत माता" कहते हैं और अपने देश-के हितके लिये उसीसे प्रति दिन प्रार्थना करते हैं। वही देशके सच्चे आदर्शका, जगत्में उसके सच्चे कर्तव्यका प्रतीक और मूर्त रूप है।

★

भारत, आधुनिक मानव जातिकी सभी कठिनाइयोंकी प्रतीकात्मक मूर्ति बन गया है।

भारत उसके पुनरुत्थानका देश होगा — उच्चतर और सत्यतर जीवनके पुनरुत्थानका। भारत जगत्में अपना असली स्थान तभी लेगा जब वह पूर्ण रूपसे भागवत जीवनका दूत बन जायगा।

२४-४-७२

★

आओ, हम सब मिलकर भारतकी महानताके लिये काम करें।

१४-९-१९६९

★

भौतिक द्रव्य रूपांतरित हो जायगा, वह एक मजबूत आधार होगा। जीवन दिव्य बना दिया जायगा। भारत राह दिखाये।



भारतकी कला

अगर तुम चाहो कि कला सबसे सच्ची और ऊंची कला बने, तो उसे इस भौतिक जगत्से लाये गये दिव्य जगत्की अभिव्यक्ति होना होगा। सभी सच्चे कलाकारोंमें इस प्रकारकी अनुभूति होती है, यह भाव होता है कि वे एक उच्चतर जगत् और इस भौतिक जीवनके बीच माध्यम हैं...।

मध्ययुगमें कलाका यही माना हुआ कार्य था। मध्ययुगीन यूरोपके 'आदिम' कलाकारों तथा गिरजाघरोंके निर्माताओंकी कलाके बारेमें कोई और धारणा न थी। भारतमें इसके सारे स्थापत्यका, उसकी शिल्पकलाका, उसकी चित्रकलाका उद्गम यही रहा है और वे इसी आदर्शसे प्रेरित हुए हैं। मीराबाईके भजन और त्यागरायका संगीत, भारतके भक्तों, संतों और ऋषियोंद्वारा रचित काव्य-मय साहित्य जगत्के सबसे महान् रत्नोंमेंसे हैं।

२८-७-१९२९

★

सच्ची कला एक इकाई और समष्टि है। वह एक है और जीवनका अभिन्न अंश है। इस घनिष्ठ समष्टिका आभास हमें पुरातन यूनान और पुरातन मिस्रमें मिलता है। क्योंकि वहां चित्रों, मूर्तियों और कलाके सभी विषयोंको इमारतकी वास्तुशिल्पीय योजनाके अंशके रूपमें बनाया और सुव्यवस्थित किया जाता था। हर व्योरा समस्तका अंग होता था। जापानमें भी ऐसा ही है, या कम-से-कम अभी उपयोगी और व्यावहारिक आधुनिकताकी चढ़ाईसे पहले तक ऐसा था। एक जापानी घर अद्भुत कलात्मक इकाई होता है। हमेशा ठीक चीज ठीक स्थानपर होगी, कोई चीज गलत जगह न होगी, कोई चीज न बहुत ज्यादा होगी, न ही कम। हर एक

बीज ठीक वैसी ही होगी जैसी कि होनी चाहिये, और स्वयं घर, इंद-गिर्दकी प्रकृतिके साथ अद्भुत रूपमें मेल खाएगा। भारतमें भी चित्रकला, शिल्पकला और स्थापत्य एक सर्वांगीण सौंदर्य थे, भगवान्‌के प्रति भक्तिकी एकमेव गति थे।

२८-७-१९२९

योगी और काव्य

लेकिन अगर व्यक्ति योग करे तो क्या वह शेक्सपियर और शेली-की ऊंचाइयोंतक उठ सकेगा ? ऐसा कोई उदाहरण नहीं रहा है।

क्यों नहीं ? महाभारत और रामायण अवश्य शेक्सपियर या किसी दूसरे कविकी रचनासे निकृष्ट नहीं हैं, और कहा यह जाता है कि ये उन मनुष्योंकी रचनाएं थीं जो ऋषि थे और जिन्होंने योग-तपस्या की थी। गीता, जो उपनिषदोंकी तरह सबसे महान् साहित्यिक और आध्यात्मिक रचनाओंमेंसे है, किसी ऐसे व्यक्तिद्वारा नहीं लिखी गयी थी जिसे योगकी कोई अनुभूति प्राप्त न थी...

भारतमें सबसे श्रेष्ठ चित्र और स्थापत्य तथा शिल्पकलाका अधिकतर भाग उन बौद्ध भिक्षुओंद्वारा बनाया गया था जो आध्यात्मिक ध्यान और अभ्यासमें जीवन बिताते थे। वे परम कलात्मक काम करते थे, लेकिन उन्होंने अपना नाम छोड़ जानेकी परवाह न की।

२८-७-१९२९

अन्य वचन

यहां (भारतमें) ... कलाकी एक परंपरा है जो चली आ रही है। सारा देश ही उन चीजोंसे भरा है जो देशके कलात्मक इतिहासके अद्भुत क्षणोंमें बनायी गयी थीं। हम उनके बीच रहते हैं। बाकी जगत्में जो कुछ घट गया है, विशेष रूपसे यूरोपमें, उसके परिणामोंको हमने बहुत ही कम अनुभव किया है। भारतके केवल वे प्रदेश सौंदर्य-बोध खो बैठे हैं जहां अंग्रेजोंका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है। बंबईमें कुछ कला-शैलियां हैं जो भयंकर हैं। और फिर, वह कलकत्ता-शैली है जिसमें भारतीय कलाको पुनः जागृत करनेकी कोशिश की गयी थी, लेकिन वह बहुत छोटे पैमानेपर थी। कलाकी दृष्टिसे जो चीजें सबसे ज्यादा तुम्हारी पहुंचमें होती हैं वे हैं पुरानी रचनाएं, पुराने मंदिर, पुराने चित्र। वह सब बहुत अच्छा था। और वह बनाया गया था एक श्रद्धाको अभिव्यक्त करनेके लिये। और वह कार्यके भावसे किया गया था, अव्यवस्थामें नहीं।

मैं कलाकी जिस प्रवृत्तिकी बात कर रही हूं और जिसका यूरोपीय सभ्यताके साथ संबंध है, उसे तुम भली-भांति नहीं पकड़ पाये। उसे यहां बहुत अनुभव नहीं किया गया — बहुत ही कम और वह भी गहरे रूपसे नहीं। यहां, अधिकतर रचनाओंपर (यह बहुत अच्छा उदाहरण है), मेरा ख्याल है अधिकतर रचनाओंपर, यहांतक कि लगभग सभी सुंदरतम रचनाओंपर कलाकारोंके नाम नहीं हैं। गुहाओंके उन सभी चित्रोंपर, मंदिरोंकी उन मूर्तियोंपर कलाकारोंके नाम नहीं हैं। हमें यह बिल्कुल नहीं मालूम कि किसने बनाया है। और यह सब आजकलकी तरह नाम कमानेके विचारसे नहीं किया गया था। व्यक्ति संयोगसे बहुत बड़ा शिल्पी हो जाता था, महान् चित्रकार होता था, महान् स्थापति होता था और वस इतना ही। लोग भूलने न पायें इस दृष्टिसे हर एक चीजपर अपना नाम लिखने-

का, अखबारोंमें जोर-शोरसे घोषणा करनेका सवाल ही न उठता था। उन दिनों कलाकार इसकी परवाह किये बिना कि उसका नाम अगली पीढ़ियोंको याद रहेगा या नहीं, जो करना होता था करता था। हर एक चीज किसी उच्चतर सौंदर्यको अभिव्यक्त करनेकी अभीप्साकी प्रवृत्तिसे की जाती थी और सबसे बढ़कर इस विचारसे कि जिस देवताका आवाहन किया जा रहा है उसे उचित आवास दिया जाय। मध्ययुगीन गिरजाघरोंमें भी यही बात थी और मुझे नहीं लगता कि वहां भी कलाकारोंके नाम बचे हैं। अगर हैं भी तो बिल्कुल अपवादस्वरूप और अचानक। जब कि आज एक छोटा चित्रफलक ऐसा नहीं मिलता, चाहे उसपर चित्र हो या धब्बे, जिसपर कलाकारके हस्ताक्षर तुम्हें यह न बतायेंगे कि फलाने महाशयने यह बनाया है।

२८-१०-१९५३

★

लो, एक छोटी-सी कहानी। मेरा एक मित्र भारतकी सैर करके लौटा। किसीने उससे अपनी यात्राकी घटनाएं सुनानेके लिये कहा। एक वयस्क और भोली महिला वहां मौजूद थीं। उन्होंने उससे पूछा : “क्या भारतमें आत्माएं गिनी जाती हैं ?” उसने उत्तर दिया : “हां।” “कितनी आत्माएं हैं ?” महिलाने पूछा। उसने उत्तर दिया : “बस एक।”

२०-१-१९५१

★

जानते हो, गीतामें, श्रीकृष्ण पथ-प्रदर्शक और आंतरिक प्रभु हैं,

और तुम्हें अपने-आपको पूरी तरह उनके हाथोंमें दे देना चाहिये, पूर्ण समर्पण करना चाहिये।

१५-२-५६

*

गीता अमर आत्माकी सुदृढ़ अटलताकी मांग करती है ...।
जब आत्मा अमरताके प्रति सचेतन हो तो वह शक्तिसे बनी अटलता बन जाती है।

२२-२-१९५६

*

चूंकि भगवान्ने अपने-आपको जड़-पदार्थमें दे दिया है और जड़को भागवत चेतनाके प्रति सचेतन करनेके लिये उसमें अपने-आपको बिखेर दिया है, इसलिये जड़ भगवान्के प्रति यंत्रवत् समर्पित होनेके लिये बाधित है। यह एक पारस्परिक यज्ञ है।

और गीताका महान् रहस्य यही है। जड़के हृदयमें भागवत उपस्थितिका स्वीकारण। और इसीलिये जड़को यंत्रवत्, यहांतक कि अचेतन रूपसे अपने-आपको भगवान्के प्रति समर्पित कर देना चाहिये — वह यह चाहे या न चाहे, होता यही है।

केवल जब यह समर्पण अचेतन रूपसे किया जाता है तो तुम्हें यज्ञका आनंद नहीं मिलता। जब कि यदि यह सचेतन रूपसे किया जाय तो यज्ञका आनंद मिलता है जो परमानंद है।

२९-२-१९५६

*

श्रीअरविंद मानते हैं कि भगवद्गीताका संदेश उस महान्

आध्यात्मिक आंदोलनका आधार है, जो मानव जातिको उसकी मुक्ति की ओर ले जाता रहा है और अधिकाधिक ले जायगा। यानी, मिथ्यात्व और अज्ञानसे मुक्तिकी ओर, सत्यकी ओर।

प्रकट होनेके समयसे ही भगवद्गीताका बहुत बड़ा आध्यात्मिक प्रभाव रहा है। लेकिन श्रीअरविन्दने जो नया अर्थ लगाया है उसके बाद उसका प्रभाव और भी बढ़ गया है और वह निर्णयात्मक बन गयी है।

(विचार और सूत्र)

★

आध्यात्मिक दृष्टिसे भारत जगत्में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है आध्यात्मिकताका उदाहरण स्थापित करना। जगत्को यही सिखानेके लिये श्रीअरविन्द पृथ्वीपर आये थे।

यह बात इतनी स्पष्ट है कि यहां एक भोला और अज्ञानी किसान भी अपने हृदयमें यूरोपके बुद्धिजीवियोंकी अपेक्षा भगवान्के अधिक निकट है...

८-२-१९७२

★

नेहरूने अपना शरीर त्याग दिया है लेकिन उनकी आत्मा भारतकी आत्माके साथ एक है जो अनंतकालतक जीती है।

२७-५-६४

★

जो लोग मानवजातिकी प्रगति और भारतकी ज्योतिर्मय नियतिके

लिये सहयोग देना चाहते हैं उन्हें प्रदीप्त काम और सूक्ष्मदर्शी अभीप्सामें एक होना चाहिये ।

१५-८-१९७१

*

वर्तमान अंधेरेके बावजूद भारतका भविष्य ज्योतिर्मय है ।

*

क्या आध्यात्मिक रूपसे साधारण भारतवासी अन्य देशोंके, उदाहरणके लिये, यूरोपके साधारण मनुष्यसे ज्यादा विकसित है ?

एक मूलभूत फर्क है, लेकिन प्रायः सामान्य रूपसे । अगर उसे यूरोपीय भौतिकवादका चप नहीं लगा हो तो जब कोई उससे आध्यात्मिक बातें करता है तो उसमें कोई चीज खुली हुई पाता है, वह बात समझता है । पश्चिमके देशोंमें अगर तुम साधारण मनुष्यके संपर्कमें आओ और उससे आध्यात्मिक बातें करो तो वह बिल्कुल बंद रहता है और इसपर तुरा यह कि अगर तुम उससे चेतनाके उच्चतर स्तरोंके साथ संबंधकी संभावनाकी बात करो तो वह तुम्हें ऐसे देखेगा मानों तुम पागल हो ! अगर कोई तपस्वी जीवन बितानेके लिये साधारण जीवनका त्याग करे तो वे समझ बैठते हैं कि वह होश-हवास खो बैठा है ।

जिन्होंने धार्मिक परंपराओंको बनाये रखा है उनमें कुछ थोड़ेसे हैं जो समझते हैं, लेकिन समझते हैं केवल धार्मिक रूप । यानी, अगर कोई मठमें प्रवेश करे तो वे कम या अधिक रूपमें उसे समझ लेते हैं, लेकिन जहांतक साधारण मनुष्यका सवाल है (मैं संस्कृत लोगोंकी बात नहीं कर रही हूँ), अगर कोई हर प्रकारके धर्ममें

१९७७

मुक्त आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहे, उच्चतर सत्यकी व्यक्तिगत खोजमें निकलना चाहे तो बेशक वह पागलखानेके लायक है ! इस विषयकी बात न करना ही ज्यादा अच्छा है। ऐसे लोग हैं जिन्होंने शोड़ा-बहुत पढ़ लिया है, जो शिक्षित हैं, जो तुम्हें कुछ सनकी तो मानते हैं, लेकिन फिर भी वे उसका अर्थ समझ पाते हैं। लेकिन साधारण मनुष्य — कतई नहीं। बात तो ठीक है कि मैं पचास साल पहलेकी बात कर रही हूँ। अब दूसरे महायुद्धके बाद, मुझे नहीं मालूम, मैं कह नहीं सकती कि यह स्थिति बदलने लगी है या नहीं। लेकिन इतना स्पष्ट है कि अब यूरोपीय शिक्षित वर्ग किसी उच्चतर चीजकी खोजमें है, क्योंकि उनका जीवन इतना दुःखी हो रहा है कि अब उन्हें किसी दूसरी चीजके सहारेकी जरूरत है। और शायद एक दृष्टिसे उनका प्रयास छुतहा है और हम जितना सोचते हैं उससे ज्यादा लोग खोजमें लगे हैं — यह संभव है। लेकिन पचास साल पहले ऐसा नहीं था। जब कि यहां, साधारण लोगोंमें, "निम्न" श्रेणीके लोगोंमें, शायद विवेक न हो, शायद वे ढोंगी और सच्चे मनुष्यमें भेद न कर पायें, लेकिन यह जानी-मानी बात है कि अगर कोई गेरुआ वस्त्र पहनकर हाथमें भिक्षापात्र लिये आये तो उसे खानेके लिये कुछ-न-कुछ दिया जायगा, लात मारकर भगाया नहीं जायगा। अगर यूरोपमें किसी व्यक्तिने ऐसा किया — स्वभावतः गेरुए वस्त्रका सवाल ही नहीं उठता, लेकिन अगर वह गंदे कपड़े पहनकर आये — तो उसे तुरंत निकट पुलिस चौकीके हवाले कर दिया जायगा और दारिद्र्यके लिये पकड़ा जायगा। यह स्पष्ट है कि तथाकथित सम्य देशोंमें अगर तुम्हारी जेबमें न्यूनतम राशिमें पैसा न हो तो तुम आवारा हो, और आवाराको सड़कपर चलनेका कोई अधिकार नहीं, आवारागर्दीके लिये उसे जेलमें डाल दिया जाता है। यही फर्क है।

१२-४-१९५१

माताजीके चरणोंमें*

भूमिका

सारे भारतमें पन्द्रह अगस्तका दिन बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता है। यह भारतकी स्वाधीनताका पर्व है। श्रीअरविन्दके शिष्यों और प्रशंसकोंके लिये इसका महत्त्व और भी अधिक है क्योंकि श्रीअरविन्दका प्रादुर्भाव १८७२ में इसी दिन हुआ था। उस दिन श्रीकृष्ण जन्माष्टमी भी मनायी जा रही थी।

और वर्षोंकी भांति १९५४ में भी श्रीअरविदाश्रममें यह दिन विशेष शान्ति, उत्साह और भव्यताके साथ मनाया जा रहा था। सारा वातावरण भक्ति और आनन्दसे भरा था। ऐसा लगता था कि इस वर्ष हवामें कोई रहस्यमय चीज छिपी है। क्या? यह हर एकके लिये प्रश्न चिह्न था। एक आशा लगी थी, किसी नयी बातकी प्रतीक्षा थी। सब बड़ी शान्त आतुरताके साथ शामके व्यासकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

झुटपुटा होते ही खेलका मैदान मनुष्योंका सागर बन गया। कोने-कोनेमें, आसपास की इमारतोंके कंगूरे-कंगूरेपर सिर-ही-सिर दिखायी दे रहे थे। ऐसा लगता था कि बालूका एक कण भी जमीनतक न पहुंच पायेगा, बीचके सिर ही उसे थाम लेंगे। इधर-उधर, चारों ओर ऊंचे-ऊंचे लाउडस्पीकर तैनात थे। ऐसा लगता था कि उनके अन्दर भी जान आ गयी है। वे भी अपने महत्त्वको पहचान गये हैं और उसके अनुकूल बनना चाहते हैं।

ठीक निश्चित समयपर पासके एक कमरेका दरवाजा खुला और

*एस. चांद ऐण्ड कंपनीके यहां से शीघ्र प्रकाशित होनेवाली इसी नामकी पुस्तकसे।

एक मानव आकृति बाहर आयी, यह मानव देह थी या शुभ्र ज्योत्स्नाने मानव आकार ले लिया था? चारों ओरके वातावरणमें, ठोस नीरवताको चीरती हुई एक मधुर गंभीर शब्द-लहरी गूंज उठी :

“मैं इस दिनके साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषाकी अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ — वह है भारतीय नागरिक बननेकी अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारतमें आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अन्तःकरणका देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों ही भारत स्वतंत्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूंगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहां, पांडिचेरीके आश्रमके प्रति अपने भारी उत्तरदायित्वके कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषयमें यह घोषणा कर सकती हूँ।

“लेकिन, श्रीअरविन्दके आदर्शके अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्वमें है, न कि विभाजनमें। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिये दूसरीको छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिये मैं आशा करती हूँ कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनानेकी छूट रहेगी, अर्थात्, भारतीय हो जानेपर भी मैं फ्रेंच बनी रहूंगी।

“जन्म और प्रारंभिक शिक्षासे मैं फ्रेंच हूँ। अपनी इच्छा और रुचिसे मैं भारतीय हूँ। मेरी चेतनामें इन दोनों बातोंमें कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत वे एक-दूसरेसे भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरेकी पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि मैं दोनों देशोंकी समान रूपसे सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि मेरे जीवनका एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्दकी महान् शिक्षाओंको मूर्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षाओंमें यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधताके द्वारा इस भूमिपर भागवत एकत्वको अभिव्यक्त करनेके लिये उनका अस्तित्व है।”

शब्दप्रवाह अचानक बन्द हो गया लेकिन नीरव वातावरणके

अन्दर जीवित स्पन्दन बहुत देरतक अनुभव होते रहे।

जब सारे संसारमें राष्ट्रीयताका बोलबाला था, युद्ध राष्ट्रवादका सखा बनकर पृथ्वीको टुकड़ोंमें काट रहा था, महायुद्ध तो समाप्त हो चुका था परन्तु उसकी जूठन चारों ओर फैली हुई थी, विभिन्न देशोंके ही नहीं, एक ही देशके विभिन्न प्रदेशोंके लोग एक दूसरेके लिये अजनबी और पराये बने हुए थे, ऐसे समय किसने, कौन था जिसने इस सामंजस्यपूर्ण विभिन्नताका स्वप्न लिया और इस तरह खुलकर घोषणा की? महायुद्धके दिनोंमें, सभीके हितोंके भार तले चर्चिलने इंग्लैंड और फ्रांसको एक करना चाहा था पर सफलता न मिली। आज भारतके एक छोटे-से कोनेमें-से सारी मानवताको यह सन्देश दिया जा रहा था जो पूर्व और पश्चिमको, वृद्ध आध्यात्मिक गुरु भारत और व्यवहारकुशल युवा फ्रांसको एक-दूसरेके नजदीक लाकर सारे विश्वमें एक नयी रचनात्मक क्रान्तिके बीज बोयेगा। क्या मानव जाति इतना बड़ा कदम उठानेके लिये तैयार थी?

यह साहसपूर्ण, भविष्यमें प्रवेश करती हुई वाणी उन्हींकी थी जिन्हें श्रीअरविन्दने मदर या माताजी कहा है। श्रीअरविन्दके सभी अनुयायी इन्हें दिव्य मांके रूपमें जानते और मानते हैं। इन्हींके बारेमें श्रीअरविन्दने कहा था : मां अतिमानसको धरतीपर लानेके लिये ही यहां आती हैं और उसका अवतरण ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्तिको संभव बनाता है।

यह सब होते हुए भी माताजी विनय और नम्रताका मूर्त रूप थीं। उनके अस्सीवें जन्मदिनपर संस्मरण सुनानेके लिये बहुत आग्रह किया गया तो उन्होंने आकाशवाणीपर केवल इतना कहना स्वीकार किया :

“संस्मरण बहुत संक्षिप्त होंगे।

“मैं भारत आयी श्रीअरविन्दसे मिलनेके लिये और श्रीअरविन्दके साथ रहनेके लिये ही मैं भारतमें रह गयी। जब उन्होंने अपना

शरीर त्यागा तो मैं उनके कामको आगे बढ़ानेके लिये यहां बनी रही। उनका काम है सत्यकी सेवा करके, मानव जातिको प्रकाश देते हुए धरतीपर दिव्य प्रेमके राज्यको जल्दी लाना।”

किसी और अवसरपर लोग माताजीके जीवनके बारेमें कुछ जाननेके लिये बहुत उत्सुक थे तो उन्होंने कहा: “मेरे बाहरी जीवनका कुछ भी महत्त्व नहीं है। यह शरीर नहीं चाहता कि इसके बारेमें कुछ लिखा या कहा जाय। यह ज्यादा पसन्द करेगा कि इसकी अवहेलना कर दी जाय।”

ऐसे ही प्रसंगमें श्रीअरविन्दने कहा था कि योगियोंका जीवन ऊपरी स्तरपर नहीं होता जिसे लोग देख सकें, और अन्दर झांकने और उसका चित्रण करनेकी क्षमता ही किसमें है जो उनके बारेमें कुछ कह सके।

फिर भी भक्त लोग जो मिल जाय उसकी प्रसादी पानेके लिये उत्सुक रहते हैं। उन्हींकी जिज्ञासाको दृष्टिमें रखते हुए हमने इस पुस्तकमें इधर-उधरसे कुछ सामग्री जुटा दी है। आशा है माताजी इस वृष्टताके लिये क्षमा करेंगी।

अध्याय १

बाल्यावस्था

माताजीने १८७८ की २१ फरवरीको पेरिसमें जन्म लिया था। वे बहुत बार कहा करती थीं: “यद्यपि मेरा जन्म और पालन-पोषण फ्रांसमें हुआ है पर मैं फ्रेंच नहीं हूं।” उनमें मिस्र, तुर्की आदि देशोंका रक्त था और उनके परिवारका मिस्रके राजघरानेके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। माताजीके जन्मसे कुछ ही पहले उनके परिवारके लोग फ्रेंच नागरिक बने थे। उन दिनोंका फ्रांस शिक्षा-शिक्षा, बौद्धिक विकास, सभ्यता-संस्कृति, सुखचि, सौन्दर्यप्राही वृत्ति

आदिकी दृष्टिसे पश्चिमका सिरमौर था। कहा जा सकता था कि जो चीज फ्रांसमें न थी वह पश्चिममें और कहीं न थी।

माताजीके पिता मारिस अल्फासा उच्चतर मध्यम वर्गके बँकर थे। उनकी मां मातिल्डा बहुत ज्यादा सुसंस्कृत, दृढ़ संकल्पशील और बहुत ज्यादा आधुनिक विचारोंकी महिला थीं। मारिस और मातिल्डा अल्फासाके दो बच्चे हुए, बड़ा लड़का था मातियो जो आगे चलकर फ्रेंच उपनिवेशोंमें राज्यपाल तथा फ्रांसके विदेश मंत्रालयमें ऊँचे पदोंपर रहा। छोटी लड़की थी जिसका नाम रखा गया मीरा जिसे हम माताजीके नामसे जानते हैं। स्वयं माताजीने कहा है कि जब कभी, जहाँ कहीं ज्योतिके प्रकट होनेकी संभावना हुई वहाँ वे उपस्थित थीं। श्रीअरविदने हमें बतलाया है कि बचपनसे ही माताजी सामान्य मानव स्तरपर नहीं थीं। वे उससे बहुत ऊँची थीं।

आइये, उनके असाधारण व्यक्तित्वकी एक झांकी लेते चलें। एक बार बच्चोंसे बातचीत करते हुए वे कहती हैं : "तुमने इसके बारेमें कभी नहीं सोचा। तुमने अपने अन्दर झांककर कभी नहीं देखा कि तुम अपने ऊपर क्या प्रभाव डालते हो ? इसके बारेमें कभी सोचा ही नहीं ? ... कभी यह समझनेकी कोशिश नहीं की कि तुम कैसे अनुभव करते हो ? ... उदाहरणके लिये तुमने कभी यह जाननेकी कोशिश नहीं की कि तुम्हारे अन्दर निर्णय किस तरह लिये जाते हैं ? वे कहाँसे आते हैं ? कौन-सी चीज है जो तुम्हें एककी जगह दूसरा निर्णय लेनेके लिये प्रेरित करती है। तुम्हारे निर्णयों और तुम्हारी क्रियाओंमें क्या सम्बन्ध है ? तुम्हें दो चीजोंके बीच चुननेकी कितनी आजादी है। तुम अपने-आपको यह या वह करने या कुछ न करने के लिये स्वतंत्र पाते हो ? तुमने इस विषयपर सोचा है ? जब मैं पाँच वर्षकी थी तभी मैं इन बातोंमें लगी रहती थी। ...

मेरे साथ ऐसा हुआ ... मैं पाँच या छः या सात वर्षकी थी। मेरे पिताको सरकस बहुत पसन्द था। उन्होंने मुझसे कहा : 'मैं

रविदारको सरकस देखने जा रहा हूँ। तुम भी मेरे साथ चलना।' मैंने मना कर दिया। मैंने कहा: 'मैं सरकस जानेकी अपेक्षा कहीं अधिक मजेदार काममें लगी हूँ।' फिर कभी मेरे छोटे मित्रोंने दावत दी जहाँ हम सब मिलकर खेलते और मजा करते लेकिन मैंने मना कर दिया। मैंने कहा: 'मुझे यहीं बहुत अधिक मजा आता है।' और यह बात बिल्कुल सच्ची थी। इसमें दिखावा न था। मेरे लिये दुनिया भरमें इससे बढ़कर मजेदार चीज कोई और न थी।"

(श्रीमातृवाणी, खंड ५, १९५३)

साधारणतः हम देखते हैं कि मां बाप अपने बच्चोंको बहुत लाड़-प्यारसे बिगाड़ देते हैं। मीराकी मां ऐसी न थीं। उन्होंने अपने बच्चोंको पूरा-पूरा प्रेम दिया पर साथ ही अच्छी आदतोंपर, नियंत्रण पर भी नजर रखी। एक बार मांने कुछ पकाया था लेकिन बच्चोंको उसमें मजा न आया। उन्होंने कह दिया: "हम इसे नहीं खा सकते।" मांने समझाया: "खाना स्वादके लिये नहीं खाया जाता। तुम्हें वही खाना चाहिये जो तुम्हारे शरीरको पुष्ट करे।" बात बच्चोंकी समझमें न आयी और उन्होंने खानेसे इनकार किया। आखिर नियंत्रणप्रिय मांने अपना फैसला सुना दिया: "खाना है तो यही खाओ, कुछ और न मिलेगा।" बच्चोंने थोड़ी देर आना-कानी, की फिर भूखसे व्याकुल होकर खाने बैठ गये। इतनी कच्ची उम्रमें ही उन्हें सिखाया गया कि रसनाको बहुत महत्त्व न दें।

बालिका मीराने अक्षर-ज्ञान पानेसे पहले ध्यान करना सीख लिया था। चार वर्षकी कच्ची अवस्थामें उसे मालूम था कि वह किसी विशेष उद्देश्यसे धरतीपर आयी थी। उसे कुछ ऐसा काम करना था जिसकी तुलना दुनियाके किसी कामसे नहीं हो सकती। वह चुपचाप बैठ जाती और देखती कि उसके ऊपर ज्योतिकी बाढ़ आ रही है। बड़े-से-बड़े योगियोंके लिये भी यह मामूली बात नहीं है।

छोटी-सी मीरा हमेशा गंभीर रहा करती थी। छिछोरापन उसे छूतक न गया था। वह अपनी उम्रके बच्चोंके साथ खेल-कूद या शरारतें करनेमें कभी रस न लेती थी। एक बार उसकी मांने कहा : "ऐसा लगता है कि सारी दुनियाका भार तेरे ही सिरपर है।" बेटीने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया : "हां।" बेचारी मां इस छोटे-से शब्दका अर्थ कहां जानती थी।

मीराके पिता बहुत अनुशासनप्रिय थे और छड़ीसे परहेज न करते थे और मीराका बड़ा भाई मातियो प्रायः उसका शिकार हुआ करता था। वह जब कभी देरसे लौटता तो उसकी पिटाई होती थी। मीराको यह पसंद न था। एक सांझको जब भाईको घुना जा रहा था, घीर-गंभीर मीरा वहां जा पहुंची और उसने बड़े प्रभावशाली लहजेमें कहा : "इसके बाद अगर भाईकी पिटाई हुई तो मैं यह घर छोड़कर चली जाऊंगी।" पिता छः वर्षकी राजकुमारीका हुकूम टाल न सके। उस घरमें वेंतका वह आखिरी उपयोग था।

सात वर्षकी आयुतक मीराने अक्षर पहचानना भी न सीखा था। एक दिन वह अपने भाईके साथ सड़कपर चली जा रही थी। एक साइन् बोर्डने उसका ध्यान आकर्षित किया। उसने भाईसे पूछा, "इस पर क्या लिखा है?" भाईने मजाक उड़ाते हुए कहा : "तू इतना भी नहीं पढ़ पाती!" और बस, मीराने पढ़ाई शुरू कर दी। कुछ ही समयके प्रयासके बाद वह अपनी कक्षामें पहली आने लगी। ऐसा लगा मानों बहुत-से प्रथम पदक उसीके लिये बने थे।

बादमें माताजीने बतलाया : "जब मैं लगभग बारह वर्षकी थी तो मैं पैरिसके नजदीक फांतेब्ल नामक वनमें अकेली घूमने जाया करती थी। यह एक बहुत पुराना जंगल था जिसमें दो-दो हजार वर्ष पुराने पेड़ थे। मैं किसी पेड़के नीचे चुपचाप बैठकर ध्यानमें चली जाती थी। उस समय मुझे उन पेड़ोंके साथ घनिष्ठताका अनुभव होता था और मुझे बहुत आनंद मिलता था। मेरी चेतना इन पेड़ोंके साथ सायुज्य प्राप्त करती थी। आसपासकी चिड़ियां

और गिलहरियां मेरे बहुत पास आ जाती और कभी-कभी खेलती हुई मेरे शरीरपर दौड़-भाग करती थीं। अगर आदत डाल लो तो तुम्हें भी इस तरहका अनुभव हो सकता है। वस एकांतमें किसी वृक्षके तनेसे अपनी पीठ टिकाकर बैठ जाओ और शांत रहो। तुम धीरे-धीरे पेड़के जीवन-स्पंदनों और उसकी चेतनाका अनुभव करने लगोगे। तुम्हें यह भी पता लगेगा कि पेड़ मनुष्योंके साथ दोस्ती करना चाहते हैं। उनमें भी प्रेम होता है। सहानुभूति होती है और वे खुले दिलसे हमें आसरा देते हैं। स्पष्ट है कि वे अपने ही ढंगसे अनुभव करते हैं। एक बार किसी पुराने पेड़को काट देनेकी बात हुई थी। मुझे स्पष्ट रूपसे लगा कि पेड़को इस संकटका पता लग गया और उसने मुझे इस क्रूरताको रोकनेके लिये याचना की।”

प्रकृतिके साथ घनिष्ठताने मीराको पशुओंके साथ सौहार्द प्रदान किया। एक बार माताजीने अपने वचनकी एक घटना सुनाते हुए कहा: “पैरिसमें एक वनस्पति-वाटिका है। उसमें कुछ जानवर भी हैं। वहां एक नया-नया सिंह आया। स्वभावतः उसे पिंजरेमें रखा गया था और वह बहुत क्रुद्ध था। पिंजरेमें एक दरवाजा था। जब कभी दर्शक उसे देखने आते तो सिंह दरवाजेके पीछे छिप जाता था! मैंने यह देखा और एक दिन पिंजरेके पास जाकर उसके साथ बोल्ना शुरू किया (जानवर मानव वाणीके लिये बहुत संवेदनशील होते हैं, वे सचमुच सुनते हैं) मैंने अपने सिंहसे बड़ी मधुरताके साथ कहा: ‘ओह! तुम कैसे सुन्दर हो! कैसे खेदकी बात है कि तुम छिपे हुए हो। हम लोग तुम्हें देखनेके लिये लालायित हैं।’

“वह सुनता रहा। फिर उसने मुझे तिरछी नजरोंसे देखा। फिर अपना पंजा आगे बढ़ाया और अंतमें अपनी नाक सींखचोंसे लगा दी मानों कह रहा हो: आखिर कोई तो है जो मुझे समझता है!”

(श्रीमातृवाणी; खंड ४, १९५०-५१)

आपके प्रश्न :

प्रार्थना

“आह ! क्या मुश्किल है ! चारों ओरसे कठिनाइयोंसे घिरी हूँ। भगवान्‌से कितनी प्रार्थना की, कितनी मान्यताएं मानीं, पर सब बेकार। मेरे भाईसाहब पढ़-लिख गये, एक जगह नौकरी भी कर ली, पर अपने बुरे स्वभावके कारण वहां टिक न पाये। अब घर-पर बेकार बैठे हैं। पिताजीको तो बस यही दिखायी देता है कि अब उनके निवृत्त होनेके दिन आ गये। तब आमदनी तो कम हो जायगी, पर खर्च कम न होगा। हम तीन बहनोंका भार सभीको खल रहा है। माताजीसे बहुत प्रार्थना की परंतु कोई फल न हुआ। भाईसाहब अधिकाधिक बदमिजाज होते जाते हैं, पिताजीकी खीझ बढ़ती जाती है और हम तीनोंका कचूमर निकलता जाता है। माताजी दयामयी हैं, वे हमारी प्रार्थना क्यों नहीं सुनतीं ? हमारे भाईको कहीं नौकरी दिलवाकर घरसे दूर भेज दें, पिताजीको निवृत्तिके बाद कुछ काम करनेकी आशा दिला दें और हम तीनोंका अच्छी जगह ब्याह करा दें। बस। इतनी ही तो मांग की है हमने। यह तो उनके लिये कुछ नहीं है।”

इस प्रकारकी चिट्ठियां हमें प्रायः ही मिला करती हैं। लोग यह समझते हैं कि भगवान्‌ अगर भगवान्‌ कहलाना चाहें तो उन्हें हमारी सब इच्छाएं पूरी करनी चाहिये, हर प्रार्थनापर उन्हें कान देना चाहिये और इतना ही नहीं, उसके अनुसार कार्य भी करना चाहिये। बहुत ठीक है।

जरा इस चीजके एक और रूपको देख लीजिये। खेतिहर कहता है : “हे भगवान्‌, खूब अच्छी फसल दो ताकि मेरे खलिहान भर

जायं, नहीं तो भूखा मर जाऊंगा।” उधर दूसरी ओर जिसकी दुकानमें अनाजकी बोरियां पड़ी हैं वह प्रार्थना करता है : “हे भगवान्, इस साल ऐसा सूखा भेजो कि अनाज मंडियोंमें आ ही न पाये और मेरी बोरियां दूने, चौगुने दाममें विक जायं।” अब बतलाइये, भगवान् क्या करें? किसकी प्रार्थना सुनें?

इतना ही नहीं, एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न समय भिन्न-भिन्न प्रकारकी मांग करता है। पत्नीसे लड़ाई हो जाती है तो कहता है : “हे कृपानिधान, तुमने मुझे क्यों भुला दिया? मुझे शीघ्र अपने पास बुला लो।” बस वह मरनेके लिये आतुर हो जाता है। थोड़ी ही देरमें उसे जुकाम होता है और वह कहने लगता है “हाय भगवन! बचाना इस मुसीबतसे। मैं तो जुकामके मारे मरा जा रहा हूं।”

यहां हमें यह समझ लेना चाहिये कि भगवान् हमारी हर एक प्रार्थनाको स्वीकार करनेके लिये बाधित नहीं हैं। भगवान् साधारणतः उसी प्रार्थनाको स्वीकार करते हैं जो सच्चे दिलसे, शांति-के साथ निकली हो। वे हमारे बारेमें हमसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं, वे जानते हैं कि हमारे लिये क्या अच्छा है और क्या बुरा। वे प्रार्थनाके फलस्वरूप वही देते हैं जो हमारे लिये उस परिस्थितिमें अच्छे-से-अच्छा हो।

उत्तेजना, विक्षोभ, आवेग-भरी प्रार्थना उस धुंकी तरह है जो कभी ऊंचा नहीं उठ पाता। सच्ची और सबसे अच्छी प्रार्थना तो वही होगी जिसमें मनुष्य परिणामको भगवान्के हाथोंमें छोड़ दे। उनसे स्पष्ट कहे : “मेरी यह इच्छा है, परंतु आप वही कीजिये जो मेरे लिये उचित हो।”



काम और छुट्टी

छुट्टीका नाम बड़ा प्यारा है। विद्यार्थी, मजदूर, सरकारी नौकर, सभी छुट्टी मनाते, और अधिक छुट्टियोंकी मांग किया करते हैं। छुट्टीका विरोध करनेवालेको या तो सनकी मान लिया जाता है या सिर फिरा। जरा गंभीरतासे देखा जाय तो छुट्टीकी जरूरत उस हालतमें होती है जब हम कामको एक भार मान लेते हैं, चाहे वह कितना भी आवश्यक भार क्यों न हो।

रविवारकी छुट्टीपर तो अधिकतर लोग अपना अधिकार मानते हैं। कई जगहोंपर शनिवारको भी आधी छुट्टी होती है और कहीं-कहीं शनिवार और रविवार, दोनों दिन छुट्टी रहती है। हां, यह और बात है कि कोई खाने-पीनेसे, सोनेसे छुट्टी नहीं लेता। छुट्टीका उपयोग ज्यादातर विशेष खाने-पीनेमें, सिनेमा देखनेमें या आलसमें बिताया जाता है।

पश्चिमी देशोंमें दो दिनकी छुट्टी आम बात है और वहां सोमवारका सवेरा बहुत अशुभ माना जाता है। सोमवारके सवेरेकी विषण्णता एक आम बीमारी है। बहुत-से लोग उस दिन बीमार हो जाते हैं और हिसाब लगानेवालोंका कहना है कि सोमवारको सवेरे अनुपस्थित रहनेवालोंकी वजहसे कामकी जो क्षति होती है वह हड़तालोंके कारण होनेवाली क्षतिसे बढ़कर है।

अमरीकाके मिशिगन विश्वविद्यालयने इस विषयमें कुछ खोज की है। इस विषयमें खोज करनेवाले दलने हजारों व्यक्तियोंसे दो प्रश्न पूछे : १—क्या सोमवारका सवेरा तुम्हारे लिये सप्ताहका सबसे बुरा दिन होता है ? २—क्या सोमवारको तुम्हें अपना काम बहुत अप्रिय लगता है, तुम्हें ऐसा लगने लगता है कि तुम बीमार हो गये हो या होनेवाले हो ? अधिकतर लोगोंने दोनों बातोंका उत्तर हां में दिया।

जांच करनेपर देखा गया कि बहुत-से लोगोंको, विशेषकर जाड़ों-में, सोमवारको ठंड लग जाती है, खांसी और बुखारके-से लक्षण दिखायी देते हैं। बृहस्पतिवार आते-आते यह सब लक्षण शांत हो जाते हैं, लेकिन बस तीन ही दिनके लिये। सोमवारसे फिर वही चरखा शुरू हो जाता है।

शोध दलका कहना है कि सामान्य कार्यकर्ताके लिये परिवर्तनके ये दो दिन बहुत बुरे होते हैं। अगर सप्ताहके सातों दिन काम कर सकें तो सब प्रकारके लोग ज्यादा सुखी रहेंगे। मनुष्य आदतों-का दास होता है और आदतसे बने हुए कार्यक्रमको तोड़ना उनके लिये बहुत हानिकर होता है।

सप्ताहांतमें लोग या तो आलसी बने पड़े रहते हैं या मटरगश्ती करते हैं या नाना प्रकारसे शरीरको कसरतें देते हैं; दूसरे शब्दोंमें, अपने अभ्यासगत कामसे भिन्न कुछ और ही करते हैं और उससे शरीर उसके लिये अभ्यस्त हो जाता है और जब अपने नियत कामपर वापिस आता है तो बेचैनीका अनुभव करता है।

जापानी वैज्ञानिक भी सोमवारकी विषण्णताका अध्ययन कर रहे हैं। उनका कहना है कि अगर सोमवारको तुमपर बदमिजाजीका हमला हो तो अपने दबे हुए भावोंको, अपनी उदासीको दूर करनेके लिये किसी एकांत कोनेमें जाकर खूब गालियां बको, अपने अफसर-को गुड़िया बनाकर उसे पीटो। किसी-न-किसी तरह दबे हुए भावोंको बाहर निकालो।

इस तरहका इलाज भारतीय मानसको कभी पसंद नहीं आ सकता। साधारण मानस शास्त्रकी दृष्टिसे देखें तो भी आवेगोंका तंगा नृत्य उन्हें शांत करनेका उपाय नहीं है। यह अधिकाधिक मयानक रूप ले सकता है और बहुत प्रकारके कष्टोंको जन्म दे सकता है।

सौभाग्यवश, अभीतक सोमवारकी विषण्णता भारतवर्षमें फैली नहीं है। हम हर यूरोपीय चीजकी नकल करनेके लिये उत्सुक

रहते हैं इसलिये हो सकता है कि यह महामारी भी हमारे यहां आ जाय। इसके लिये हमें सावधान रहना चाहिये।

कामसे भागनेकी आवश्यकता तभी होती है और उससे ऊब तभी आती है जब वह हमारे सिरपर भार बनकर बैठा हो। यदि उसमें कोई समर्पण-भावना हो, भगवान्‌के प्रति, देशके प्रति, किसी आवशंके प्रति समर्पण हो तो इन चीजोंसे बचा जा सकता है।

यदि काम करते समय समर्पण-भावना हो तो कामसे ऊब नहीं, आनंदकी प्राप्ति होती है। और वह काम हमारे विकासमें सहायक हो सकता है। भारतवासियोंको यह बात न भूलनी चाहिये।

छुट्टीका विचार भारतके लिये विदेशी है। यहां पहले अनध्याय तो हुआ करता था लेकिन वह दिन यज्ञ-याग वगैरामें लगता था। यूं सेमेटिक धर्मोंमें भी यही माना जाता है कि भगवान्‌ने छः दिनों या छः युगोंमें सृष्टि बनायी और सातवें दिन आराम किया। उसके अनुसरणमें यह प्रथा शुरू हुई कि लोग छः दिन अपना घर-द्वार संभालें, सांसारिक काम-काज करें और सातवां दिन भगवान्‌की पूजा-अर्चनाके लिये रहे। उस तरहकी छुट्टी विषण्णता नहीं लाया करती।

अंध-विश्वास नहीं

बचपनमें एक अंगरेज परिवारके साथ संपर्क था। उन दिनों तो अंगरेज हमारे लिये भगवान्‌से कम न थे। बल, विक्रम, सुन्दरता, बुद्धि, यानी सब अच्छी चीजोंके भण्डार थे अंगरेज। उन्होंने एक बात मानों हमें घुट्टी में पिला दी: हिन्दू धर्म अन्ध-विश्वाससे भरा है और अन्ध-विश्वाससे बढ़कर बुरी चीज कोई नहीं।

साहबकी बात माननेमें भला किसे आपत्ति हो सकती थी। साहब गोसेवाको अन्ध-विश्वास बताते न थकते थे। लेकिन मजेदार बात यह है कि उनके यहां तरह-तरहके, अलग-अलग जातियोंके न

जाने कितने कुत्ते पले थे। उनके खाने, सोने, घूमनेके अपने-अपने समय थे, हर एकका भोजन अलग, विस्तर अलग। हर कामके लिये नीकर तैनात रहते थे और स्वयं मेम साहब निगरानी करती थीं। इतना ही नहीं साहबने एक गधा भी पाल रखा था। उसे रोज सावुनसे नहलाया जाता था। यह तो मुझे नहीं मालूम कि दिनमें वह क्या खाता पीता था पर शामकी बात मैं बता सकता हूं। शामको साहबके यहां टेनिस हुआ करती थी, आसपासके कई अफसर आया करते थे और टेनिसके बाद चायका क्रम चला करता था। इधर साहब लोगोंकी चाय शुरू होती, उधर गधेजी बड़ी सज्जजके साथ हाजिर किये जाते। उनकी चायके लिये एक विशेष थाली थी। उसमें उनके आनेके बाद चाय उड़ेली जाती और साथ ही एक अलग बरतनमें कुछ बढ़िया विस्कुट रखे जाते। गधे जी विस्कुट खाकर चाय पीते और फिर साहबके इशारेपर अपना संगीत शुरू करते और साहब मंडली खुशीसे फूल उठती। यह उनका रोजका कार्यक्रम था। लेकिन यही साहब मंडली गोसेवाको गालियां देते न थकती थी। हर एककी अपनी-अपनी पसन्द है, अपना-अपना चुनाव है !

लेकिन मैं यह किस्सा क्यों छेड़ बैठा, इसका भी कुछ कारण है। कल ही की तो बात है, अपने क्षेत्रके एक अच्छे विद्वान् मेरे यहां आये हुए थे। यूं ही कुछ मानव-स्वभावकी बात चल पड़ी तो बोले, चाहे कुछ हो जाय मनुष्य कभी न बदलेगा। हजारों सालोंसे मनुष्य जैसा है वैसा ही चला आ रहा है, उसके यंत्र बदले हैं, तीर-तरीके बदले हैं परन्तु मूल आदमीमें कोई फर्क नहीं आया। इसे बदलनेकी बातें करना जानबूझकर अपने-आपको धोखा देना है। हमारे चारों ओर अवचेतनाका समुद्र ठाठें मार रहा है, मन कमी-कमी इसमेंसे उभर आता है और तब अच्छी-अच्छी बातें सोच लेता है लेकिन यह चीज ज्यादा देरतक नहीं रह पाती, फिरसे अवचेतनाकी एक धार आती है और सब कुछ हजम ! ऐसी

हालतमें स्वभावको बदलनेकी या इसी प्रकारकी अन्य बड़ी-बड़ी बातें करनेसे लाभ क्या ? उनकी बात वाजिव और ज्ञानसम्मत है, क्योंकि उनके पास अपने पक्षमें यूरोपके कई विद्वानोंके प्रमाण हैं। हमने, आपने किसीने भी अणु-परमाणु नहीं देखे, रोगोंके कीटाणु नहीं देखे पर इनके बारेमें संदेह करना भी आपको दकियानूसी, अन्धविश्वासी और इसी तरहकी कई उपाधियोंसे विभूषित कर देगा। आपसे कहा जायगा कि ये वैज्ञानिक सत्य हैं और जिस किसीको प्रयोगशालाकी सुविधाएं प्राप्त हों वह इनपर प्रयोग कर सकता है और इनके सत्यकी जांच कर सकता है।

इस बातको नजरमें रखते हुए मैंने अपने विद्वान् मित्रसे कहा, आपकी बात बिल्कुल ठीक है, हम सब अचेतनाके विशाल सागरसे प्रभावित होते रहते हैं, आपकी यह बात भी मानता हूं कि मनके अन्दर इतनी शक्ति नहीं है कि वह इस सागरको पार कर सके, लेकिन साहब जरा इस तरफ भी तो ध्यान दीजिये कि जैसे नीचे अवचेतनाका सागर है उसी तरह हमारे ऊपर भी एक सागर है जिसे हम अतिचेतना कह सकते हैं, वह हमारे मनसे बहुत ऊपर है और वह सत्य ज्ञानसे भरा है। अगर हम अपने जीवनमें इसे उतार सकें तो हमारा सारा जीवन ही सत्यमय हो जायगा।

मेरे मित्रने ऐसा मुंह बनाया मानों मैंने जबरदस्ती उनके मुंहमें एरण्डका तेल उड़ेल दिया हो। फिर बोले, मैं आपकी इन नानीकी कहानियोंको माननेके लिये बिल्कुल तैयार नहीं। कुछ प्रमाण दीजिये तो मानूं। मैंने निवेदन किया : प्रमाण तो बहुतेरे मिल सकते हैं पर आपको उन्हें पानेके लिये तैयारी करनी पड़ेगी। विज्ञानके प्रयोग कर सकनेसे पहले आपको बहुत कुछ सीखना पड़ता है, बहुत कुछ पढ़ना पड़ता है, बहुत सारे असंबद्ध दीखनेवाले काम करने पड़ते हैं। आपका विज्ञान कहता है दूधमें लोहा है, चूना है। एक वैज्ञानिकके लिये यह मामूली-सी बात है जिसके बारेमें कोई एक मिनट भी खर्च न करेगा लेकिन यही बात किसी ऐसेके आगे कीजिये

अक्तूबर १९७७

३१

जिसने विज्ञानका क ख नहीं पढ़ा वह या तो कहेगा अपने होशका इलाज करो या फिर इसे आधुनिक नानीकी कहानी मान लेगा।

अगर आप उच्चतर चेतनाके बारेमें खोज करना चाहते हैं, भले उसका खण्डन करनेके लिये ही क्यों न हो, तो पहले उसमें प्रवेश करना होगा और इसके लिये उसके नियमोंका अनुसरण करना होगा। जैसे दूधमें लोहा प्रमाणित करनेके लिये जैविक रसायनका ज्ञान होना जरूरी है उसी तरह उच्चतर चेतनामें प्रवेश करनेके लिये चेतना-सोपानका परिचय जरूरी है। आइंस्टाइनके सिद्धान्तको स्वीकार या अस्वीकार करनेके लिये उसका अध्ययन जरूरी है, किसी जानकारकी सहायता जरूरी है उसी तरह भगवान् और उनकी शक्ति-का खण्डन करनेसे पहले, किसी जानकारके पथ-प्रदर्शनमें उस रास्ते-पर चलकर, पूरी श्रद्धाके साथ सत्य जाननेका प्रयास जरूरी है।

अगर सत्यकी खोज किये बिना भगवान्को मानना अन्ध-विश्वास है तो उन्हें अस्वीकार करना भी अन्ध-विश्वास है। आप अपनी तर्क बुद्धिसे उनकी खोज नहीं कर सकते, ठीक उसी तरह जैसे सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र लेकर तारोंका या थर्मामीटर लेकर रक्तचापका अध्ययन नहीं हो सकता।

श्रीजरविदका योग आपसे अन्धविश्वासी बननेके लिये नहीं कहता। वह आपको सत्यकी खोज करनेका निमंत्रण देता है। वह आपको सत्यके लिये अभीप्सा, असत्यके त्याग और परम सत्यके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पणका मार्ग दिखाता है। इस मार्गपर चलिये और फिर सत्यका साक्षात्कार प्राप्त कीजिये। नान्यः पन्था विद्यते।

—०— * * —०—

एकमात्र भगवान्की आराधना करो।

—श्रीमां

सोसायटी समाचार

१५ अगस्तको, श्रीअरविंदके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें सुबह लोग श्रीअरविंद कक्षके दर्शन कर आये। सबको माताजी और श्रीअरविंदके फोटो बांटे गए। ठीक दस बजे समाधिके चारों ओर ध्यान हुआ और शामको आश्रमके बेंडके साथ क्रीड़ांगणमें सलामी हुई। अन्तमें फिरसे ध्यान हुआ। आश्रम और टाउन हॉलमें आश्रमवासियोंकी बनाई हुई तरह-तरहकी चीजोंकी प्रदर्शनी हुई। उस दिन 'आकाशवाणी', पांडिचेरीने दो कार्यक्रम प्रसारित किये। एक संगीतका कार्यक्रम जो टी. वी. आर. चारीने संपादित किया था और दूसरा श्री श्रीनिवास आयंगरकी वार्ता। विषय था: "अपने साथ शांतिमें रहना"।

श्रीअरविंद सोसायटीके सदस्योंकी वार्षिक सभा १२ से १४ अगस्त तक हुई। श्री प्रद्योत भट्टाचार्यने उसका उद्घाटन किया। श्रीअरविंदके शब्द याद दिलाते हुए उन्होंने कहा: "भागवत मुहूर्तमें धो डालो अपनी अन्तरात्मासे अपने-आपको धोखा देनेकी वृत्ति, ढोंगवाजी और झूठी प्रशंसा ताकि तुम सीधे अन्तःपुरुषको देख सको और उसकी पुकारको सुन सको।" फिर श्री नवजातने भाषण दिया और श्री उदारने 'सावित्री' पाठ किया।

सभामें उपस्थित सदस्योंकी समितियां बनायी गयीं और उनकी बैठकें १३ और १४ को हुई। और अध्यक्षने उनके सुझावोंको स्वीकारा। ओरोवील सद्भावना समितिकी खोजपर आधारित ओरोवीलके बारेमें एक निर्णय पारित किया।

डा. के. आर. श्रीनिवास आयंगर और श्री नीरदवरणने भाषण दिये। श्री एच. एन. मजुमदार और श्रीमती अरुन्धति राय चौधुरीने बंगलामें कविता-पाठ किया।

अक्तूबर १९७७

३३

कार्यकर्ताओंका शिविर

वार्षिक सभाके समाप्त होनेके बाद, श्रीअरविंद सोसायटीकी विभिन्न शाखाओंके क्रियाशील कार्यकर्ताओंका १६ से १९ अगस्ततक शिविर रहा। डा. महेश्वरी, श्री एम. मट्टाचार्य और श्री अश्विन महादेवियाने विचार-विमर्श बैठकोंका संचालन किया। वहाँ भाषण या पूर्वरचित प्रश्नोत्तर नहीं थे। श्रीअरविंद सोसायटीके कार्यसे संबंध रखनेवाले विषय प्रस्तुत किये गये और सबने एक-दूसरेकी अनुमति सुनकर, सत्योंपर प्रकाश डालकर वाद-विवादमें भाग लिया। इस तरह सात बैठकें हुई और हर बार विषय अलग-अलग था :

- १) श्रीअरविंद सोसायटीके लक्ष्य और उद्देश्य;
- २) सोसायटी केंद्र साधना केंद्रोंके रूपमें;
- ३) केंद्रोंमें कार्यकी दिशा;
- ४) सोसायटी केंद्र अध्ययन केंद्रके रूपमें;
- ५) केंद्रोंके व्यवस्था-संबंधी विस्तार;
- ६) सोसायटी केंद्र सांस्कृतिक केंद्रोंके रूपमें;
- ७) माताजीकी जन्म-शताब्दीका कार्यक्रम।

डा. महेश्वरीके अनुसार शताब्दी वर्षके समय चार गतिविधियोंका होना जरूरी है :

- १) स्वाध्याय, यानी आध्यात्मिक साहित्यका नियमित रूपसे अध्ययन;
 - २) माताजीके अन्तर्दर्शनके अनुसार नई शिक्षा;
 - ३) माताजीकी शिक्षाके प्रकाशमें स्वास्थ्यका सुधार;
 - ४) संस्कृत सीखना, जो भारतकी भाषा बन सकती है।
- अंतमें प्रार्थना हुई।

सोसायटीकी अमरावती शाखाने भारतके प्रत्येक सोसायटी केंद्रके

लिये माताजी और श्रीअरविंदके फ्रेम किये फोटोका खर्च उठाना स्वीकार किया।

बंगलोरमें ७ से १० जुलाईतक श्रीअरविंद सोसायटी शाखाने चार भाषणोंकी व्यवस्था की थी। विषय थे :

- १) जीवनका एक उद्देश्य है, मनका एक लक्ष्य है;
- २) योग : उसका अर्थ और लक्ष्य;
- ३) योग और जीवन : जीवनमें योग;
- ४) श्रीअरविंद : आज और आगामी कलके सन्दर्भमें।

श्री बाबूलाल सहा भागलपुर, गया, रांची इत्यादि स्थानोंके केंद्रोंमें हो आए। उन्होंने क्रिया-कलापों, व्यवस्था और विस्तरणके लिये कई सुझाव दिये।

कलकत्तेके पाठ मंदिरमें श्रीमती सुधा बोस, डा. एन. बी. चक्रवर्ती, डा. हरप्रसाद मित्र और प्रो. भट्टाचार्यने भाषण दिये।

इस तरह अनेक केंद्रोंसे यह सूचना मिली है कि श्रीअरविंदके जन्मदिनके उपलक्ष्यमें उन्होंने क्या-क्या कार्यक्रम रखे थे। व्योरे भगले अंकमें छापे जायंगे। एक नए जीवनकी खोजमें अधिकाधिक लोग हमारे केंद्रोंकी ओर आकर्षित हो रहे हैं।

घोषणाएं :

मातृमंदिर (पुस्तिका) : ओरोवीलमें मातृमंदिरके निर्माणका वर्णन इस पुस्तिकाके रूपमें तैयार किया गया है।

मातृमंदिरके अन्तःकक्षमें सफेद संगमरमर डाला जायगा। एक शिलाखण्डका मूल्य है ३०००। जो लोग दान देना चाहेंगे वे निम्नलिखित पतेपर भेज सकते हैं : श्री गुरुप्रसाद, महा सचिव, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००२।

‘शब्द’ विभिन्न केंद्रों द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओंके बारेमें सूचना इकट्ठी कर रहा है। जिनका पत्रिकाओंके प्रकाशनसे संबंध है वे ‘शब्द’, पांडिचेरी ६०५००२ के पतेपर पत्रिका सहित यह सूचना भेजनेकी कृपा करें: पत्रिकाका नाम, उसकी भाषा, प्रकाशन अग्रवि, संपादक, प्रकाशक और मुद्रकके नाम, पहला अंक प्रकाशित करनेकी तारीख, आकार, पृष्ठसंख्या, मूल्य और भारत तथा विदेशमें वार्षिक चंदा।

अहमदाबादमें ‘सद-विचार परिवार’ नामक संगठन है जो अक्तूबरमें एक ऐसा अंक छापेगा जिसमें माताजीके चुने हुए उद्धरण होंगे। पांच लाख प्रतियां छापनेकी आशा है। १००० प्रतियोंका मूल्य है १७५.०० (गुजरातीमें), और हिन्दी तथा अंग्रेजीके लिये २५०.००। जिन लोगोंको १००० या ज्यादा प्रतियां खरीदनेमें रस है वे निम्न-लिखित पतेपर लिख सकते हैं: सद-विचार परिवार, दरियापुर टावर-के पीछे, अहमदाबाद — ३८०००१।

ज्वालापुर (हरद्वार) में श्रीअरविंद योग मंदिरमें अक्तूबर ८ से १२ तक साधना सत्संगकी व्यवस्था की गयी है। सुबह ध्यान होगा और ध्यान करनेके तरीकोंके बारेमें भाषण होंगे। रोज शामको माताजीका कोई विशेष रूप दिखाते हुये वार्ता होगी।

माताजीकी शताब्दीके अवसरपर दर्शनार्थी लोगोंकी बहुत भीड़ होनेकी संभावना है। सोसायटी अपने सदस्यों और उनके परिवारोंके रहनेकी व्यवस्था कर रही है। जो लोग आना चाहते हों वे अभीसे एकोमोडेशन सेक्शन, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ से पत्र-व्यवहार करें।

रहनेका खर्च कुछ इस तरह होगा: डार्मिटरी सिर्फ सोनेकी जगह प्रति व्यक्ति तीन रुपये रोज, कमरा प्रति व्यक्ति दस रुपये रोज। परिवारोंके लिये अलग व्यवस्था करनेकी कोशिश की जायगी। पत्रमें अपनी सदस्यताकी संख्या जरूर लिखें।

भगवत्कृपापरं पूर्ण विश्वास और निर्भरता बनाये रखना ही,
अंतिम विश्लेषणमें, सर्वोत्तम बुद्धिमानी सिद्ध होता है।

— श्रीमाताजी



स्टार आटोमोबाईल सर्विसेज

पैट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर (उ. प्र.)

एवं

भारत आयल कैरियर्स

लक्ष्मणझूला मार्ग

क्राशिकेश-२४९२०१

धनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

पाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सबानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलिस्त
प्लॉट क्र. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१

श्रीअरविंदकी जन्म शताब्दीके बारेमें माताजीके उत्तर

प्र० — जिनका श्रीअरविंद और माताजीसे संबंध है वे लोग श्रीअरविन्दकी शताब्दी अच्छे-से-अच्छी तरह कैसे मना सकते हैं?

उ० — अभीप्सा करो और अपने प्रयासमें सच्चे और आग्रही बनो।

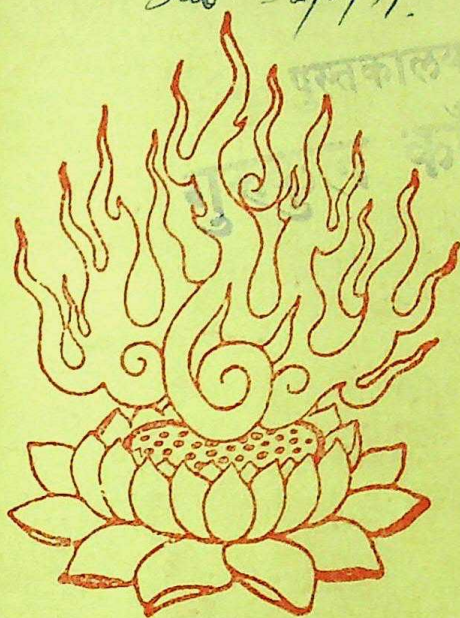
प्र० — आम जनता अच्छे-से-अच्छे तरीकेसे श्रीअरविंदकी शताब्दी कैसे मना सकती है?

उ० — समझदारीमें प्रगति करनेका प्रयास करके।

१४-९-७१

आओ, हम सब श्रीअरविंदकी शताब्दीके योग्य बननेकी कोशिश करें।

(माताजीकी शताब्दीके बारेमें भी यही कहा जा सकता है)



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

नवंबर १९७७

वर्ष ८, अंक ४, पूर्णांक ८८

सूची

एक विलक्षण विद्यालय :	डा० सीताराम जायसवाल	१
संगठन		
ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि		
शिक्षा केन्द्रका उद्देश्य		
परीक्षा क्यों नहीं ?		
स्वतंत्र प्रगति व्यवस्था		
व्यक्तिगत कार्य		
शिक्षक शिक्षार्थी और शिक्षण		
शारीरिक प्रशिक्षण :		१४
शक्तिका भंडार		
मृत्युका भय		
यौवन		
सोसायटी समाचार		२९

अग्निशिखा महीनेके पहले सप्ताहमें न मिले तो सूचना दें।
शिक्षाके बारेमें और पढ़ना चाहें तो 'शिक्षाके आधार' 'और शिक्षा-
के आयाम' पढ़ें। दाम डेढ़ रुपया।

वार्षिक चंदा ६.००

आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

एक विलक्षण विद्यालय

हाल १

१४

ता दें।

और शिक्षा-

०.००

६०५००२

६०५००२

क्या आप जानते हैं कि एक ऐसा विद्यालय है जिसके विद्यार्थी छुट्टी नहीं चाहते? क्या आप जानते हैं कि एक ऐसा भी विद्यालय है जिसके विद्यार्थी कक्षा में अध्यापक की अनुपस्थिति में भी शांत रहकर अध्ययन करते हैं? क्या आप एक ऐसे विद्यालय की कल्पना कर सकते हैं जिसमें कोई परीक्षा नहीं होती और न किसी प्रकार का प्रमाण-पत्र दिया जाता है? क्या यह संभव है कि बिना किसी निश्चित पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों की पढ़ाई हो? सामान्य तौर से इन सभी प्रश्नों का उत्तर "नहीं" में है। लेकिन एक ऐसा विलक्षण विद्यालय है जहाँ कि इन सभी प्रश्नों के उत्तर "हां" में मिलते हैं। इस विद्यालय का नाम है 'श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र'।

२९

हाल ही में मुझे आश्रम के शिक्षा-केंद्र की रजिस्ट्रार कु० पारु पाटिल से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनके सहयोग से इस अद्भुत विद्यालय को निकट से देखने का अवसर मिला। आश्रम के शिक्षा-केंद्र के संबंध में मुझे अनेक उपयोगी एवं आश्चर्यजनक बातें मालूम हुईं। उदाहरण के लिये, श्रीअरविंद आश्रम के शिक्षा-केंद्र में लगभग तीन सौ अध्यापक और पांच सौ से कुछ अधिक विद्यार्थी हैं। ये अध्यापक वास्तव में आश्रम के साधक हैं। इनका अध्यापन-कार्य मूल रूप से एक प्रकार की साधना है। इन तीन सौ अध्यापकों में से सौ अध्यापक ऐसे हैं जो अपना पूरा समय आश्रम के शिक्षा-केंद्र के लिये देते हैं। बाकी दो सौ अध्यापक अध्यापन-कार्य के साथ-साथ आश्रम के अन्य विभागों में भी कार्य करते हैं।

चूँकि सभी अध्यापक साधना के रूप में अध्यापन-कार्य करते हैं इस-लिये शिक्षा-केंद्र का वातावरण आश्चर्यजनक रीति से शांत और आनंददायक है। इस वातावरण में किसी प्रकार का भय और आशंका न तो अध्यापकों के लिये और न ही विद्यार्थियों के लिये पाये

*

जाते हैं। सच तो यह है कि आश्रमका शिक्षा-केंद्र श्रीअरविद आश्रमका एक अमिन्न अंग है। आश्रमकी आध्यात्मिक चेतनासे यह शिक्षा-केंद्र पूर्णतः प्रभावित है। इसके प्रांगणमें जो फुलवारी हैं उसके फूलोंमें भी एक अद्भुत सुन्दरता और एक नयी प्रकारकी चेतनाके दर्शन होते हैं।

मुख्य आधार :

मुझे यह बताया गया कि आश्रमके शिक्षा-केंद्रके मुख्य आधार दो हैं। एक तो आश्रमका आध्यात्मिक वातावरण और दूसरे अध्यापक-के रूपमें साधक। यही कारण है कि शिक्षा-केंद्रके बच्चोंमें अपूर्व शांति एवं प्रसन्नता दिखायी पड़ती है। उनके लिये जितना पढ़नेका महत्त्व है उतना ही खेलनेका भी, क्योंकि खेलके मैदानमें उनका चारित्रिक विकास सम्यक् रूपसे होता है। शिक्षा-केंद्रके सभी विद्यार्थी खेलमें भाग लेनेके लिये उत्सुक रहते हैं।

संगठन :

आइये, अब हम आश्रमके शिक्षा-केंद्रके संगठनसे भी परिचित हो लें। आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें तीनसे पांच वर्षके बच्चोंके लिये किडरगार्टन जैसी शैक्षिक व्यवस्था है। छः से दस वर्षकी आयुवाले बच्चे प्राथमिक स्तरकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। दससे सोलह अथवा सत्रह वर्षकी आयुवाले बालक अथवा बालिकाएँ माध्यमिक स्तरके पाठ्यक्रमका अध्ययन करते हैं। इसके बाद आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें त्रिवर्षीय 'उच्चतर शिक्षा'की व्यवस्था है।

लेकिन यह ध्यानमें रखना चाहिये कि परम्परागत विद्यालयोंकी भांति यहां विद्यार्थियोंको कक्षाओंमें नहीं बांटा जाता। यहांकी व्यवस्था स्वतंत्र प्रगति (फ्री प्रोग्रेस) पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि एक विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विषयोंमें भिन्न-भिन्न स्तरपर शिक्षा ग्रहण कर सकता है। यदि कोई विद्यार्थी गणितमें तेज है

नवंबर १९७७

तो वह कक्षा नौ की गणितका अध्ययन करता है। यदि उसकी अंगरेजी कमजोर है तो वह कक्षा सातकी अंगरेजी पढ़ता है। जितने विषय उतनी कक्षाएं। विषयोंका चुनाव भी विद्यार्थी स्वयं करते हैं। यह चुनाव विद्यार्थी अपनी रुचि और आवश्यकताके आधारपर करते हैं। मुख्य बात यह है कि इस शिक्षा-केंद्रके विद्यार्थीके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह कितने विषयोंका अध्ययन करे, वरन् उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसकी अभीप्सा अपने स्व-विकासके लिये जाग्रत हो, वह ऐसी स्वतंत्रताका अनुभव करे जो उसकी स्व-शिक्षामें सहायक हो और वह उन अवसरोंका उपयोग सहज रूप-से कर सके जो आत्म-अनुसंधानमें सहायक हो।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थामें विद्यार्थी-को इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपने जीवनके वास्तविक लक्ष्यको भली-भांति जान सके और जीवनकी उस कलाको सीख सके जिसका आधार सत्यं, शिवं, सुन्दरम् है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रकी स्थापनाका एक अद्भुत इति-हास भी है। जब श्रीअरविंद आश्रमका विधिवत् संगठन सन् १९२६ में हुआ तब इसका मुख्य लक्ष्य सर्वांगपूर्ण योगके द्वारा भावी मानवताको दिव्य जीवनके लिये तैयार करना निश्चित किया गया। श्रीअरविंदके मनमें यह बात वर्षोंतक बनी रही कि दिव्य जीवनकी तैयारीमें शिक्षाका प्रमुख योगदान है और इसके लिये यह आवश्यक है कि एक शिक्षा-केंद्रकी स्थापना की जाय। जब श्रीमाने श्रीअरविंद आश्रमकी व्यवस्थाका दायित्व अपने ऊपर लिया तब धीरे-धीरे उन्होंने उन सभी बातोंकी ओर ध्यान दिया जिन्हें श्रीअरविंद अपने आश्रममें चाहते थे।

श्रीअरविंद शिक्षा-केंद्रकी स्थापना २ दिसम्बर, १९४३ को श्रीमां-की। शिक्षाकी विविध समस्याओंसे संबंधित प्रयोग इस विद्या-

लयकी कार्य-प्रणालीका प्रमुख अंग रहा है। इसी तथ्यको ध्यानमें रखते हुए सन् १९५१ में पांडिचेरीमें एक सम्मेलन किया गया जिसमें कि श्रीअरविदकी महासमाधिकी स्मृतिमें एक अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केंद्रकी स्थापना करनेका संकल्प लिया गया। इस संकल्पके फलस्वरूप 'श्रीअरविद अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केंद्र'का विधिवत् उद्घाटन श्रीमाने ६ जनवरी, १९५२ को किया।

सन् १९५९ में माताजीने यह अनुभव किया कि शिक्षा-केंद्रके साथ 'विश्वविद्यालय' शब्द एक सीमित प्रकारकी शिक्षाका परिचायक है। जो शिक्षा समस्त जीवनसे संबंधित हो, जिस शिक्षा-व्यवस्थाके अंतर्गत तीन वर्षसे लेकर बीस-बाईस वर्षके युवा अध्ययन कर सकते हों, उसे केवल विश्वविद्यालय कहना उचित न होगा। इसलिये श्रीमाने १९५९ में इस शिक्षा-केंद्रके नामसे 'विश्वविद्यालय' शब्द हटाकर इसे 'श्रीअरविद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र'का नाम दिया।

इस प्रकार 'श्रीअरविद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्र'में किंडर-गार्टनसे लेकर उच्चतर शिक्षाकी व्यवस्था है। आधुनिक ज्ञान, विज्ञान, कला, संगीत, नृत्य और नाटक जैसे विषयोंके अध्ययन-अध्यापनकी सम्यक् व्यवस्था इस शिक्षा-केंद्रमें है। जैसा कि हमें मालूम है, इस केंद्रमें लगभग तीन सौ साधक अध्यापन-कार्य करते हैं। फलतः इस संस्थाके ऐसे उद्देश्य निर्धारित किये गये जो वास्तवमें शिक्षाके माध्यमसे व्यक्तिके सर्वांगपूर्ण विकासपर बल देते हैं।

शिक्षा केन्द्रका उद्देश्य

श्रीअरविद आश्रमके अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रसे संबंधित परिचय पुस्तिकामें निम्नलिखित उद्देश्योंका उल्लेख है :

[१] सर्वांगपूर्ण शिक्षा-व्यवस्थाका विकास करना और इसे समाज-के सम्मुख एक गत्यात्मक आदेशके रूपमें प्रस्तुत करना।

[२] व्यक्तित्वके पांच आवश्यक पक्षों — शारीरिक, प्राणिक,

नवंबर १९७७

मानसिक, चैत्य और आध्यात्मिक — के विकासके लिये वांछनीय वातावरणका निर्माण करना।

[३] सभी प्रकारके ज्ञान-विज्ञानमें निहित एकतापर बल देना और मानवकी विषयों तथा विज्ञानोंके बीच ऐसी यथार्थ एकता स्थापित करना जो दोनोंके लिये लाभदायक हो।

[४] मानव एकता संबंधी बोधका विकास करना और अंतर्राष्ट्रीय सहयोगको संभव बनाना।

[५] नव अंतर्राष्ट्रीय समरसताके विकासमें भारतकी भूमिकाकी तलाश करना और फिर उसके लिये तैयारी करना।

इन उद्देश्योंको ध्यानमें रखते हुए श्रीअरविंद आश्रमका शिक्षा-केंद्र इस बातपर बल देता है कि जीवनका एक निश्चित उद्देश्य है और शिक्षाका कार्य विद्यार्थीको इस योग्य बनाना है कि वह अपने जीवनके उद्देश्य तथा लक्ष्यको जान सके और उसकी प्राप्तिके लिये अपने-को तैयार करे।

एक बार एक अव्यापकने श्रीमांसे पूछा, “हमारे शिक्षा-केंद्रका उद्देश्य और सच्चा लक्ष्य क्या है? क्या केवल श्रीअरविंदकी रचनाएं पढ़ाना ही हमारा उद्देश्य है? सभी या कुछ रचनाएं? या विद्यार्थियोंको श्रीअरविंद तथा माताजीकी पुस्तकें पढ़ सकनेके लिये तैयार करना ही हमारा लक्ष्य है?”^१

माताजीका उत्तर था: “ये किताबें या कुछ और किताबें पढ़ सकनेके लिये तैयार करनेका सवाल नहीं है। सवाल है उन सबको विचार, भावना और क्रियाकी सामान्य मानवी रुढ़िसे बाहर खींचनेका जो इसके लिये समर्थ हों। जो लोग यहां हैं उन्हें मानवी ढंगसे मोचने और कार्य करनेके तरीकेकी गुलामीसे छुटकारा पानेके अवसर प्रदान करना। जो लोग सीखना चाहते हैं उन्हें यह सिखाना कि

^१ शिक्षाके आधार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी, १९७७, पृ० १४

अधिक उदात्त होते हैं, जो निश्चय ही कुंठित सामान्य बुद्धिसे उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसोंके सपने देखते हैं और उसे कमानेके साधनोंके बारेमें चिंतातुर रहते हैं।

“इसी तरह, जब वे अपनी पढ़ाईके बारेमें सोचते हैं तो उस सबपर विचार करते हैं जो आगे चलकर उनके लिये उपयोगी हो सके, ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

“और परीक्षाओंमें सफल होनेके लिये तैयारी करना उनके लिये बहुत महत्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि डिप्लोमा, सर्टिफिकेट और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं। इनकी सहायतासे धन भी खूब कमा सकते हैं।

“उनके लिये पढ़ाईका न कोई उद्देश्य है, न महत्व। ज्ञानके लिये सीखना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंको जाननेके लिये पढ़ना, चेतनाको विकसित करनेके लिये अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पानेके लिये स्वयंको अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञताओंको अतिक्रम करनेके लिये पढ़ना, जीवनमें अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्यकी ओर बढ़नेके लिये अपने-आपको तैयार करना... यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल कल्पना ही समझते हैं। बस, एक ही चीज महत्वपूर्ण है — व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिये अपनेको तैयार करना।

“आश्रमका यह शिक्षा-केंद्र उन बच्चोंके लिये उपयुक्त स्थान नहीं जो इस रोगके शिकार हैं। और उनके आगे इस बातको अच्छी तरह प्रमाणित कर देनेके लिये ही हम उन्हें किसी प्रकारकी परीक्षाके लिये, किसी सरकारी प्रतियोगिताके लिये तैयार नहीं करते, और न ही उन्हें कोई डिप्लोमा और डिग्री देते हैं जो बाहरी दुनियामें उनके काम आ सके।

“हम यहां केवल उन्हीं बच्चोंको चाहते हैं जो एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवनकी अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णताकी

प्राप्त है, जो एक पूर्णतर सच्चे भविष्यकी ओर उत्कटतासे निहारते हैं। और बाकी सबके लिये दुनिया काफी बड़ी है।”^१

डिप्लोमा और सर्टिफिकेटके संबंधमें श्रीमांका यह उत्तर इस तथ्य-को पूर्ण रूपसे स्पष्ट करता है कि श्रीअरविंद आश्रमका शिक्षा-केंद्र एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवनके लिये विद्यार्थियोंको तैयार करता है। लेकिन इसके लिये आवश्यक है कि उनमें डिप्लोमा और डिग्री-की चाह न हो, वरन् उनके मनमें सर्वांग पूर्णता प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा और अभीप्सा हो।

स्वतंत्र प्रगति-व्यवस्था

आधुनिक शिक्षा जगत्को श्रीअरविंद आश्रमके शिक्षा-केंद्रकी एक अनुपम देन है स्वतंत्र प्रगति व्यवस्था (फ्री प्रोग्रेस सिस्टम)। यह स्वतंत्र प्रगति व्यवस्था है क्या? इसे जब हम अच्छी तरह समझ जाते हैं तब हमारे लिये यह सुगम हो जाता है कि हम इस शिक्षा-केंद्रके भावी कार्यका भी अनुमान लगा सके। आश्रमके शिक्षा-केंद्रके अधिकांश कार्योंने इस व्यवस्थाकी आवश्यकता और अर्थको स्पष्ट करते हुए लिखा है^२ कि सर्वप्रथम हमें विद्यार्थीकी प्रगतिकी ओर ध्यान देना होगा क्योंकि सभी प्रकारकी शिक्षाका लक्ष्य विद्यार्थियोंकी प्रगतिमें सहायक होना है।

लेकिन इस प्रगतिका स्वरूप क्या है? दूसरे शब्दोंमें, वास्तविक प्रगतिसे क्या तात्पर्य है? सामान्य विद्यालयोंमें तो विद्यार्थीकी प्रगति-के लिये एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है, कक्षामें व्याख्यान दिये जाते हैं और फिर वार्षिक परीक्षा होती है। इस वार्षिक परीक्षामें

^१ वही, पृ० ४५-७

^२ श्रीअरविंद आश्रमके अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-केंद्रकी परिचय पुस्तिका (अंगरेजी संस्करण), जुलाई १९७४, पृ० ५-१०

प्रायः आधेसे अधिक छात्र असफल होते हैं। क्या इस प्रकारकी वार्षिक परीक्षा विद्यार्थीकी वास्तविक प्रगतिपर प्रकाश डालती है? फिर इसीके साथ यह प्रश्न उठता है कि विद्यार्थीके व्यक्तित्व और चरित्र-संबंधी विकासका ज्ञान प्रचलित परीक्षा-प्रणालीके द्वारा नहीं होता। कोई विद्यार्थी कितना ईमानदार है? उसमें किस सीमातक उत्तर-दायित्वकी भावना है? वह कहाँतक नियमोंका पालन करता है? उसमें सच्चाईके प्रति कितनी निष्ठा है? वह अपने सर्वांगपूर्ण विकासके लिये कितना लालायित है? इन सभी प्रश्नोंका उत्तर हमें प्रचलित शिक्षा और परीक्षा-प्रणालीके द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये श्रीअरविंद आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थाका विकास किया गया है।

इस स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थामें निम्नलिखित विशेषताएं हैं :

[१] इस व्यवस्थाके अंतर्गत छात्रोंकी विभिन्न आवश्यकताओंकी पूर्ति सरलतासे हो जाती है।

[२] इस व्यवस्थाके अंतर्गत प्रत्येक विद्यार्थी अपने अनन्य विकासके क्रमको स्वयं निर्धारित कर सकता है।

[३] स्वतंत्र प्रगति व्यवस्था प्रत्येक विद्यार्थीको यह अवसर प्रदान करती है कि वह अपनी व्यक्तिगत शक्तिके अनुसार शैक्षिक प्रगति करे।

[४] स्वतंत्र प्रगति व्यवस्था विद्यार्थीको अपने सर्वांगीण विकासका पूर्ण दायित्व देती है।

[५] इस व्यवस्थाके अंदर शिक्षाके विभिन्न विषयोंके अध्ययनके स्थान-पर विद्यार्थी अपने आंतर विकासकी ओर अधिक उन्मुख होता है।

[६] इस व्यवस्थामें प्रत्येक विद्यार्थीको इतनी स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वह अपनी शक्ति एवं इच्छानुसार अनुभव प्राप्त कर सके।

[७] स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थामें अध्यापक विद्यार्थीका पथ-प्रदर्शन इस प्रकार करता है कि उसकी स्वतंत्रतामें बाधा न पड़े।

नवंबर १९७७

११

[८] इस व्यवस्थामें अध्यापक एक मित्रकी भांति छात्रोंके प्रति सम्भावना रखकर उनकी आवश्यकताके अनुसार निर्देशन देनेका प्रयास करता है।

[९] स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थामें प्रत्येक विद्यार्थीको व्यक्तिगत अध्ययन-कार्यका दायित्व लेना पड़ता है। यह दायित्व उसकी रुचि और अभीप्सापर निर्भर करता है।

व्यक्तिगत कार्य :

स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थाका एक प्रमुख अंग व्यक्तिगत कार्य है। प्रत्येक विद्यार्थीको इतनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वह अपने व्यक्तिगत कार्यको भिन्न-भिन्न रीतियोंसे कर सकता है। इस संदर्भमें व्यक्तिगत कार्य करनेके लिये विद्यार्थी प्रायः निम्नलिखित उपायोंको काममें लाते हैं :

[१] शांतिपूर्वक चिंतन अथवा ध्यान।

[२] उन पुस्तकोंके अपेक्षित अंशोंका अध्ययन जिनके संबंधमें शिक्षकने सुझाव दिया है।

[३] अध्यापकद्वारा विद्यार्थीके लिये कार्यकी जो रूप-रेखा तैयार की गयी है उसको ध्यानमें रखकर व्यक्तिगत कार्य करना।

[४] समय-समयपर शिक्षकसे परामर्श अथवा साक्षात्कार करना।

[५] व्यक्तिगत कार्यसे संबंधित प्रयोग करनेकी सुविधा होना।

[६] व्यक्तिगत कार्योंसे संबंधित समस्याओंके समाधानके लिये प्रयत्न करना।

[७] व्यक्तिगत कार्यसे संबंधित निबंध-लेखन।

[८] व्यक्तिगत कार्यके अंतर्गत ड्राइंग, डिजाइन, चित्रकला आदिमें संलग्न होना।

[९] सजावट, भोजन बनाना, लकड़ीका काम, सिलाई-कढ़ाई जैसे कार्योंको भी करना।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत कार्यका संबंध ज्ञानेंद्रियों- एवं कर्मेंद्रियोंसे है और साथ ही इसकी पूर्तिके लिये विद्यार्थियोंको पर्याप्त स्वतंत्रता होती है। वे समय-समयपर अपने शिक्षकोंसे परामर्श करते हैं और उनकी सहायतासे अध्ययन-संबंधी अपने कार्यको पूरा करते हैं।

शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षण

श्रीअरविद आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थाका संतोषजनक संचालन बहुत कुछ शिक्षकोंके जीवन-दर्शन और शिक्षाके प्रति दृष्टिकोणपर निर्भर करता है। तात्पर्य यह है कि सर्वांगपूर्ण शिक्षा व्यवस्थामें अध्यापककी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विद्यार्थियोंके लिये उसे निरंतर कार्यरत रहना पड़ता है। शिक्षा-केंद्रकी परिचय पुस्तिकामें स्वतंत्र प्रगति व्यवस्थाके अंतर्गत शिक्षककी भूमिकाके संबंधमें निम्नलिखित बातोंका उल्लेख है :

[१] विद्यार्थीकी इस प्रकार सहायता करना कि वह अपनी आंतरिक इच्छासे स्व-विकास और प्रगतिके लिये सक्रिय हो। दूसरे शब्दोंमें, आश्रमके शिक्षा-केंद्रके अध्यापका यह दायित्व है कि बालकों की आध्यात्मिक चेतनाको धीरे-धीरे समयानुसार जाग्रत किया जाय।

[२] प्रत्येक विद्यार्थीकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं और क्षमताओंको ध्यानमें रखकर उसके अध्ययनका कार्यक्रम तैयार करना। ऐसा करते समय अध्यापक विद्यार्थीकी आवश्यकताओं, रुचियों और योग्यताओंसे भली-भांति परिचित होता है।

[३] विद्यार्थियोंके प्रति हार्दिक सहानुभूति रखकर उनकी कठिनाइयोंको समझना और आवश्यकतानुसार सहायता देना।

[४] विद्यार्थियोंको अच्छे विचारों, प्रश्नों, साहित्यक कार्यक्रमोंके द्वारा अध्ययनके लिये प्रोत्साहित करना।

[५] अध्यापककी भूमिकाका केंद्र-बिंदु है ऐसे परिवेशका निर्माण

जो विद्यार्थियोंके लिये आनंददायक हो और उनकी आध्यात्मिक जेतनाको जाग्रत करे।

कभी-कभी यह पूछा जाता है कि क्या श्रीअरक्षिद आश्रमके शिक्षा-केंद्रमें शिक्षणकी परंपरागत प्रणालीको नहीं अपनाते। इस प्रश्नका उत्तर है कि आवश्यकतानुसार शिक्षणकी परंपरागत प्रणाली, अर्थात् व्याख्यानका उपयोग किया जाता है। कभी-कभी किसी स्तरके विद्यार्थियोंके एक समूहके लिये किसी विशेष विषयपर व्याख्यानकी व्यवस्था की जाती है। यह व्याख्यान विद्यार्थियोंके अध्ययनका आवश्यक अंग नहीं होता। हां, जरूरत पड़नेपर जब व्याख्यानकी व्यवस्था की जाती है तब इसकी सूचना विद्यार्थियोंको पहलेसे प्रदान कर देते हैं।

सामूहिक शिक्षणके लिये न केवल समय-समयपर व्याख्यानकी व्यवस्था करते हैं, वरन् वाद-विवाद एवं विचार-विनिमयका भी प्रबंध किया जाता है। एक वर्गके विद्यार्थी आपसमें बैठकर शिक्षककी उपस्थितिमें विचार-विमर्श करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि यह विचार विमर्श केवल पाठ्यक्रमसे संबंधित नहीं होता। विद्यार्थियोंकी जो अपनी शारीरिक, भावात्मक, नैतिक एवं आध्यात्मिक समस्याएं होती हैं उनपर भी वे आपसमें मिल-बैठकर विचार करते हैं। तात्पर्य यह है कि शिक्षण-कार्य, चाहे वह व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, एक ऐसे वातावरणमें किया जाता है जो मूलतः अनौपचारिक होता है और जिसमें विद्यार्थी किसी प्रकारकी हिचक अनुभव नहीं करते। वे स्वतंत्र और निर्भय होकर अपने विचार शिक्षक और विद्यार्थियोंके सम्मुख रख सकते हैं।

आशय यह है कि शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षणमें उसी प्रकारका संबंध है जैसे कि एक सम त्रिभुजकी भुजाओंमें होता है। दूसरे शब्दोंमें, इन तीनोंका समान महत्त्व है। फिर भी सर्वांगपूर्ण शिक्षामें शिक्षाका केंद्र बालक है। सर्वांगपूर्ण शिक्षणका यह प्रमुख सिद्धांत है कि किसी विषयकी शिक्षा तबतक नहीं दी जा सकती जबतक कि बालक उसे स्वयं प्राप्त करना नहीं चाहता। इस संदर्भमें श्रीअरविदका यह

कथन है कि शिक्षणका प्रथम सिद्धांत है कि किसी विषयकी शिक्षा नहीं दी जा सकती। श्रीअरविन्द यह कहना चाहते हैं कि बालक स्वयं शिक्षा प्राप्त करता है स्वतंत्रता और आनंदके वातावरणमें। उसे किसी प्रकारकी अनिवार्यता स्वीकार नहीं है।

श्रीअरविन्द आश्रमका शिक्षा केंद्र हमारे सामने भावी विद्यालयकी एक उत्साहवर्धक रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। इन दिनों यह कहा जा रहा है कि विद्यालयकी मौत हो चुकी है, समाज को विद्यालयोंसे मुक्त करो, आदि। यह सब इसलिये हो रहा है कि आजका विद्यालय निर्जीव हो गया है और उसके द्वारा बालकोंका सर्वांगपूर्ण विकास नहीं हो पाता। श्रीअरविन्द आश्रमका शिक्षा केंद्र सचमुच एक विलक्षण विद्यालय है जिससे कि शिक्षा-जगत् प्रेरणा ग्रहण करके अपनी समस्याओंका समाधान कर सकता है।

— डा० सीताराम जायसवाल

शारीरिक प्रशिक्षण

जब माताजीने आश्रममें शारीरिक प्रशिक्षणपर जोर देना शुरू किया तो देशमें, और आश्रममें भी, कई लोगोंको यह बात बड़ी अजीब-सी लगी। “योगाश्रममें यह सरकस किसलिए?” कइयोंने आपत्ति की। परन्तु माताजी और श्रीअरविन्दका प्रत्येक काम उच्चतम चेतनासे और उच्चतम लक्ष्यके लिये हुआ करता था। १९४९ में माताजीने ‘शारीरिक शिक्षण पत्रिका’का प्रकाशन शुरू किया— जो बादमें ‘श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्रकी पत्रिका’ बन गयी और अब भी इसी नामसे फ्रेंच, अंगरेजी और हिन्दीमें प्रकाशित होती है।

श्रीअरविन्दने उसके पहले अंकमें लिखा (यहां हम संक्षिप्त भावार्थ दे रहे हैं): "... बाहरी रूपमें ये केवल खेल-कूद और मनोरंजनकी चीजें हैं जिन्हें लोग मनवहलावके लिये या अपने शरीरकी शक्तको निकासका रास्ता देनेके लिये या शरीरके विकास, बल और अच्छे स्वास्थ्यके लिये अपनाते हैं। लेकिन ये उससे अधिक बहुत कुछ हैं या हो सकते हैं। ये ऐसी आदतों, क्षमताओं और गुणोंके विकासका अच्छा क्षेत्र हैं जिनकी बहुत अधिक जरूरत है, जिनका शांतिमें हो या युद्धमें, राजनीतिक और सामाजिक कार्योंमें, वास्तवमें उन सब स्थानोंपर जरूरत है जहां मनुष्यको सामूहिक प्रयास करना पड़ता है। व्यायामका यह राष्ट्रीय पक्ष है और मैं इसे विशेष महत्त्व देना चाहूंगा।

"हमारे जमानेमें खेल-कूद, व्यायाम, एथलेटिक्स आदिने जितना महत्त्व पाया है ऐसा महत्त्व शायद प्राचीन कालमें यूनान आदि देशोंमें ही था ...। यूनानने ही ओलम्पिक शुरू किया था। ओलम्पिकका फिरसे शुरू होना एक शुभ लक्षण है। यह रस हमारे देशमें भी आने लगा है। स्वाधीन भारत जीवनके सभी पहलुओंके विकासमें रस ले रहा है। ... बचपनसे ही व्यायाम और खेल-कूद आदिमें रस लेनेकी आदत एक स्वस्थ और शक्तिशाली प्रजाके निर्माणमें सहायक होगी।

"स्वास्थ्य, बल और शारीरिक योग्यता आधारभूत चीजें हैं जिनमें व्यायामसे सहायता मिलती है, लेकिन साथ ही इनसे ज्यादा ऊँचे स्तरकी चीजें हैं अनुशासन, मनोबल, साहस और सुदृढ़ चरित्रका निर्माण। इनमें भी व्यायामसे बहुत सहायता मिलती है। कई खेल हैं जो इस दिशामें बहुत ज्यादा सहायक हैं। वे सहनशीलता, धैर्य, काममें फुर्ती, उत्तरदायित्वकी भावना, पहल करनेकी क्षमता, तुरत निर्णय और क्रिया, संकल्पकी दृढ़ता आदि पैदा करते हैं, यह सिखाते हैं कि सहसा जरूरत आ पड़नेपर क्या किया जाय और कैसे किया जाय।

“इसका एक बहुत महत्त्वपूर्ण परिणाम है शरीरके अंदर एक ऐसी सहज चेतनाका जागना जो मस्तिष्ककी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना अपने-आप तुरंत निश्चय कर सके। शरीरमें इसका वही स्थान होगा जो मनमें आशु अंतर्दृष्टिका और संकल्पमें शीघ्र निर्णयका है। साधारण मानव शरीर अपनी बेतुकी गतियोंके कारण बहुत शक्ति नष्ट करता है जब कि प्रशिक्षित शरीर सामंजस्य और सुव्यवस्थाके कारण शक्तिका पूरा सदुपयोग करता है। खेल-कूदसे एक खिलाड़ी-भावना पैदा होती है जिसमें आदमी हार-जीतकी परवाह किये बिना आगे बढ़ता है और कैसी भी परिस्थिति हो, संयत और संतुलित रहता है। इसमें धैर्य, सहनशीलता, प्रतियोगीके प्रति सद्भावना, नियम-पालन, गलत उपायोंका बहिष्कार, निर्णायकके फैसलेको खुशीसे स्वीकार करना आदि बातें भी आ जाती हैं। इन बातोंका केवल खेल-कूदमें ही नहीं, समस्त जीवनमें उपयोग है। आजके संसारको इनकी बहुत ज्यादा जरूरत है।

“कुछ खेलोंमें आज्ञापालन, सुव्यवस्था, परस्पर-सहयोग अनिवार्य गुण हैं। उनके बिना खेल सुचारु रूपसे खेला ही नहीं जा सकता। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये गुण केवल व्यक्तिके जीवनमें ही नहीं, समाजके जीवनमें भी कितने आवश्यक हैं। नेता या कप्तानकी भूमिका कितनी जरूरी होती है! उसके अंदर अनुशासन रखनेकी, अपने साथियोंका विश्वास पानेकी क्षमता होनी चाहिये और उसके साथियोंमें आज्ञापालन और तत्परताकी भावना होनी चाहिये। खेल-कूदके द्वारा मनुष्यमें ये गुण पैदा होते हैं। और ये गुण जीवनमें बहुत आवश्यक हैं। अगर वृन्दवाद्यमें हर एक अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग शुरू कर दे, अगर आध्यात्मिक जीवनमें शिष्य गुरुके आदेशकी अवहेलना करे तो...

“जिस राष्ट्रमें ये गुण अधिक मात्रामें होंगे वह विजय, सफलता और महानतामें सबसे बढ़कर होगा, इतना ही नहीं, संसारमें एकता

नवंबर १९७७

और सामंजस्य लानेमें भी आगे होगा — और यही चीजें हैं जिनकी ओर हम आंख लगाये हुए हैं।

यह तो हुआ वह उद्देश्य जिसके लिये माताजी और श्रीअरविद व्यायाम और खेल-कूद आदिको प्रोत्साहन देते हैं। शारीरिक शिक्षणसे उनका मतलब क्या है यह माताजीके शब्दोंमें सुनिये :

“मानव चेतनाके जितने भी स्तर हैं उनमें भौतिक स्तर एक ऐसा स्तर है जो पूरी तरहसे पद्धति, व्यवस्था, अनुशासन और प्रणालीके द्वारा नियंत्रित होता है। जड़-तत्त्वमें जो नमनीयता और ग्रहणशीलताका अभाव है उसके स्थानपर हमें पूरे व्योरेके साथ एक ऐसा सुसंगठन ले आना होगा जो सच्चा भी हो और व्यापक भी। इस सुसंगठनको लाते हुए, अवश्य ही, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हमारी सत्ताके सभी लोक-लोकांतर परस्पर-संबद्ध, एक-दूसरेपर आश्रित और एक-दूसरेमें प्रवेश किये हुए हैं। फिर भी यदि किसी मानसिक या प्राणिक आवेगको शरीरके अंदर व्यक्त होना हो तो उसे एक समुचित और सुनिश्चित प्रणालीका अनुसरण करना होगा। यही कारण है कि शरीरकी समस्त शिक्षाको, अगर उसे फलोत्पादक होना हो तो, कठोर और सविस्तार, पूर्वदर्शी और प्रणालीबद्ध होना होगा। उसे आदतोंका रूप ग्रहण कर लेना होगा, क्योंकि शरीर सचमुच अभ्यासोंमें गठित एक सत्ता है परंतु वे सब अभ्यास संयमित और नियमित होने चाहिये और साथ ही उनमें इतनी पर्याप्त मात्रामें लोच होने चाहिये कि वे सभी परिस्थितियों और मानव आधारकी वृद्धि और विकासकी आवश्यकताओंके अनु-कूल अपनेको ढाल सकें।

“शरीरकी समस्त शिक्षा एकदम जन्मके साथ ही आरंभ हो जानी चाहिये और जीवन-भर चलती रहनी चाहिये। उसके विषयमें ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता कि उसका आरंभ बहुत जल्दी हो गया है अथवा वह बहुत देरतक चल रही है।

“शरीरकी शिक्षाके तीन प्रधान रूप हैं :

- १ — शारीरिक क्रियाओंको संयमित और नियमित करना,
- २ — शरीरके सभी अंगों और क्रियाओंका सर्वांगपूर्ण, प्रणालीबद्ध और सुसमंजस विकास करना,
- ३ — अगर शरीरमें कोई दोष और विकृति हो तो उसे सुधारना।

“यह कहा जा सकता है कि जीवनके एकदम आरंभिक दिनोंसे ही, बल्कि करीब-करीब आरंभिक घण्टासे ही, बच्चेको भोजन, नींद, मलत्याग इत्यादिके विषयमें पहले प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिये। अगर बच्चा अपने जीवनके एकदम प्रारंभसे अच्छी आदतें डाल ले तो वह जीवन-भर बहुत-सी तकलीफों और असुविधाओंसे बचा रहेगा, साथ ही उसके जीवनके आरंभिक वर्षोंमें उसकी देखभालका भार जिन लोगोंपर होगा उनका काम भी बहुत अधिक आसान हो जायगा।

“लोगोंकी यह मान्यता है कि, अगर इस शिक्षाको युक्तिपूर्ण, उन्नत और फलदायी होता हो तो यह अवश्य ही मानव शरीरके सरसरे ज्ञानपर, उसकी रचना और उसकी क्रियाओंके ज्ञानपर आश्रित होनी चाहिये। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा हो वैसे-वैसे उसे अपने अंग-प्रत्यंगोंकी क्रियाओंको देखनेका अभ्यास कराना चाहिये जिससे वह उन्हें अधिकाधिक नियमित कर सके, इस बातका ध्यान रख सके कि उनकी क्रियाएं स्वाभाविक और सुसमंजस हों। जहां तक उठने-बैठने, हिलने-डुलने एवं अन्य चेष्टाओंके ढंगका प्रश्न है बुरी आदतें बहुत कम उम्रमें और बहुत जल्दी ही बन जाती हैं और वे सारे जीवनके लिये बड़े खतरनाक परिणाम उत्पन्न कर सकती हैं। जो लोग शिक्षाके प्रश्नपर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, अपने बच्चोंको स्वाभाविक ढंगसे विकसित होनेके लिये उत्तमोत्तम सुविधाएं देना चाहते हैं उन सबको आवश्यक सूचनाएं और उपदेश आसानीसे प्राप्त हो सकते हैं। आज इस विषयका अध्ययन अधिकाधिक सावधानीके साथ किया जा रहा है और बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई और हो रही हैं जो इस विषयपर आवश्यक सभी प्रकारके निर्देश और ज्ञान प्रदान करती हैं।

“यहाँ मेरे लिये यह संभव नहीं कि इस विषयके समाधानके लिये पूरे व्योरेके साथ इसकी कार्य-प्रणालीमें प्रवेश करूं, और फिर प्रत्येक समस्या ही अन्योसे भिन्न है और समाधान भी प्रत्येक व्यक्तिके प्रसंग-में अलग और समुचित होना चाहिये। भोजनके प्रश्नका अध्ययन खूब विस्तार और सावधानीके साथ किया गया है। बच्चोंके विकास-में सहायता देनेवाले खाद्य पदार्थोंको साधारणतया लोग जानते हैं और उनका उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं। परन्तु यहाँ यह याद रखना बहुत आवश्यक है कि शरीरकी सहज-वृद्धि, जबतक कि वह ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, सभी सिद्धान्तोंसे अधिक जानती है। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे बच्चे स्वाभाविक ढंगसे विकसित हों तो तुम्हें उन्हें ऐसा भोजन खानेके लिये बाध्य नहीं करना चाहिये जिससे वे ऊब गए हों, क्योंकि शरीरमें प्रायः एक सुनिश्चित सहज-बोध होता है जिससे वह जान लेता है कि उसके लिये कौन-सी चीज हानिकारक है। अवश्य ही, अगर बच्चा चंचल और मनमौजी हो तो बात दूसरी है।

“अपनी साधारण स्थितिमें, अर्थात्, मानसिक धारणाओं या प्राणिक आवेगोंका कोई हस्तक्षेप न हो तो, शरीर यह भली-भाँति जानता है कि उसके लिये कौन-सी चीज अच्छी और आवश्यक है। पर इस प्रकारकी स्थिति सामान्य रूपमें केवल तभी आ सकती है जब कि बच्चेको खूब सावधानीके साथ शिक्षा दी गयी हो और वह वासनाओं-को आवश्यकताओंसे पृथक् करना सीख गया हो। जो भोजन सादा और स्वास्थ्यप्रद हो, सारतत्त्वसे भरपूर और भूख बढ़ानेवाला हो, सब प्रकारकी व्यर्थकी जटिलताओंसे खाली हो, बालकोंको उसमें स्वाद लेनेकी आदत पड़नी चाहिये। उसे अपने रोजके भोजनमें उन सब चीजोंसे अवश्य परहेज रखना चाहिये जो केवल पेटको भर देती और भारीपन लाती हैं, विशेषकर उसे यह सिखाना चाहिये कि वह अपनी भूखके अनुसार भोजन करे, न अधिक, न कम, और न अपने लोभ और पेटपूनको तृप्त करनेका एक अवसर समझकर भोजन

करे। बिल्कुल बचपनसे ही हमें यह जान लेना चाहिये कि हम अपने शरीरको सबल और स्वस्थ रखनेके लिये भोजन करते हैं, रसनाके सुखोंका उपभोग करनेके लिये नहीं। बच्चेको वही भोजन देना चाहिये जो उसके स्वभावके अनुकूल हो, स्वास्थ्य और स्वच्छता-संबंधी नियमोंके अनुसार बना हो, जो खानेमें स्वादिष्ट हो और फिर भी बहुत सादा हो और यह भोजन बच्चेकी उम्र और उसके नियमित कार्योंके अनुसार चुना और नपा होना चाहिये, इसमें वे सभी रासायनिक और शक्तिशाली तत्त्व होने चाहिये जो शरीरके सभी अंगोंके विकास और संतुलित वृद्धिके लिये आवश्यक हैं।

“क्योंकि बच्चेको वही भोजन दिया जायगा जो उसके स्वास्थ्यकी रक्षा करने और आवश्यक शक्ति प्रदान करनेके लिये आवश्यक होगा, हमें इस विषयमें खूब सावधान रहना चाहिये कि बच्चेको परेशान करने या दण्ड देनेके एक उपायके रूपमें भोजनका उपयोग न किया जाय। बच्चेसे यह कहनेकी आदत कि, तुम अच्छे लड़के नहीं हो, तुम्हें तीसरे पहरका कलेवा नहीं दिया जायेगा इत्यादि एकदम हानिकारक है। ऐसा कह कर तुम उसकी नन्हीं-सी चेतनामें यह संस्कार उत्पन्न करते हो कि भोजन उसे मुख्यतः अपनी लोभ-लालसा-को तृप्त करनेके लिये दिया जाता है, न कि इसलिये कि वह उसके शरीरको अच्छे ढंगसे कार्य करते रहनेके लिये अनिवार्य है।

“उसके बाद एक दूसरी बात बच्चेको एकदम बाल्यावस्थामें ही सिखानी चाहिये और वह है — स्वच्छता और स्वस्थ आदतोंके प्रति अनुराग। अगर तुम चाहते हो कि स्वच्छताके लिये यह अनुराग और स्वास्थ्यके नियमोंके लिये आदरभाव बच्चेमें दिखायी दें तो तुम्हें बड़ी सावधानीके साथ यह ख्याल भी रखना चाहिये कि कहीं तुम उसके अन्दर बीमारीका भय न भर दो। भय शिक्षाके लिये सब-से बुरा साधन है, क्योंकि भय अपने विषयको खींच ले आनेका सबसे अधिक निश्चित पथ है। फिर भी, जहां एक ओर बीमारीका भय नहीं होना चाहिये, वहां दूसरी ओर बीमारीमें किसी प्रकार-

नवंबर १९०७

की रुचि होनी भी उचित नहीं। यह एक प्रचलित विश्वास है कि तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोगोंका शरीर दुर्बल होता है। यह भ्रम है और इसका कोई आधार नहीं। संभवतः कभी एक युग था जब शारीरिक अस्तव्यस्तताके प्रति लोगोंकी एक विचित्र और गन्दी रुचि थी, पर सौभाग्यकी बात है कि वह प्रवृत्ति अब दूर हो गयी है। आजकल लोग सुगठित, सुदृढ़, मांसल, बलिष्ठ और पूर्ण सुडौल शरीरकी प्रशंसा करते हैं और उसका सच्चा मूल्य समझते हैं। पर, जो हो, बच्चोंको यह शिक्षा देनी चाहिये कि वे स्वास्थ्यको आदरकी दृष्टिसे देखें, उस स्वस्थ मनुष्यकी प्रशंसा करें जिसका शरीर बीमारीके आक्रमणको दूर फेंक देनेकी कला जानता है। बहुत बार बच्चे बीमारीका बहाना करते हैं जिससे वे किसी आवश्यक किन्तु कष्टपूर्ण कार्यसे बच जायं, उस कार्यसे बच जायं जिसमें उनकी रुचि नहीं, अथवा उनके माता-पिताका हृदय पसीज जाय और वे उनकी इच्छाको तृप्त कर दें। बच्चोंको यथासंभव शीघ्र-से-शीघ्र यह भी सिखा देना चाहिये कि यह पद्धति बहुत लाभदायी नहीं है और बीमार हो जानेपर लोग तुममें अधिक दिलचस्पी नहीं दिखलायंगे, बल्कि उससे विपरीत अवस्थामें दिखलायंगे। दुर्बल लोगोंमें यह विश्वास करनेकी प्रवृत्ति होती है कि उनकी दुर्बलता उन्हें विशेष रूपसे लोगोंका प्रिय बना देती है और वे लोग, यदि आवश्यक हो, अपने साथ और इर्द-गिर्द रहनेवाले लोगोंका ध्यान और सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित करनेके एक साधनके रूपमें अपनी इस दुर्बलताका और यहां तक कि अपनी बीमारीका उपयोग करते हैं। किसी भी कारणसे इस घातक प्रवृत्तिको प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये। बच्चोंको सिखाना चाहिये कि बीमार होना दोष-त्रुटि और हीनताका सूचक है, न कि किसी गुण या त्यागका।

“इसके लिये उत्तम बात यह है कि जब बच्चा अपने अंगोंका व्यवहार करने योग्य हो जाय तब वह प्रतिदिन कुछ समय अपने शरीरके सभी भागोंको विधिपूर्वक और नियमित रूपसे विकसित करने-

में लगाये। प्रत्येक दिन २० से ३० मिनट तक — अगर संभव हो तो सवेरे बिछौनेसे उठनेके बादका समय अधिक अच्छा होगा — यदि लगाये जायं तो वे मांसपेशियोंमें अच्छी गति और सन्तुलित वृद्धि ले आनेके लिये पर्याप्त होंगे। साथ ही उससे जोड़ों और रीढ़की हड्डीका सख्त पड़ जाना भी रुक जाता है जो कि साधारण-तया अपने समयसे बहुत पहले ही आ जाता है। बच्चोंकी शिक्षा-के साधारण कार्यक्रममें खेल-कूदको काफी अच्छा स्थान देना चाहिये, इससे उसे समस्त औषध-जगतकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त होगा। अगर धूपमें एक घण्टा व्यायाम किया जाये (शारी-रिक हरकतों की जायं) तो कमजोरी या खूनकी कमी दूर करनेमें वह बलवर्धक दवाओं (टानिकों)के एक समूचे भण्डारसे कहीं अधिक काम करता है। मैं तो तुम्हें यह सलाह दूंगी कि जब तक दूसरी तरहसे काम चलाना पूर्ण रूपसे असंभव न हो जाये तबतक कभी भी औषध मत ग्रहण करो, और इस 'पूर्ण रूपसे असंभव'के विषयमें भी तुम्हें पूर्ण रूपसे कठोर होना चाहिये — इस स्थितिको सहज ही स्वीकार नहीं करना चाहिये। यद्यपि शरीर-चर्याके इस प्रोग्रामके अन्दर कुछ प्रसिद्ध साधारण सामान्य पद्धतियां हैं जिनके द्वारा शरीर-का उत्तमोत्तम विकास किया जा सकता है, फिर भी यदि किसी पद्धतिको पूर्ण रूपसे फलदायी बनाना हो तो प्रत्येक व्यक्तिके लिये स्वतंत्र रूपसे विचार करना चाहिये और उसके लिये कोई पद्धति निश्चित करनेके लिये यदि संभव हो तो किसी सुयोग्य व्यक्तिकी सहायता लेनी चाहिये अथवा इस विषयसे संबंधित पुस्तकोंका अवलोकन करना चाहिये। ऐसी पुस्तकें काफी छप चुकी हैं अथवा छप रही हैं।

“पर, हर हालतमें, बच्चेको, चाहे वह जो कुछ भी करता हो, सोनेके लिये काफी समय मिलना चाहिये। यह समय उम्रके अनुसार अलग-अलग हो सकता है। पालनेके बच्चेको जगनेकी अपेक्षा सोना अधिक चाहिये। पर जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जायेगा

तब
बंसे-बंसे
तक यह
स्थान
बच्चेको
सायुओ
उत्तम
कि अ
करना
देनेकी
बच्चोंक
होते हैं
के लि
अते हैं
भी हैं
और इ
बढ़ते
होती
पूर्वक
सहनेमें
धारण
करना
सेवा
विपरी
बच्चों
यदि
करे
उचित
चाहि

नवंबर १९७७

बंसे-बंसे सोनेका समय कम होता जायेगा। परन्तु युवावस्था आने-
 तक यह समय ८ घण्टेसे कम नहीं होना चाहिये और फिर सोनेका
 स्थान खूब शान्त और हवादार होना चाहिये। और कभी व्यर्थमें
 बच्चेको प्रारंभिक रातकी नींदसे वंचित नहीं करना चाहिये।
 स्नायुओंको आराम पहुंचानेके लिये आधी रातसे पहलेका समय सबसे
 उत्तम है। फिर जगनेके समयमें भी प्रत्येक आदमीके लिये, जो
 कि अपनी स्नायुओंमें समतोलता बनाए रखना चाहता है, विश्राम
 करना अत्यन्त आवश्यक है। मांसपेशियों और स्नायुओंको विश्राम
 देनेकी विधि जानना एक कला है और बिल्कुल छोटी अवस्थामें ही
 बच्चोंको इसकी शिक्षा देनी चाहिये। पर बहुतेरे माता-पिता ऐसे
 होते हैं जो इसके विपरीत अपने बच्चोंको निरंतर कार्य करते रहने-
 के लिये बाध्य करते हैं। जब बच्चा चुपचाप बैठता है तब वे सम-
 झते हैं कि वह बीमार हो गया है। यहां तक कि ऐसे माता-पिता
 भी हैं जिन्हें बच्चोंसे घरेलू काम करानेकी बुरी आदत होती है
 और इस तरह वे बच्चोंके आराम करनेका समय ले लेते हैं। एक
 बढ़ते हुए स्नायु-मण्डलके लिये इससे अधिक बुरी चीज और नहीं
 होती। अत्यन्त लगातार होनेवाले प्रयासका दबाव अथवा स्वेच्छा-
 पूर्वक पसन्द किये गये नहीं, बल्कि ऊपरसे लादे हुए कार्यका भार
 सहनेमें वह असमर्थ होता है। समस्त प्रचलित भावनाओं और
 धारणाओंके विरुद्ध मेरा तो मत यह है कि बच्चोंसे सेवाकी मांग
 करना उचित नहीं है, यह समझना अनुचित है कि माता-पिताकी
 सेवा करना बच्चेका कर्तव्य है। बल्कि अधिक बड़ा सत्य इसके
 विपरीत है: निश्चय ही यही स्वाभाविक है कि माता-पिता अपने
 बच्चोंकी सेवा करें, कम-से-कम उनकी अधिकतम देखभाल करें।
 यदि बच्चा स्वतंत्रतापूर्वक परिवारके लिये काम करना स्वयं पसन्द
 करे और कार्यको खेलके रूपमें करे तभी उसे ऐसा करने देना
 उचित है। और उस हालतमें भी हमें इस विषयमें सावधान रहना
 चाहिये कि किसी तरह उसके आरामका समय कम न हो जाय जो

कि उसके शरीरके समुचित रूपसे कार्य करनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

“मैं कह चुकी हूँ कि बिल्कुल छोटी उम्रसे ही बच्चोंको शारीरिक स्वास्थ्य, शक्ति-सामर्थ्य और संतुलनका आदर करना सिखाना चाहिये। सौंदर्यकी महान् आवश्यकताके ऊपर भी खूब जोर देना चाहिये। छोटे-छोटे बच्चोंमें सौंदर्यकी अभीप्सा होनी चाहिये, इसलिये नहीं कि दूसरे उससे प्रसन्न होंगे या उससे उनका नाम होगा, बल्कि स्वयं सौंदर्यके प्रेमके लिये सौंदर्यकी चाह होनी चाहिये। क्योंकि, सौंदर्य वह आदर्श है जिसे भौतिक जीवनमें सिद्ध करना है। प्रत्येक मनुष्यके अंदर यह संभावना निहित है कि वह अपने शरीरकी विभिन्न गतियोंमें सामंजस्य स्थापित करे। मनुष्यका शरीर, यदि वह अपने जीवनके आरंभसे ही शरीर-चर्चाकी किसी युक्तिपूर्ण पद्धतिका अनुसरण करे तो वह अपना सामंजस्य स्थापित कर सकता है और इस तरह सौंदर्य अभिव्यक्त करनेके योग्य हो सकता है। जब हम सर्वांगपूर्ण शिक्षाके अन्यान्य पहलुओंकी चर्चा करेंगे तब हम देखेंगे कि एक दिन यदि इस सौंदर्यको अभिव्यक्त होना है तो उसके लिये हमें किन भीतरी शक्तोंको पूरा करना होगा।

“अबतक मैंने केवल बच्चोंको दी जानेवाली शिक्षाकी बात कही है, क्योंकि उचित समयपर दिये जानेवाले उन्नत शारीरिक शिक्षणके द्वारा बहुत-से शारीरिक दोषोंको, कुरूपताओंको दूर किया जा सकता है। पर, अगर किसी कारणवश, किसीको यह शिक्षा बचपनमें न दी गयी हो तो इसका आरंभ किसी भी उम्रमें किया जा सकता है और फिर सारे जीवन इसका अनुसरण किया जा सकता है। परंतु जितनी ही देरसे हम आरंभ करेंगे उतना ही अधिक हमें बुरी आदतोंका मुकाबला करने, उन्हें सुधारने, जड़ता-कठोरताको दूर कर कोमलता-नमनीयता लाने, और विकृत अंगोंको दुरुस्त करनेके लिये तैयार रहना होगा। इस तैयारीके कामके लिये बहुत अधिक धैर्य और लगनकी आवश्यकता होगी और तब कहीं वह

नवंबर १९७७

अवस्था आयगी जब हम शरीरके आकार और उसकी गतियोंमें सामंजस्य स्थापित करनेके लिये किसी क्रियात्मक प्रोग्रामको आरंभ कर सकेंगे। परंतु जिस सौंदर्यको प्राप्त करना है उसके जीवंत आदर्शको अगर तुम अपने अंदर धारण करो तो अपने लक्ष्यपर पहुंचना तुम्हारे लिये सुनिश्चित है।”

(शिक्षा, अध्याय २)

शक्तिका भंडार

माताजीने हमें बतलाया है कि शक्तिका अक्षय भण्डार हमारे लिये सुलभ है। हमें बस उसका उपयोग करना आना चाहिये। इस विषयमें खिलाड़ीको साधनासे बहुत सहायता मिल सकती है। हमारे एक मित्र अभी हालमें अमरीकासे आये हैं। उन्हें वहां बहुतसे उच्च कोटिके खिलाड़ियोंसे मिलनेका अवसर मिला। उनका कहना है कि वे खिलाड़ी अब केवल खेल-कूदमें सफलता पाकर संतुष्ट नहीं हो जाते। वे कुछ और ढूँढ रहे हैं और वह 'कुछ और' माताजीके पास है। सुनिये :

“किसी खिलाड़ीको यौगिक साधनासे जो सबसे बड़ी सहायता मिल सकती है वह यह है कि साधना उसे यह सिखा सकती है कि विश्व ऊर्जाके अक्षय स्रोतसे शक्ति खींचकर अपनी शक्तिको नया और ताजा कैसे बनाया जा सकता है।...

“शक्तिका एक स्रोत है। एक बार उसका पता लग जाय तो फिर जीवनकी भौतिक अवस्थाएं चाहे जैसी क्यों न हों, चाहे जैसी परिस्थितियां क्यों न आ जायं, वह स्रोत कभी सूख नहीं सकता।

“कहा जा सकता है कि यह आध्यात्मिक शक्ति है जो नीचेसे, निश्चेतनाकी गहराइयोंसे नहीं, बल्कि ऊपरसे, मनुष्यों और जगत्के परम स्रोतसे, अति चेतनाके शाश्वत और सर्वशक्तिमान् वैभवोंसे आती है। वह हर जगह, हमारे चारों ओर मौजूद है और हर चीजमें

घुसी हुई है। उसके साथ नाता जोड़नेके लिये और उसे पानेके लिये इतना काफी है कि उसके लिये सचाईसे अभीप्सा की जाय, अपने-आपको पूरे श्रद्धा-विश्वासके साथ उसके प्रति खोला जाय ताकि अपनी चेतनाको इतना विशाल बनाया जा सके कि वह विश्व चेतनाके साथ एक हो सके।

“शुरूमें यह चीज असंभव नहीं तो कठिन जरूर प्रतीत हो सकती है। लेकिन अगर तथ्योंको जरा ज्यादा नजदीकसे देखा जाय तो मालूम होगा कि यह चीज इतनी पराई नहीं है। सामान्य रूपसे विकसित मानव चेतनासे इतनी दूर नहीं है। वास्तवमें ऐसे लोग बहुत कम होंगे जिन्होंने अपने जीवनमें कम-से-कम एक बार यह अनुभव न किया हो कि वे अपने-आपसे परे उठा लिये गये हैं, एक अप्रत्याशित और ऐसी असाधारण शक्तिसे भर गये हैं जो उन्हें उस समयके लिये सब कुछ करनेकी सामर्थ्य देती है। ऐसे अणोंमें कोई चीज बहुत कठिन नहीं मालूम होती और असंभव शब्द अपना अर्थ खो बैठता है।

“यह अनुभव चाहे कितना भी क्षणिक क्यों न हो, हमें उस उच्च-तर शक्तिके संपर्ककी एक झांकी दे देता है जिसे योग-साधना पाती और बनाये रखती है...”

(शक्तिका अक्षय भण्डार, बुलेटिन)

मृत्युका भय

मृत्यु हमारे सब प्रयासोंका अन्त ला देती है। अच्छे-से-अच्छे फूल क्षण-भरमें मुरझा जाते हैं। माताजी अपने बालकोंको मृत्युसे न डरनेके उपाय बताती हैं:

“सामान्यतः, मानव-प्रगतिको रोकनेवाली सबसे बड़ी बाधा शायद भय है; भयके रूप विविध तथा असंख्य होते हैं, वह अपने-आपमें विरोधयुक्त, तर्कहीन, अनुचित और प्रायः अबुद्धि-संगत होता है। मृत्युका भय सब प्रकारके भयोंमें सबसे अधिक सूक्ष्म और हठी

नवंबर १९७७

निशिखा

पानेके
जाय,
ताकि
चेतना-
सकती
य तो
रूपसे
लोग
र यह
ये हैं,
उन्हें
क्षणोंमें
अपना

उच्च-
पाती

कटिन)

अच्छे
मृत्युसे

शायद
आपमें
है।
हठी

होता है। उसकी जड़ें अचेतना तकमें गहरी पैठी होती हैं और वहांसे उन्हें उखाड़ फेंकना आसान नहीं होता। प्रत्यक्ष ही यह भय कई मिश्रित तत्त्वोंसे बना होता है; ये चीजें हैं सुरक्षाकी भावना, आत्म-रक्षाकी चिन्ता जिसका भाव होता है कि चेतनाका सूत्र लगा-तार सुनिश्चित रूपसे चलता रहे, अज्ञातके प्रति घबड़ाहट, अप्रत्याशित और अचिन्त्यसे उत्पन्न उद्वेग और शायद इस सबके पीछे कोषाणुओं-की गहराईमें छिपी हुई यह सहज-भावना काम करती है कि मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे बचा न जा सके और यह भी कि यदि कुछ शर्तें पूरी भी की जा सकें तो उसपर विजय प्राप्त की जा सकती है, यद्यपि यह सत्य है कि स्वयं भय ही इस विजयके मार्गमें एक भारी बाधा है। कारण, हम उसीपर विजय प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम डरते नहीं। और जो मृत्युसे डरता है वह पहलेसे ही मृत्युके द्वारा विजित हो चुका है।

“इस भयसे कैसे छुटकारा पाया जाय? इसके लिये कई तरीके काममें लाये जा सकते हैं। किन्तु अपने इस प्रयासके प्रारंभमें ही कुछ सहायक मूलभूत विचारोंको जान लेना आवश्यक है। पहली और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह जान लेना है कि जीवन अविभाज्य और अमर है, बस, उसके रूप अनगिनत होते हैं और वे रूप ही क्षणिक तथा नाशवान होते हैं। यह ज्ञान व्यक्तिको अपने मनमें निश्चित और स्थायी रूपमें जमा लेना चाहिये और यथासंभव अपनी चेतनाको उस नित्य जीवनके साथ एकात्म कर लेना चाहिये जो सब रूपोंसे स्वतंत्र है पर फिर भी अपने-आपको सब रूपोंमें अभिव्यक्त करता है। इससे हमें यह आवश्यक मनोवैज्ञानिक आधार मिल जाता है जहांसे समस्याका सामना किया जा सकता है, क्योंकि समस्या तो है ही न! आन्तरिक सत्ता यदि इतनी पर्याप्त मात्रामें आलोकित हो भी जाये कि वह सब भयोंसे ऊपर उठ जाय, तो भी शरीरके कोषाणुओंमें भय छिपा ही रहेगा, अस्पष्ट और स्वतः-चालित रूपमें, बुद्धिकी पकड़से परे, प्रायः निश्चेतन-सा। इन्हीं

अन्धेरी गहराइयोंमें से उसे ढूँढ़ निकालना होगा, पकड़ना होगा और उसपर चेतना तथा विश्वासका प्रकाश डालना होगा।

“अतएव, जीवनका नाश तो नहीं होता, रूप अवश्य विघटित हो जाता है और शारीरिक चेतना इसी विघटनसे भय खाती है। फिर भी, रूप लगातार परिवर्तित होते रहते हैं और कोई भी वस्तु इस परिवर्तनको प्रगतिशील होनेसे नहीं रोक सकती। यह प्रगतिशील परिवर्तन ही इस बातको संभव कर सकता है कि मृत्यु अनिवार्य न हो। पर यह कार्य है कठिन, और इसकी शर्तें बहुत कम लोग पूरी कर सकते हैं। इस प्रकार, मृत्युके भयपर विजय प्राप्त करनेकी विधि व्यक्तिके स्वरूप या उसकी चेतनाकी अवस्थाओंके अनुसार, भिन्न-भिन्न होगी।...”

(मृत्युके भयपर विजय प्राप्त करनेके चार साधन, बुलेटिन)

यौवन

लेकिन अगर वृद्धावस्था आदमीको दबोच ले तो फिर लंबे जीवनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। माताजी यौवनके बारेमें कहती हैं:

“यौवन इस बातपर निर्भर नहीं है कि हम कितने छोटे हैं, बल्कि इसपर कि हममें विकसित होनेकी क्षमता, प्रगति करनेकी योग्यता कितनी है। विकसित होनेका अर्थ है अपनी अन्तर्निहित शक्तियाँ, अपनी क्षमताएँ बढ़ाना। प्रगति करनेका अर्थ है अबतक अधिष्ठित योग्यताओंको बिना रुके निरन्तर पूर्णताकी ओर ले जाना। जरा, आयु बड़ी हो जानेसे नहीं आती, बल्कि विकसित होने और प्रगति करनेकी अयोग्यताके कारण अथवा विकसित होना और प्रगति करना अस्वीकार कर देनेके कारण आती है; मैंने २० वर्षकी आयुके वृद्ध और ७० वर्षके युवक देखे हैं। ज्यों ही मनुष्य जीवनमें स्थित हो जाने और पुराने प्रयासोंकी कमाई खानेकी इच्छा करता है, अथवा ज्यों ही मनुष्य यह सोचने लगता है कि उसे जो कुछ करना था वह उसे कर चुका और जो कुछ उसे प्राप्त करना था वह प्राप्त कर

बुका — थोड़ेमें — ज्यों ही मनुष्य प्रगति करना, पूर्णताके मार्गपर अग्रसर होना बन्द कर देता है, त्यों ही उसका पीछे हटना, बूढ़ा होना निश्चित हो जाता है।

“शरीरके विषयमें भी मनुष्य यह जान सकता है कि वास्तवमें उसकी क्षमताओंकी वृद्धि और उसके विकासकी कोई सीमा नहीं। पर यह विकास हो तभी सकता है जब मनुष्य इसकी असली पद्धति और सच्चे कारण ढूँढ निकाले। यहाँ जो हम बहुतसे परीक्षण कर रहे हैं उन्हींमेंसे एक यह शारीरिक विकास भी है। इन सबके द्वारा हम मानव जातिकी सामूहिक धारणाको निर्मूल कर संसारको यह दिखा देना चाहते हैं कि मनुष्यमें कल्पनातीत संभावनाएं निहित हैं।”

(यीवन, बुलेटिन)

सोसायटी समाचार

श्री लंका (सिलोन) में श्रीअरविन्दकी वर्षगांठ मनाई गयी। सामान्य सभामें राष्ट्रके शिक्षा मंत्री निःशंक विजयरत्नने श्रीअरविन्द की रचनाओंसे प्रेरणा लेनेको कहा। उन्होंने कहा कि एक ज्यादा अच्छे समाजके लिये हमें अपने-आपको पूर्ण बनाना होगा। श्री-अरविन्दके ही शब्दोंमें उन्होंने कहा, ‘पूर्ण मानव जगत् उन मनुष्योंसे रचित या संगठित नहीं हो सकता जो खुद अपूर्ण हों।’ श्री लंका रेडियोसे श्रीअरविन्दके बारेमें दो छोटे-छोटे भाषण सिंहल और तमिलमें प्रसारित किये गये।

साओ पोलो (ब्रेजिल) में, अगस्त में ब्रेजिलकी श्रीअरविन्द सोसायटीने ‘फूल और उनके संदेश’के स्लाइड-शोके चार कार्यक्रम प्रस्तुत किये। श्री सुनीलके संगीतके साथ माताजीके दिये हुए प्रतीकात्मक अर्थ भी दिये गये। आम जनता बहुत प्रभावित हुई।

बांग्लादेशमें, ढाकामें श्रीअरविंदकी वर्षगांठ मनायी गयी। उस अवसरपर की गयी सभाके अध्यक्ष थे डा० रासमोहन चक्रवर्ती। मुख्य अतिथि थे स्वामी अक्षरानन्द। श्री शंकर चक्रवर्ती इत्यादिने भाषण दिये।

दीनाजपुर (बांग्लादेश) में श्री ए० नन्दीने एक सार्वजनिक कार्यक्रमकी व्यवस्था की जिसमें संस्कृतमें वन्दना, श्रीअरविंदकी कविताओंका बंगला अनुवाद — पाठ और भाषण हुए।

बंगलौरमें, २४ जुलाईको शाखाने स्वाध्याय ज्ञानकी व्यवस्था की — विषय था 'जीवनका लक्ष्य'। सदस्योंने माताजी तथा श्रीअरविंदकी रचनाओंमेंसे बहुत प्रेरणाप्रद उद्धरण प्रस्तुत किये।

'क्रिश्चियन यूथ मूवमेंट' ने एक शिक्षा-सभा की जिसमें आश्रम तथा यहांके विद्यालयके बारेमें फिल्म दिखायी गयी। फिर शिक्षाकी नयी पद्धतियोंके बारेमें बातचीत हुई।

बंगलौर शाखाने महिलाओंके लिये संगीत कक्षा शुरू की है। श्रीमती ललिता उभयंकर शास्त्रीय गान सिखाती है। उसी केंद्रमें कलाकी कक्षाएं भी होती हैं।

७ अगस्तको बंगलौरके सभी केंद्रोंकी सम्मिलित सभा श्रीअरविंद मेमोरियल स्कूल, बानाशंकरीमें हुई। विद्यार्थियोंने भी उसमें भाग लिया। डा० आर० एस० मुगलीने भाषण दिया। निश्चय किया गया कि इस तरहकी सम्मिलित सभाएं नियमित रूपसे होंगी।

दिल्लीमें १५ अगस्तको श्रीअरविंद केंद्रका उद्घाटन कुतुब होटल मार्गपर हुआ। उद्घाटन भारतके उप राष्ट्रपति श्री बी. डी. जट्टीने किया और श्री कर्ण सिंहने श्रीअरविंदकी शिक्षापर भाषण दिया। वे ही कार्यक्रमके अध्यक्ष थे।

लखनऊमें १५ से २१ अगस्ततक श्रीअरविंदकी वर्षगांठ मनायी गयी। उस कार्यक्रमका उद्घाटन किया श्री अमृतलाल नागरने।

नागपुरमें भी उन्होंने पहली अगस्तसे १५ तक कार्यक्रम रखा जिसमें स्वाध्याय, भाषण और ध्यान हुए। उनके अतिरिक्त प्रतिदिन मोर-ध्यान भी होता था।

नवंबर १९७७

बंबईके 'श्री चिन्मै कालेज आफ कौमर्स'के विद्यार्थियोंने १५ अगस्त-को प्रदर्शनी की। विषय था — श्रीअरविंदकी जीवनी, उनकी रचनाएं और ओरोवील।

रांची (बिहार) में भारतीय संस्कृतिके ऐकेडमीमें श्रीअरविंद जयंती मनायी गयी।

इम्फाल (मणिपुर) में श्रीअरविंदके जन्मदिनके अवसरपर सार्वजनिक सभा हुई। श्रीमती आर. के. मुखरा देवीने, श्री शंकर सेन इत्यादियोंने भाषण दिये।

अगरतला (त्रिपुरा) में भी दो दिनका कार्य हुआ। श्री कालीपद बैनर्जी (त्रिपुराके शिक्षा मंत्री) ने श्रीअरविंदकी जीवनीपर भाषण दिया। श्रीमां जन्म शताब्दी कमिटीने 'सावित्री' पर आधारित एक नृत्य-नाटिका प्रस्तुत की।

सिलिगुड़ी (५० वं०), ऋषिकेश, देहरादून, ऊना इत्यादि शाखाओंसे भी श्रीअरविंदकी वर्षगांठ मनानेकी खबर आयी है।

तेलुगूमें श्रीअरविंदकी 'गीता-प्रबन्ध' का अनुवाद छपा है। डा. माहेश्वरीने १५ अगस्तको उसका ग्रंथ-विमोचन किया। रूपांतर कर्ता हैं: सी. नागेश्वर राव।

बम्बई विश्वविद्यालयके तत्त्वावधानमें श्री माधव पण्डितने श्रीअरविंदके बारेमें दो भाषण दिये।

घोषणा :

ओरोवीलके हाथ-बने कारखानेने आकर्षक लिफाफे, ऐलबम, लेटर-पैड इत्यादि बनाये हैं जो दफ्तरों, स्कूल और पाठशालाओं आदिके लिये उपयोगी होंगे। जो लोग इसके बारेमें जरा ज्यादा जानकारी प्राप्त करना चाहें वे निम्नलिखित पतेपर लिखें: मैनेजर, ओरोवील हैडक्वार्टर पेपर यूनिट, ओरोवील (एस्पिरेशन)-६०५१०४। ठीक दाम वगैरह पत्र-व्यवहार करनेपर बतलाये जायेंगे।

सोसायटीके नए केन्द्र :

- १) श्रीअरविंद केंद्र,
द्वारा श्री एन. रामगोपाल रेड्डी, ९-५-४१ वेंकटेश्वरालय स्ट्रीट,
सुल्लुरपेट — ५२४१२१ (आं. प्र.)
- २) श्रीअरविंद सोसायटी — एग्रीको पल्ली,
द्वारा श्री एन. जक्रवर्ती, ३२, रोड नं. १, एग्रीको,
जमशेदपुर — ८३१००९ (बिहार)
- ३) श्रीअरविंद सोसायटी केंद्र,
द्वारा श्रीमती मुक्तिश्री घोष, प्रिंसिपल, रवीन्द्र सदन गर्ल्स कालेज,
पो. ओ. करीमगंज — ७८८७१० (आसाम)
- ४) श्रीअरविंद सोसायटी केंद्र,
द्वारा श्री मधुसूदन मिश्र, मातृलीला क्षेत्र,
पी. ओ. श्रीअरविंद श्रीक्षेत्र, नुआपाड़ा — ७५४०२२ (ओड़ीसा)
- ५) श्रीअरविंद सोसायटी केंद्र,
द्वारा श्री एम. रवि कुमार, पो. ओ. साथुपल्ली — ५०७३०३ (आं. प्र.)
- ६) श्रीअरविंद सोसायटी केंद्र,
द्वारा श्री बी. बी. राजाराव, २१-१-३, सालीपेट,
पो. ओ. काकीनाड़ा — ५३३००१ (आं. प्र.)
- ७) श्रीअरविंद स्वाध्याय मण्डल,
द्वारा श्रीआनन्द प्रकाश त्यागी, पो. ओ. पुरा — २२४१७१ (उ. प्र.)

फरवरी १९७८ के लिये रहनेकी व्यवस्था

माताजीके जन्मशताब्दीके अवसरपर (फरवरी १९७८ में) दर्शनार्थियोंकी बहुत भीड़ होनेकी संभावना है। चूँकि हमारे अतिथि-गृहोंमें रहनेकी व्यवस्था बहुत सीमित है, इसलिये हम दूसरे स्थानीय होटलों और अन्य गृहोंमें जगह आरक्षित करनेके लिये वाधित हैं। वहाँकी स्वच्छता, वातावरण और सुविधाएं शायद हमारे अतिथिगृहोंके (शेष आवरण ३-४ पर)

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और स्थायी उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब खालीपन बला जायगा ।

—श्रीमां



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें :

यूनिक स्टोर्स

वास मंडी; लुधियाना

दूरमाप : २५४४७

घनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। घनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमान

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय

तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवान्नी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलित
प्लॉट क्र. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

**FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY**



Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013



बरबर
यह
चाहते
पर
ही सूच
अनुसार
आने
लिखित
१)
सूचना
२)
वन क
सोसायटी
(सिर्फ
आर्डरसे
पेशगी
और अ
पेशगी
आप
१५.१.१
जायगे
३)
से पह
भी दि
क-से
अपने
इस
भी त

बराबर न हों। लेकिन हम आपको इनकार भी करना न चाहेंगे।

यह संभव है कि आप जिस प्रकारका आवास या अतिथि-गृह चाहते थे वह सुलभ न हो। लेकिन हम अपनी ओरसे दूसरी जगह-पर व्यवस्था करनेका भरसक प्रयास करेंगे और आपको पहलेसे ही सूचना दे दी जायगी ताकि सीधे उधर जाकर अपनी सुविधाके अनुसार आप ऐकोमोडेशन सेक्शनको पहुंचनेकी खबर दे सकें। अपने रहनेकी व्यवस्थाके बारेमें निश्चित होनेके लिये आप निम्न-लिखित कार्यविधिका अवश्य अनुसरण करें:

१) ३१-१२-७७ से पहले-पहले आप हमें फार्मके अनुसार ठीक सूचना देनेकी कृपा करें। अगर आवश्यक हो तो उसकी नकल की जाये।

२) आप जितने दिन रहना चाहेंगे उतने दिनका पूरा-पूरा पेशगी धन क्रासड चैक, बैंक ड्राफ्ट या पोस्टल आर्डरके द्वारा 'श्रीअरविंद सोसायटी, ऐकोमोडेशन सेक्शन' को भेज दीजियेगा। डोमिटरी (सिर्फ सोनेकी जगह) के लिये प्रति व्यक्ति तीन रुपये रोज। मनी-आर्डरसे रकम न भेजना ज्यादा अच्छा होगा। इस तरह भेजा गया पेशगी धन वास्तविक खर्चके साथ ठीक किया जायेगा। चूंकि होटलों और अन्य स्थानोंको पहलेसे ही रुपये अदा करने पड़ते हैं इसलिये पेशगी धन वापस नहीं किया जा सकता है। बहरहाल, अगर आप अपना आरक्षण रद्द करवाना चाहें तो हमें कम-से-कम १५.१.७८ तक सूचना देनेकी कृपा करें। अन्यथा रुपये लौटाये नहीं जायेंगे।

३) आपका आवेदन-पत्र प्राप्त होनेपर हम आपको ३१.१२.७७ से पहले रहनेकी व्यवस्थाके बारेमें बता देंगे। आपको संदर्भ अंक भी दिया जायेगा। इसलिये यहां आते समय आप यह सूचना या कम-से-कम अपना ठीक-ठीक संदर्भ अंक लेते आइयेगा। और अबसे अपने पत्र-व्यवहारमें भी इसी संदर्भ अंकका उपयोग करें।

इस बातका ख्याल रखियेगा कि पूरे पेशगी धनके बिना, या किसी भी तरहसे अवूर आवेदन पत्र स्वीकार नहीं किया जायेगा।

रहनेकी व्यवस्थाके लिये आवेदन-पत्र

सेवामें :	प्रेषक :
ऐकोमोडेशन सेक्शन	नाम :
श्रीअरविंद सोसायटी	पता :
पाडिचेरी	दिन :
६०५००२	

महोदय,

मेरी सदस्यता संख्या महीने तक है। कृपया मेरे/हमारे लिये निम्नलिखित व्योरेके अनुसार रहनेकी व्यवस्था आरक्षित करें:

आनेवाले लोगोंकी संख्या.....(पुरुष....स्त्रियां....बच्चे....)
तारीख.....से तारीख.....तक।

रहनेकी कैसी व्यवस्था चाहिये: डोमिटरी (सिर्फ सोनेकी जगह)/
एक पलंगवाला कमरा/दो पलंगवाला कमरा/परिवारके लिये
कमरा/विशेष

किस दरके कमरे चाहिये: रु. से रु. तक प्रतिदिन प्रति
व्यक्ति।

क्रासड चेक/ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर संख्या ... तारीख ... बैंक...
द्वारा मैं पेशगी रु. भेजता हूं।

मैं स्वीकार करता हूं कि अगर मैं आपको १५.१.७८ से पहले
किसी परिवर्तन या रद्द करनेके बारेमें सूचना न दूं तो मेरा पेशगी
घन लौटाया नहीं जायेगा।

टिप्पणियां (अगर हों तो) :

.....
तारीख

.....
हस्ताक्षर



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

दिसंबर १९७७

वर्ष ८, अंक ५, पूर्णांक ८९

*Since the beginning of the earth,
wherever and whenever there was
the possibility of manifesting a ray
of consciousness, I was there.*

The Mother

धरतीके आरम्भसे जब कभी और जहां कहीं, चेतनाकी एक
किरण भी अभिव्यक्त करनेकी सम्भावना थी -- मैं वहां
मौजूद थी ।

-- श्रीमां

(श्रीअरविंद सोसायटी और ऐक्शनकी सम्मिलित मासिक पत्रिका)

वार्षिक चंदा ६.००

आजीवन सदस्यता १००.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट आदि भेजनेका पता :

संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

बुलेटिन आश्रमकी फ्रेंच-अंगरेजी-हिंदी त्रैमासिक पत्रिका है। माताजीकी अधिकतर चीजें पहले पहल इसीमें छपी हैं। उसमें बहुत बार माताजीके छोटे-छोटे वाक्य — पीयूष बिंदु — इधर-उधर छिटके रहते हैं। यहां उन्हें एक जगह इकट्ठा करके छापा जा रहा है। इनके बारेमें और कुछ कहना अनावश्यक है।

—संपादक

१. काम आध्यात्मिक जीवनकी दृष्टिसे, सबसे अधिक महत्त्व इसका नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, महत्त्व इसका है कि तुम कैसे कर रहे हो और किस चेतनासे कर रहे हो। हमेशा भगवान्‌को याद रखो; तुम जो कुछ करोगे वह भागवत उपस्थितिकी अभिव्यक्ति होगा।

जब तुम्हारे सभी कर्म भगवान्‌को अर्पित हों तो फिर कोई उच्च-तर क्रियाएं और निम्नतर क्रियाएं नहीं रहेंगी। सबका समान महत्त्व होगा — उनका मूल्य समर्पणपर आधारित होगा।

२. भागवत चेतना हे शान्त और निश्चल चेतना, तू संसारकी सीमाओंपर अनंतताके स्फिक्स (रहस्यमय मूर्ति) की न्याई चौकसी रखती है। फिर भी कुछ लोगोंको तू अपना रहस्य बता देती है। वे तेरा परम संकल्प बन सकते हैं जो किसी पसंदके बिना चुनता और इच्छा-कामनाके बिना कार्यान्वित करता है।

३. मिथ्यात्व अगर हम एक मिथ्यात्वको, वह चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, अपने मुख या लेखनीके द्वारा प्रकट होने दें, तो हम सत्यके आदर्श संदेशवाहक बननेकी आशा कैसे कर सकते हैं? सत्यके आदर्श सेवकको छोटी-से-छोटी अथथार्यता, अतिशयोक्ति या विकृतिसे भी बचना चाहिये।

४. सूत्रबद्ध ज्ञान अंतिम विश्लेषणमें सूत्रबद्ध ज्ञान केवल एक भाषा है जिसमें ज्ञानके विषयपर कार्य करनेकी शक्ति होती है।

५. वाणी और कर्म कथनी नहीं, करनी; घोषणा मत करो, उपलब्ध करो।

६. भौतिक चीजें अपने उपयोगमें आनेवाली भौतिक चीजोंकी देखभाल न करना निश्चेतना और अज्ञानका चिह्न है।

अगर तुम किसी भौतिक चीजकी — वह चाहे कुछ भी क्यों न हो — देखभाल नहीं करते, तो तुम्हें उसका उपयोग करनेका कोई अधिकार नहीं है।

तुम्हें उसकी देखभाल इसलिये नहीं करनी चाहिये कि तुम उससे बंधे हुए हो, बल्कि इसलिये कि वह भागवत चेतनाकी किसी चीजको अभिव्यक्त करती है।

७. अंधकारके काल अंधकारके काल बार-बार आते हैं और मामूली हैं। साधारणतः, इतना काफी है कि चिंता किये बिना शांत रहो और यह जान लो कि ये आध्यात्मिक रातें हैं जो संपूर्ण प्रकाशवाले दिनोंके साथ बारी-बारीसे आती हैं। लेकिन अगर कृतज्ञता भी छिप जाय तो अंधेरे काल ज्यादा लंबे चलते हैं। शांत रह सकनेके लिये तुम्हें अपने हृदयमें भगवान्‌के प्रति — वे जो कुछ सहायता देते हैं उसके लिये — कृतज्ञता होनी चाहिये। लेकिन एक तुरंत प्रभावकारी उपाय भी है। अपने हृदयमें हमेशा शुद्धीकरण, प्रगतिके लिये अभीप्सा और समर्पणके उत्साह एवं तीव्रताकी आग जलती रखो। जो लोग सच्चे हैं उन सबके हृदयमें यह आग जलती है। अकृतज्ञताकी राखको इसे ढक न लेने दो।

८. आंतरिक संघर्ष जबतक सत्तामें आंतरिक संघर्षकी संभावना

है, उसका अर्थ यह है कि उसके अंदर कहीं कुछ कपट है।

९. श्रीअरविंदका शरीर-त्यागका निर्णय बहुत हदतक घरती और मनुष्योंमें ग्रहणशीलताके अभावके कारण ही श्रीअरविंदको अपने शरीरके बारेमें यह निश्चय करना पड़ा। लेकिन एक बात निश्चित है। भौतिक स्तरपर जो घटना घटी है वह उनकी शिक्षाकी सचाई-पर किसी प्रकारका कोई प्रभाव नहीं डालती। उन्होंने जो कुछ कहा है वह पूर्णतया सत्य है और रहेगा। समय और घटना-क्रम इसे पूरी तरह सिद्ध कर देंगे।

१०. आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम हर जीवित सत्ताके लिये अपने-आपको जानना और अपने ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करना एक अमूल्य संपदा है। अपने-आपको जाननेका अर्थ है अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंके हेतुओंको, अपने अंदर होनेवाली हर चीजके क्यों और कैसेको जानना। आत्म-संयमका अर्थ है वही करना जो करनेका निश्चय किया है, उसके सिवाय और कुछ नहीं। अपने आवेगों, अपनी कामनाओं या सनकोंकी एक न सुनना और न उनके अनुसार चलना।

बालकको नैतिक विधान देना आदर्श वस्तु नहीं है, लेकिन उसके बिना रहना भी बहुत मुश्किल है। जैसे-जैसे बालक बढ़ता जाय, उसे यह भी सिखाया जा सकता है कि सभी नैतिक और सामाजिक विधान सापेक्ष हैं, ताकि वह अपने अंदर ज्यादा ऊंचा और ज्यादा सत्य-विधान पा सके। लेकिन यहां सावधानीके साथ चलना चाहिये और इस बातपर जोर देना चाहिये कि उस सत्य-विधानको खोजना कठिन है। जो लोग मानव विधानोंको अस्वीकार करते हैं और अपनी आजादीकी ओर अपना ही जीवन बितानेकी घोषणा करते हैं वे अपनी अति सामान्य प्राणिक गतियोंकी आज्ञा मानकर ही ऐसा करते हैं और इस बातको वे अपनी आंखोंसे न सही, दूसरोंकी आंखों-

से छिपाना और न्यायसंगत ठहराना चाहते हैं। वे नैतिकताको सिर्फ इसीलिये लात मारते हैं कि वह उनकी नैसर्गिक वृत्तियोंको तुष्ट करनेमें बाधा देती है।

किसीको नैतिक या सामाजिक विधानोंपर न्यायाधीश बनकर बैठनेका अधिकार तबतक नहीं है जबतक वह उनसे ऊपर न उठ जाय। तुम उन्हें तबतक नहीं छोड़ सकते जबतक कि उनके स्थानपर ज्यादा ऊंची चीजको न बिठा दो — और यह आसान नहीं है।

बहरहाल, वच्चेको जो सर्वोत्तम उपहार दिया जा सकता है वह यही है कि उसे अपने-आपको जानना और अपने ऊपर प्रभुत्व पाना सिखाया जाय। (जुलाई १९३०)

११. अपने-आपको और दुनियाको बदलना जबतक तुम्हारे अंदर दुनियाको बदलनेकी शक्ति न हो, तबतक यह कहना बेकार है कि दुनिया गलत है। और जो चीजें दुनियामें गलत हैं उन्हें अपने अंदरसे उठा दो तो तुम देखोगे कि दुनिया गलत नहीं रही।

१२. जीवनके दुःख जीवनके दुःखोंको उसी तरह न' लो जैसे वे दिखायी देते हैं — वास्तवमें वे अधिक बड़ी उपलब्धियोंके लिये मार्ग हैं।

१३. कोशिश करना केवल कोशिश करना काफी नहीं है, तुम्हें सफल होना चाहिये।

१४. विद्यार्थीकी प्रार्थना हमें वह वीर, योद्धा बना जो बननेके लिये हम अभीप्सा करते हैं। वर दे कि हम सफलताके साथ, डटे रहनेका प्रयास करनेवाले भूत और पैदा होनेवाले भविष्यके बीच महान् संग्राममें युद्ध कर सकें ताकि नयी वस्तुएं अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करनेके लिये तैयार हों।

दिसंबर १९७७

१५. भगवान्का अर्थ

उनके लिये जो एक शब्दसे डरते हैं

भगवान्से हमारा मतलब है, वह समस्त ज्ञान जो हमें प्राप्त करना है वह समस्त शक्ति जो हमें पानी है, वह समस्त प्रेम जो हमें बनना है, वह समस्त सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील संतुलन जिसे हमें प्रकाश और आनंदमें प्रकट करना है, वे समस्त अज्ञात और नये वैभव और दीप्तियां जिन्हें प्राप्त करना है। (७-१-५२)

१६. अपने-आपको बदलो अगर तुम दुनियाको बदलना चाहते हो तो अपने-आपको बदलो। तुम्हारा आंतरिक रूपांतर इस बातका प्रमाण हो कि सत्य चेतना भौतिक जगत्पर अधिकार कर सकती है और मागवत ऐक्य धरतीपर अभिव्यक्त किया जा सकता है।

संगठन, वे चाहे जितने विशाल और जटिल क्यों न हों, तबतक कोई स्थायी प्राप्ति नहीं कर सकते जबतक कि एक नयी शक्ति, जो अधिक दिव्य और सर्वशक्तिमान हो, संपूर्ण बनाये गये मानव यंत्रके द्वारा अभिव्यक्त न हो।

१७. कठिनाइयां और प्रगति जो पूर्णताके मार्गपर बढ़ना चाहता है उसे कभी मार्गकी कठिनाइयोंकी शिकायत न करनी चाहिये क्योंकि हर कठिनाई एक नयी प्रगतिका अवसर होती है। शिकायत करना, कमजोरी और सचाईके अभावका लक्षण है।

१८. पार्थिव प्रगति और शतें

तीन शतें

जिस कामका लक्ष्य धरतीकी प्रगति हो वह शुरू ही नहीं किया जा सकता यदि उसे भगवान्की स्वीकृति और सहायता प्राप्त न हो।

वह टिक नहीं सकता यदि प्रकृतिमें उस संकल्पको पूरा करने-वाली भौतिक प्रगति न हो।

उसे अपना उद्देश्य पूरा करनेसे पहले नष्ट नहीं किया जा सकता, जबतक कि विनाश मनुष्यकी दुर्भविनाके कारण न आये। तब मनुष्य भगवान्की उन विरोधी शक्तियोंका यंत्र बन जाता है जो उनकी अभिव्यक्ति और पृथ्वीके रूपांतरमें यथासंभव देर लगाना चाहती है।

१९. बालकका विकास बालक विकासके बारेमें चिंता नहीं करता, वह बस बढ़ता जाता है।

२०. मानव अधिकार अपनी सामान्य चेतनामें मनुष्य समान चेतना-पर दीखनेवाले किसी और मनुष्यका, चाहे वह न्यायसंगत ही क्यों न हो, अधिकार आरोपित होना नहीं स्वीकार कर सकता।

दूसरी ओर मानव अधिकारीको अपने-आपको औरोंपर आरोपित करनेके लिये पहले इस हदतक आलोकित, निष्पक्ष और निस्वार्थ होना चाहिये कि कोई समझदारीके साथ उसके मूल्यकी ओर उंगली न उठा सके।

२१. अवतार अवतारका मुख्य उद्देश्य है, मनुष्योंको यह ठोस प्रमाण देना कि भगवान् धरतीपर रह सकते हैं। (१३-१-५४)

२२. अतिमानसिक विजयकी ओर कालकी परवाह किये बिना, देशका भय किये बिना, अग्नि-परीक्षाकी ज्वालाओंमेंसे शुद्ध होकर निकलते हुए, हम बिना रुके अपने लक्ष्यकी उपलब्धि, अतिमानसिक विजयकी ओर उड़े चले जायेंगे।

२३. अवतारपर विश्वास अवतारकी संभावनामें विश्वास करने या न करनेसे स्पष्ट तथ्यमें कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर भगवान् मानव शरीरमें प्रकट होना पसंद करते हैं तो मेरी समझमें नहीं आता कि मनुष्यका विचार, उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति, उनके

निश्चयपर क्या असर डाल सकती है। और अगर वे शरीरमें जन्म लेते हैं तो मनुष्योंका इंकार उस तथ्यको तथ्य होनेसे नहीं रोक सकता। इसमें उत्तेजित होनेकी बात ही क्या है? सब प्रकारके पक्षपात और पसंदसे मुक्त पूर्ण नीरवता और शांतिमें ही चेतना सत्यके दर्शन कर सकती है।

२४. मानव संकल्प कोई मानव संकल्प अंतमें भगवान्‌के संकल्पके विरुद्ध नहीं टिक सकता। आओ, हम अपने-आपको सोच-समझकर ऐकांतिक रूपसे भगवान्‌के पक्षमें रखें। अंततोगत्वा विजय निश्चित है। (१९५५)

२५. धन एक दिन आयेगा जब इस संसारका सारा धन भगवान्‌-विरोधी शक्तियोंकी दासतासे मुक्त होकर अपने-आपको सहज रूपमें पूरी तरहसे धरतीपर भगवान्‌के कामकी सेवामें अर्पित कर देगा।
(६-१-५५)

२६. नेता

उन्हें, जिनका काम है शासन या नेतृत्व करना :

जब तुम लोगोंको खुश करना चाहते हो तो तुम चीजोंको अपनी हालतमें ही छोड़ देते हो और प्रतीक्षा करते हो कि प्रकृति उनपर अपनी प्रगति आरोपित करे। लेकिन यह सृष्टिका सत्य नहीं है। मनुष्यका सच्चा उद्देश्य है प्रकृतिपर अपनी प्रगतिको आरोपित करना।
(२-१२-५४)

२७. ध्यान हम कुछ मिनटोंके लिये नीरवतामें अपनी अंतरात्माके संगका रस लेते हुए बैठे। और हमने देखा कि अनंतताके दरवाजे हमारे आगे पूरी तरह खुले हुए हैं।
(५-१-५५)

२८. ध्वजा (१ नवंबर, १९५४, सवेरे ६. २०। भारतके

फ्रांसीसी भागके बाकी भारतके साथ मिलनेके अवसरपर 'भारतकी आध्यात्मिक ध्वजा' फहराते हुए माताजीने कहा।

हमारे लिये पहली नवंबरका गहरा अर्थ है। हमारी ध्वजाको श्रीअरविदने "संयुक्त भारतकी आध्यात्मिक ध्वजा" का नाम दिया है। उसके चतुष्कोण आकार, उसके रंग और उसकी रचनाके हर ब्योरे का प्रतीकात्मक अर्थ है। यह ध्वजा १५ अगस्त, १९४७को फहरायी गयी थी जब भारत स्वाधीन हुआ था। अब यह १ नवंबर, १९५४ को फहरायी जायेगी जब वह उपनिवेश संयुक्त भारतके साथ मिलेगी और भविष्यमें जब कभी अपने ही भागोंको पुनः प्राप्त करेगा तब यह ध्वजा फिरसे फहरायी जायगी। संसारमें संयुक्त भारतका एक विशेष मिशन है। श्रीअरविदने उसीके लिये अपनी जान निछावर कर दी और हम भी यही करनेको तैयार हैं।

२९. फ्रांस (पांडिचेरीमें फ्रांसीसी संस्थाके उद्घाटनके अवसरपर)

किसी भी देशमें बालकोंको जो सबसे अच्छी शिक्षा दी जा सकती है उसमें यह सिखाना भी आ जाता है कि उनके देशकी सच्ची प्रकृति क्या है, उसके अपने गुण कौन-से हैं, उनके राष्ट्रको जगत्में कौन-सा मिशन पूरा करना है और वैश्व वृन्दवाद्यमें उसका सच्चा स्थान कौन-सा है। उसके साथ ही दूसरे देशोंकी भूमिकाकी विस्तृत समझ भी होनी चाहिये लेकिन, नकलकी भावनासे नहीं, साथ ही, अपने देशकी प्रतिभाको आंखसे ओझल किये बिना।

फ्रांसका अर्थ था भावोंकी उदारता, विचारोंकी नवीनता और निर्भीकता और कार्यमें क्षात्र धर्म और शौर्य। फ्रांस सबका मान और सबकी प्रशंसा पाता था। इन्हीं गुणोंके कारण वह संसारमें ऊंचा उठा हुआ था।

उपयोगितावादी, हिसाबी, व्यापारिक फ्रांस, फ्रांस नहीं रहा। ये चीजें उसके सच्चे स्वभावके साथ मेल नहीं खातीं और इन्हें व्यवहारमें लाकर वह संसारमें अपना उदात्त स्थान खो रहा है।

यही बात है जो आजके बच्चोंको बताया जानी चाहिये।

(४-४-५५)

३०. स्वास्थ्य अपने जीनेके ढंगको सुधार करके ही तुम अच्छा स्वास्थ्य पानेकी आशा कर सकते हो।

३१. कविता कविता आत्माकी विषयासक्ति है।

३२. रूपांतर तुम्हें एक बात जाननी चाहिये और इसे कभी न भूलना। रूपांतरके काममें उस सबको सुरक्षित रखा जायगा जो सत्य और निष्कपट है। केवल वही लुप्त होगा जो मिथ्या और कपटपूर्ण है।

३३. नम्रता मन, प्राण और शरीरके लिये नम्र होनेका अर्थ है कि वे कभी न भूलें कि भगवान्के बिना वे कुछ नहीं जानते, वे कुछ नहीं हैं और कुछ नहीं कर सकते। भगवान्के बिना वे केवल अविद्या, अस्तव्यस्तता और अशक्ति हैं। केवल भगवान् ही सत्य, जीवन, शक्ति, प्रेम और आनंद हैं।

इसलिये मन, शरीर और प्राणको पूरी तरह, हमेशाके लिये यह सीखना और अनुभव करना चाहिये कि वे भगवान्को केवल उनके तत्त्वमें ही नहीं, बल्कि उनकी क्रिया और अभिव्यक्तिमें भी समझने और उनका मूल्यांकन करनेमें पूरी तरह असमर्थ हैं।

यही सच्ची नम्रता है, इसके साथ शांति और अचंचलता आते हैं।

यह विरोधी आक्रमणोंके विरुद्ध सबसे सुरक्षित ढाल है। वास्तवमें, मनुष्यमें घमंड ही वह दरवाजा है जिसे विरोधी खटखटाता है क्योंकि यही दरवाजा खुलकर उसे अंदर आने देता है।

३४. जीवन, मरण, प्रगति जो चीज जीवनमें नहीं पायी या जीती

जा सकती वह निश्चय ही मरनेपर नहीं पायी जा सकती। भौतिक जीवन प्रगति और उपलब्धिके लिये सच्चा क्षेत्र है।

३५. २९ फरवरी — २९ मार्च प्रभो, तुने इच्छा की है और मैं कार्यान्वित करती हूँ।

धरतीपर एक नया प्रकाश फूटता है।

एक नया जगत् जन्मा है।

जिन बातोंके लिये प्रतिज्ञा की गयी थी, वे पूरी हो गयी हैं।

३६. अतिमानसकी अभिव्यक्ति धरतीपर अतिमानसकी अभिव्यक्ति अब केवल प्रतिज्ञा नहीं, जीवन्त तथ्य और वास्तविकता है।

वह यहां क्रियाशील है। एक दिन आयेगा जब अंधे-से-अंधे, अधिक-से-अधिक अचेतन और अधिक-से-अधिक अनिच्छुकोंको भी उसे स्वीकारना होगा। (२४-४-१९५६)

३७. सोवियेटके खिलाड़ियोंको (२, ३ अप्रैल, १९५६ को सोवियेट व्यायाम प्रदर्शनके बाद माताजीका संदेश) :

भाइयो, हम तुम्हारा अभिवादन करते हैं। हम जिस शारीरिक पूर्णताके लिये अभीप्सा करते हैं, तुम उसके मार्गपर इतने आगे बढ़ चुके हो। आश्रममें हम लोगोंके बीच तुम्हारा स्वागत है। हमें विश्वास है कि आज महान् मानव परिवारकी एकताके लिये एक और कदम बढ़ाया गया है।

३८. स्मृतियां स्मृतियोंके जादूसे सावधान। पुराने अनुभव जो चीज छोड़ जाते हैं वह हैं चेतनाके विकासपर उनका असर। लेकिन जब तुम अपने-आपको उसी तरहकी स्थितियोंमें रखकर फिरसे उसी स्मृतिमें रहना चाहो तो जल्दी ही यह पता लग जाता है कि वे अपनी शक्ति

और जादूसे वंचित हैं, क्योंकि वे प्रगतिके लिये अपनी उपयोगिता को चुकी हैं।

३९. बाहरी चीज या परिस्थिति यह मानना कि कोई बाहरी चीज या परिस्थिति किसी चीजका कारण हो सकती है — एक भूल या अंधविश्वास है। सभी चीजें या परिस्थितियां परदेके पीछेसे काम करनेवाली एक शक्तिके युगपत् परिणाम हैं।

शक्ति क्रिया करती है और हर चीज अपनी प्रकृतिके अनुसार प्रतिक्रिया करती है।

४०. निम्न गतियां यह अनिवार्य है कि तुम अपनी सत्ताकी निम्न गतियोंसे अनासक्त और वैज्ञानिक रूपमें, अंतर्दृष्टि और कुशाग्र बुद्धिवाले साक्षीकी तरह देख सको। लेकिन इन गतियोंको कभी इस तरह प्रकट होने या हठ करनेका अवसर न दो, मानों उन्हें प्रकट होनेका और दाकी सत्तापर शासन करनेका अधिकार हो। दूसरे शब्दोंमें, तुम्हें कभी इन गतियोंके आवेशमें आकर काम न करना चाहिये, कभी उनकी प्रेरणाओंको वाणी या क्रियामें अनूदित न होने दो, कभी उनकी आज्ञाओंको किसी भीतरि या बाहरी इंगितद्वारा पालन न होने दो।

४१. सुंदरता भौतिक जगत्में, और सब चीजोंकी अपेक्षा, सुन्दरता, भगवान्को सबसे अच्छी तरह व्यक्त करती है। भौतिक जगत् रूपका जगत् है और रूपकी पूर्णता ही सुन्दरता है। सुन्दरता शाश्वतको प्रतिपादित करती, प्रकट और अभिव्यक्त करती है। उसका काम है समस्त अभिव्यक्त प्रकृतिको, रूपकी पूर्णताद्वारा, सामंजस्यद्वारा और एक ऐसे आदर्शके द्वारा जो ऊपर उठाता है और किसी उच्चतर वस्तुकी ओर ले जाता है, शाश्वतके संपर्कमें लाना।

४२. कठिनाइयां कठिनाइयोंका पहलेसे अनुमान करना उनके आनेमें सहायता देता है।

भगवान्की कृपापर पूर्ण विश्वासके साथ हमेशा अच्छे-से-अच्छेका पूर्वज्ञान या अनुमान करना धरतीपर अतिमानसके काममें प्रभावशाली रूपसे सहयोग देना है।

४३. पुराने और नये विचार प्रगति करनेके लिये तुम्हें सभी पुरानी रचनाओंको फेंक देना चाहिये, सभी पूर्वकल्पित विचारोंको ढा देना चाहिये। पूर्व कल्पित विचार मनकी अनगिनत रचनाएं हैं जिनमें तुम निवास करते हो, जो एकदम दृढ़ हैं। उनमें नमनीयता नहीं होती और इसलिये प्रगति नहीं हो सकती। इस सबको निकाल फेंकना होगा। तब नये भाव जन्मेंगे, सक्रिय विचार जन्मेंगे जो सर्जनात्मक होंगे।

४४. अशुभपर विजय अशुभकी शक्तिसे बड़ी शक्ति ही विजय प्राप्त कर सकती है। सूलीपर चढ़ा हुआ शरीर नहीं, महिमा-मंडित शरीर ही संसारकी रक्षा करेगा। (१९५०)

४५. बाहरी रूप और वास्तविकता यदि हम बाहरी रूपोंको अपने-आपमें, स्वयं अपने ही लिये नहीं, केवल बाहरी रूप-रंगमें नहीं, बल्कि एक ज्यादा गहरी और स्थायी सद्बस्तुकी अभिव्यक्तिके रूपमें देखें तो हर चीज, हर एक परिस्थिति और हर एक घटना, उस शक्तिका प्रतीक बन जाती है जो पीछे रहती और उन्हें अपनी आत्माभिव्यक्ति-के लिये काममें लाती है।

चेतनाकी एक विशेष स्थितिके लिये कोई परिस्थिति, कोई शक्ति, कोई क्रिया, कोई गति ऐसी नहीं है जो अधिक गभीर, अधिक ऊंची, अधिक स्थायी, अधिक तात्त्विक और अधिक सत्य सद्बस्तुकी अभिव्यक्ति न हो।

दिसंबर १९७७

४६. नीरवता और शब्द शब्दोंसे हम कभी-कभी समझ सकते हैं, केवल नीरवतामें ही जान सकते हैं।

४७. होना और दिखावा कोई महत्वाकांक्षा न रखो : सबसे बढ़-कर किसी चीजका दावा न करो। हर क्षण, तुम जो हो सकते हो, उसमें ऊंचे-से-ऊंचे रहो।

४८. बुरी भावनाएं बुरे विचार बुरी भावनाएं लाते हैं — बुरी भावनाएं तुम्हें भगवान्से दूर ले जाती हैं और अरक्षित रूपमें असुर-बाहोंमें फेंक देती हैं जो तुम्हें निगल जाना चाहता है और यही अनंत दुःखों और कष्टोंका स्रोत है।

४९. भागवत-कृपाको अस्वीकार करना भगवान्से मुंह मोड़ लेना और भागवत कृपाको नकारना, तुम जो कुछ कर सकते हो उसमें सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण यही है।

५०. गूढ़ शिक्षा प्राचीनकालमें महान् आध्यात्मिक सत्योंकी शिक्षा गूढ़ शिक्षा होती थी जो थोड़े-से दीक्षित लोगोंतक ही सीमित रहती थी। अब भी ऐसी चीजें कही जाती हैं लेकिन उन्हें लिखा नहीं जा सकता। छापनेकी तो बात ही कहां है।

५१. तर्कबुद्धि और आवेग जिनका जीवन तर्कबुद्धिसे शासित है उनकी कही गयी बातपर ध्यान किया जाता है लेकिन उन लोगों-के तथाकथित निश्चयोंको कैसे महत्त्व दिया जाय जो अपने आवेगों-की सनकके शिकार होते हैं।

५२. नींदसे पहले आराम नींदसे पहले आराम — स्वप्नमें जो चीजें की जा सकती हैं उनका कहीं अंत नहीं। लेकिन एक बात

बहुत महत्वपूर्ण है : जब तुम बहुत थके हुए हो तो कभी मत सोओ। अगर तुम ऐसा करो तो तुम निश्चेतनामें जा गिरते हो और स्वप्न तुम्हारे साथ मनमानी करते हैं, तुम उनपर जरा भी अधिकार नहीं रख सकते। जैसे भोजनसे पहले हमेशा आराम करना चाहिये, उसी तरह मैं तुम सबको सलाह दूंगी कि सोनेसे पहले आराम करो। लेकिन तुम्हें आराम करना आना चाहिये।

यह करनेके बहुत-से ढंग हैं। उनमेंसे एक यह है। अपने शरीर-को विस्तर या आराम कुर्सीपर आरामसे लिटा दो। फिर अपनी स्नायुओंको एक-एक करके या सबको एक साथ ढीला छोड़ो, यहां-तक कि तुम पूरी तरह शिथिल हो जाओ। यह करके, जब तुम्हारा शरीर एक ढीले कपड़ेकी तरह पड़ा हो, अपने दिमागको चुप और निष्क्रिय करो, यहांतक कि वह अपने बारेमें भी सचेतन न रहे। तब धीरे-धीरे इस अवस्थामेंसे सूक्ष्म रीतिसे निद्रामें चले जाओ। अगले दिन तुम जब उठोगे तो अपने-आपको शक्तिसे भरपूर पाओगे। इसके विपरीत, अगर तुम अपने-आपको शिथिल किये बिना, थके हुए ही सो जाओ तो तुम भारी, घन और अचेतन निद्रामें जा पड़ोगे जिसमें प्राण अपनी सभी शक्तियोंको खो देगा।

हो सकता है तुम्हें तुरंत परिणाम न मिले लेकिन लगे रहो।

५३. कठिनाई और प्रगति हर बार जब तुम्हें कोई प्रगति करनी होती है तो तुम्हें एक परीक्षा पास करनी पड़ती है।

५४. अपने-आपको विस्तृत करो, विश्वके अंतिम छोरतक ... और उसके भी परे।

प्रगतिकी हर आवश्यकताको अपने ऊपर ले लो और ऐक्यके आनंदमें उस सबका हल करो। तब तुम भगवान् बन जाओगे।

(१३-११-५०)

५५. श्रद्धा भौतिक प्रमाणोंपर आधारित श्रद्धा श्रद्धा नहीं है —
— यह व्यापार है।

५६. अतिमानसिक संकल्प पिछली रात मुझे इसका अंतर्दर्शन हुआ कि यदि पर्याप्त रूपसे तैयार नहीं हुए तो अतिमानसिक जगत् कैसा होगा। आज धरतीपर जो अस्तव्यस्तता है वह उस समय जो हो सकती है उसकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। जरा कल्पना करो एक दृढ़ संकल्पकी जिसमें भौतिक द्रव्यमें अपनी मरजीके मुताबिक बन जानेकी शक्ति हो ! यदि सामूहिक एकताकी भावना बढ़ती हुई शक्तिके अनुपातमें न बढ़े तो उसके परिणामस्वरूप जो संघर्ष होगा वह हमारे वर्तमान भौतिक संघर्षोंकी अपेक्षा बहुत अधिक तीव्र और अस्तव्यस्त होगा।

५७. अहंकार और अंतरात्मा अहंकार उसके 'बारेमें सोचता है जो उसे चाहिये पर मिलता नहीं। वह उसीमें तन्मय रहता है।

अंतरात्मा जानती है कि वह क्या पा रही है और वह अनंत कृतज्ञतामें निवास करती है।

५८. बाहरी परिवर्तन जब तुम्हें बाहरी परिवर्तनकी आवश्यकता हो तो इसका मतलब है कि तुम अंदरसे प्रगति नहीं कर रहे। क्योंकि जो अंदरसे प्रगति करता है वह एक-सी बाहरी परिस्थितियोंमें रह सकता है। ये परिस्थितियाँ उसे हमेशा नये-नये सत्य दिखाती रहती हैं।

सभी बाहरी परिवर्तन आंतरिक रूपांतरके सहज और अनिवार्य आविर्भाव होने चाहिये। साधारणतः भौतिक जीवनकी परिस्थितियोंके सभी सुधार, अंदर प्राप्त की गयी प्रगतिके बाहरी फूलोंके खिलनेके समान होना चाहिये।

५९. कृपाकी मुक्तिदायिनी क्रिया घरतीपर मनुष्योंके बीच भागवत कृपाकी मुक्तिदायिनी क्रियाके दो परस्पर पूरक पक्ष हैं। ये दोनों पक्ष समान रूपसे अनिवार्य हैं पर दोनोंका समान रूपसे मूल्यांकन नहीं होता। परम निर्विकार शान्ति जो चिंता, तनाव और कष्टोंसे छुटकारा देती है।

क्रियाशील, सर्वशक्तिमान प्रगति जो वेड़ियों, बंधनों और जड़तासे छुटकारा दिलाती है।

शांतिको सब जगह मान दिया जाता और दिव्य माना जाता है परंतु प्रगतिका स्वागत वही करते हैं जिनकी अभीप्सा तीव्र और साहसपूर्ण हो।

६०. सचाई और मिथ्यात्व जब तुम्हें यह विश्वास हो कि तुमने पूरी-पूरी सचाई प्राप्त कर ली है तो निश्चय जानो कि तुम मिथ्यात्वमें जा डूबे हो।

६१. सृष्टिका प्रयोजन सब कुछ सोच-विचार कर, दुनिया जैसी है उसे देखते हुए, और यह देखकर कि शायद असाध्य रूपसे उसे ऐसा ही रहना पड़ेगा, मानव बुद्धिने यह फैसला सुना दिया कि यह जगत् भगवान्की भूल है और इसकी अभिव्यक्ति या सृष्टि केवल कामनाका परिणाम है — आत्म-ज्ञानकी इच्छा, आत्मभिव्यक्तिकी इच्छा, आत्म-भोगकी इच्छा। बस करने लायक काम एक ही है, इच्छा-कामना और उसके परिणामोंको अस्वीकार करके इस भूलको जल्दी-से-जल्दी समाप्त कर दिया जाय।

लेकिन परम प्रभु उत्तर देते हैं कि यह प्रहसन अभी पूरा समाप्त नहीं हुआ है, वे कहते हैं अंतिम दृश्यतक प्रतीक्षा करो शायद तुम अपनी राय बदल दो।

६२. चिकित्सा विज्ञान अगर हम मानव शरीरको भगवान्का मंदिर

मानें तो चिकित्सा-विज्ञान पूजाका विधि-विधान है और चिकित्सक मंदिरके पुजारी।

इस तरह सोचा जाय तो चिकित्सकका पेशा है पुरोहिताई और उसे ऐसा ही मानना चाहिये।

६३. आत्म-ज्ञान व आत्म-संयम पहले अपने-आपको पूरी तरह जानना सीखो और तब अपने ऊपर पूरी तरह अधिकार करना सीखो। तुम हर क्षण अभीप्सा करके ही यह कर पाओगे।

६४. प्रगति और आस-पासके लोग हमारे चारों ओरके लोगोंमेंसे हर एक, यदि हम बहुत सतर्क हों तो, एक ऐसा आईना हो सकता है जिसमें हमारी सत्ताके एक या अधिक पक्ष प्रतिबिंबित होते हैं। अगर हम इससे लाभ उठाना जानें तो यह हमारी प्रगतिके लिये सशक्त सहायता है। और जब आईना सच्चा और सद्भावनापूर्ण हो तो सहायताका मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

६५. नया जगत् निश्चेतनकी तलीमें जहां वह बहुत कठोर, संकरी, अनम्य और घोटनेवाली है, मैं एक ऐसी सर्वशक्तिमान कमानीसे टकरायी जिसने मुझे तुरंत निराकार निःसीम बृहत्में उठा फेंका जो एक नये जगत्के बीजोंसे स्पंदित हो रहा था।

६६. महासरस्वतीका उद्देश्य महासरस्वतीका उद्देश्य है जगत्को पूर्णताकी आवश्यकताके प्रति जगाना। स्वयं पूर्णता केवल परम प्रभुके पास है। और कोई तो जान भी नहीं सकता कि वह है क्या।

६७. कठिनाइयोंका उपयोग कठिनाइयां हमारे पास केवल इसीलिये भेजी जाती हैं कि वे हमारी उपलब्धिको अधिक पूर्ण बना दें।

जब-जब हम किसी उपलब्धि के लिये कोशिश करते हैं और हमारे सामने प्रतिरोध, बाधा या असफलता आती है — जो असफलता दीखती है — तो हमें यह जानना चाहिये और इस बात को कभी न भूलना चाहिये कि वह शुद्ध रूपसे, पूर्णतया, इसीलिये आयी है कि हमारी उपलब्धि अधिक पूर्ण हो सके !

इसलिये उदास होने, हतोत्साह होने या बेचैन होने, अपने-आप को बुरा-मला कहने और यह कहनेकी आदत : “आह ! मैंने फिर से यह भद्दी भूल कर डाली,” एकदमसे भूलना-भरी है।

बस यही कहो : “हम अपने-आप नहीं जानते कि चीजें किस तरह की जानी चाहिये। हां, चीजें हमारे लिये कर दी जाती हैं, फिर चाहे जो हो।” अगर हम बस इतना देख पाते कि जो चीज कठिनाई, भद्दी भूल, असफलता या बाधा रूपमें दीखती है वह हमें सहायता करनेके लिये आयी है ताकि हमारी उपलब्धि अधिक पूर्ण हो सके।

एक बार यह जान लो तो सब कुछ आसान हो जाता है।

६८. शुभ कामना सब प्रकारकी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओंसे मुक्त; स्पष्टदर्शी, व्यापक और अथक; शुभ-कामना भगवान्से प्रेम करनेका और घरतीपर उनकी सेवा करनेका सबसे अच्छा तरीका है।

मेरा मतलब है विचारों और वाणीमें सच्ची और सहज शुभ-कामनासे, उस शुभ-कामनासे नहीं जो क्रियामें दिखावा करती है और जिसके साथ प्रायः ही एक भयंकर प्रकारकी “कृपासे झुकती हुई श्रेष्ठता”का भाव रहता है, जो मुख्य रूपसे मानव अहंमन्यताका मंच होती है।

६९. प्रगतिकी प्यास हमें आगे चलना चाहिये, हमें प्रगति करनी चाहिये, ज्यादा ऊंचाइयोंकी ओर उठना चाहिये, सभी सुख और

व्यक्तिगत भलाईकी भूखी मांगोंसे परे जाना चाहिये, किसी दंडके भयसे नहीं, परलोकमें दंडके भयसे भी नहीं, बल्कि सौंदर्यकी नयी भावनाके विकासके द्वारा, सत्य और ज्योतिके लिये प्यासके द्वारा और यह समझ लेनेके द्वारा कि केवल अपने-आपको विस्तृत करने, आलोकित करने, अपने अंदर प्रगतिका उत्साह सुलगानेसे आदमी साथ-ही-साथ आंतरिक शांति और स्थायी सुख-सौभाग्य पा सकता है।

आदमीको ऊपर उठना और अपने-आपको विस्तृत करना चाहिये ... ऊपर उठना ... और अपने-आपको विस्तृत करना ...

७०. सुंदरता अपने अंदर संपूर्ण सामंजस्य स्थापित करो ताकि समय आनेपर संपूर्ण सौंदर्य अपने-आपको तुम्हारे शरीरके द्वारा प्रकट कर सके।

७१. अवतार संभवनकी अनंततामें हर अवतार भावी पूर्णतर उपलब्धियोंकी घोषणा करनेवाला और अग्रदूत ही होता है।

फिर भी मनुष्योंमें हमेशा भविष्यके अवतारके विरुद्ध भूतके अवतारको देवता बनाकर पूजनेकी प्रवृत्ति होती है।

अब फिरसे श्रीअरविद जगत्के सामने आगामी कलकी उपलब्धिकी घोषणा करने आये हैं और फिरसे उनके संदेशका वैसा ही विरोध हो रहा है जैसा पहलेके लोगोंका हुआ था।

लेकिन आनेवाला कल उनके द्वारा प्रकट किये गये संदेशके सत्यको सिद्ध करेगा और उनका कार्य पूरा होगा।

७२. निष्ठा निष्ठा सफलताका निश्चित आधार है।

७३. मानव, अहंकारमय प्रेम मानव प्रेमकी आवश्यकता, जब वह केवल प्रकृतिके आवेश या प्राणिक आकर्षणका आज्ञाकारी न हो, एक

ऐसी आवश्यकता है जो एक भगवान्को बस अपना ही बनाकर रखना चाहती है, एक ऐसा भगवान् जो ऐकांतिक रूपसे उसका अपना हो, जो उसकी निजी संपत्ति हो जिसे वह अपने-आपको पूरी तरह समर्पित करता है, पर इस शर्तपर कि बदलेमें भगवान् भी उसी तरह अपने-आपको दें।

भगवान्की तरह अपने-आपको विस्तृत करनेकी जगह, सृष्टिके समान विशाल प्रेम रखनेकी जगह व्यक्ति भगवान्को अपने आकारका बनाना चाहता है और चाहता है कि भगवान्का प्रेम बस उसीके लिये रहे।

इसलिये मानव प्रेम अंतरात्माकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि कुछ समयके लिये अहंकारको दी गयी एक छूट है।

७४. याद और आसक्ति याद आसक्तिकी भयंकर साथिन है।

७५. प्रेम, अधिकार लोग हमेशा प्रेमके अधिकारकी बात करते हैं, लेकिन प्रेमका एकमात्र अधिकार है अपने-आपको देनेका।

७६. ऐथलेटिक प्रतियोगिता भौतिक आंखें जिन बाह्य रूपोंको देख सकती हैं उनके पीछे एक यथार्थता है जो बहुत अधिक ठोस और स्थायी है। इसी यथार्थतामें आज मैं तुम्हारे साथ हूँ और ऐथलेटिक्सके दिनोंमें रहूंगी। बल, शक्ति, चेतना और ज्योति हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे और हर एकको उसकी ग्रहणशीलताके अनुसार अपने प्रयासमें सफलता और सभी सच्चे प्रयासोंका शीर्षस्थ परिणाम — प्रगति — देंगे।

७७. पूर्णता जानना अच्छा है, जीना ज्यादा अच्छा है, होना — यह पूर्णता है।

७८. जिम्नास्टिक प्रतियोगिताओंके लिये संदेश : मैंने ऐथलेटिक्स-की प्रतियोगिताओंके समय जो कहा था वही जिम्नास्टिक्सकी प्रतियोगिताओंपर लागू होता है। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूंगी, तुम्हारे प्रयासोंमें सहायता करूंगी और तुम्हारे प्रदर्शनोंमें रस लूंगी।
आशीर्वाद सहित।

७९. नमनीयता भगवान्के प्रति नमनीय होनेका अर्थ है उनके विरुद्ध पूर्व कल्पित विचारों और कट्टर सिद्धांतोंको न खड़ा करना। और उसके लिये बहुत बलकी आवश्यकता है। जितना तुम भगवान्की इच्छा-शक्तिके प्रति नमनीय होना चाहोगे उतना ही उन मानव इच्छा-शक्तियोंके साथ संघर्ष बढ़ेगा जो भगवान्की इच्छाके साथ संपर्कमें नहीं हैं।

८०. विभिन्नता विश्वमें कोई दो संयोग एक जैसे नहीं हैं, कोई दो गतियां एक जैसी नहीं हैं। किसी भी चीजकी ठीक प्रतिकृति नहीं होती। सादृश्य होते हैं, समानताएं होती हैं, परिवार होते हैं, गतियोंके परिवार होते हैं जिन्हें स्पंदनोंका परिवार कहा जा सकता है। लेकिन कोई दो चीजें देश या कालमें अभिन्न नहीं होतीं। कोई चीज नहीं दोहरायी जाती, वरना कोई अभिव्यक्ति न होगी, कोई संभवन न होगा, केवल एक ही सृष्टि होगी, एक अकेली चीज होगी।

अभिव्यक्ति ठीक यही विभिन्नता है। एकमेव अपने-आपको बहु-में फैलाता है — और इसका कोई अंत नहीं।

८१. स्वर्णिम दिवस अबसे २९ फरवरी परमप्रभुका दिन होगा।

८२. पढ़ना जो पढ़ते हो गंभीरतासे पढ़ो, और अगर अच्छी तरह समझमें न आये तो दोबारा पढ़ो।

८३. सत्यमें जीना अंतिम दृष्टिकोणसे सभी सिद्धांत, सभी शिक्षाएं देखने और करनेके तरीकोंके सिवा कुछ नहीं है। ऊंचे-से-ऊंचे अंतः-प्रकाश भी उनके साथ आनेवाली उपलब्धिकी शक्तिसे अधिक मूल्य नहीं रखते।

परम सत्यमें जीना, भले वह क्षण-भरके लिये हो, उसे पानेकी विधियों और प्रक्रियाओंपर लिखी गयी पुस्तकोंके पढ़ने या लिखनेसे ज्यादा मूल्यवान् है।

८४. धनका उपयोग सबसे पहले, आर्थिक दृष्टिकोणसे, जिस सिद्धांतपर हमारा कार्य खड़ा है वह यह है कि धन और अधिक धन लानेके लिये नहीं है। धनसे धन कमानेका यह विचार मिथ्यात्व और विकृति है। धन किसी दल, किसी देश और ज्यादा अच्छा तो यह है कि समस्त पृथ्वीकी संपदा और उत्पादकता बढ़ानेके लिये है। धन एक साधन है, एक बल, एक शक्ति है, अपने-आपमें लक्ष्य नहीं है। सभी बलों और शक्तियोंकी तरह सक्रियता और संचारमें ही उसकी वृद्धि होती है, उसमें तीव्रता आती है, संचय करने और गतिरोधसे नहीं।

हम यहां, एक ठोस उदाहरणके द्वारा यह प्रमाणित करनेकी कोशिश कर रहे हैं कि किसी आंतरिक मनोवैज्ञानिक सिद्धि और बाह्य संगठनके द्वारा एक ऐसा जगत् बनाया जा सकता है जहां मानव दुःख-दार्ष्टिक्यके अधिकतर कारणोंका अस्तित्व न रहेगा।

८५. आनंदकी सृष्टि आनंदकी यह अद्भुत सृष्टि, धरतीपर उतरने-के लिये हमारी पुकारकी प्रतीक्षामें हमारे द्वारपर खड़ी है।

८६. एकता और एकरूपता एकरूपताके द्वारा एकता नहीं प्राप्त की जाती। कार्यक्रमों और पद्धतियोंकी एकरूपताके द्वारा शिक्षाकी एकता नहीं प्राप्त होगी।

एकता प्रश्नकी मांगके अनुसार मौन या प्रकट रूपसे केंद्रीय आदर्श, केंद्रीय शक्ति या ज्योति — शिक्षाके उद्देश्य या लक्ष्य — के साथ सतत संपर्कके द्वारा ही आ सकती है।

सत्य और परम एकता अपने-आपको विविधताके द्वारा प्रकट करती है। मानसिक तर्क ही अभिन्नताकी मांग करता है।

क्रियात्मक रूपमें हर एकको अपनी ही पद्धति — जिसे वह समझता और अनुभव करता हो — खोजनी और काममें लगानी होगी। इस तरीकेसे शिक्षा प्रभावकारी हो सकती है।

८७. प्रेमकी प्यास स्नेह और प्रेमकी प्यास एक मानव आवश्यकता है, लेकिन वह तभी शांत हो सकती है जब वह भगवान्की ओर मुड़े। जबतक वह मानव सत्ताओंमें तृप्ति ढूँढती रहेगी तबतक उसे हमेशा निराश होना और चोट खाना पड़ेगा।

८८. विश्व इतिहासमें श्रीअरविंद श्रीअरविंद विश्व इतिहासमें जिस चीजके प्रतिनिधि हैं वह कोई शिक्षा नहीं है, कोई अंतःप्रकाश भी नहीं है। वह सीधी परम प्रभुसे आनेवाली निर्णायक क्रिया है। और मैं उस क्रियाको पूरा करनेकी कोशिश कर रही हूँ।

८९. शारीरिक शिक्षणके कप्तानोंको तुम एक विशिष्ट वर्गके हो सकते हो और तुम्हें होना चाहिये। मेरा ख्याल था कि आश्रममें एक केंद्र होना चाहिये जिसके चारों ओर सब कुछ संगठित हो। शारीरिक शिक्षणके कप्तान शारीरिक शिक्षणके केंद्र हो सकते हैं, अधिक संख्या होनेकी जरूरत नहीं, लेकिन चुनाव अच्छा होना चाहिये, प्रथम कोटिके लोग, अतिमानवताके सच्चे उम्मीदवार, जो अपने-आपको पूरी तरहसे, बिना कुछ बचाये, खुलकर भगवान्के कामके लिये दे सकें। तुमसे यह आशा की जाती है, यही तुम्हारा कार्यक्रम होना चाहिये।

१०. (२४ अप्रैल, १९६१ को कप्तानों ने माताजीसे एक सम्मिलित प्रार्थना की थी। यह उसका उत्तर है :)

हम सब एक ही लक्ष्यके लिये, एक ही उपलब्धि के लिये इकट्ठे हुए हैं। यह अनोखा और नया काम है जो भागवत कृपाने हमें पूरा करनेके लिये सौंपा है। मैं आशा करती हूँ कि तुम इस कामके असाधारण महत्त्वको अधिकाधिक समझोगे और अपने अंदर इसकी उपलब्धिसे मिलनेवाले परम आनंदको अपने अंदर अनुभव करोगे।

भागवत शक्ति तुम्हारे साथ है — उसकी उपस्थितिको अधिकाधिक अनुभव करो। इस बातका बहुत ध्यान रखो कि उसके साथ विश्वासघात न करो।

अनुभव करो, चाहो और ऐसे कर्म करो कि तुम नये जगत्को उपलब्ध करनेवाली नयी सत्ताओंमेंसे होओ। इसके लिये मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे।

११. शिक्षा हम यहां इसलिये नहीं है कि जो कुछ और लोग कर रहे हैं उसीको उनसे जरा अच्छा कर लें। हम यहां वह करनेके लिये हैं जिसे और लोग नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें इस बातका ख्याल भी नहीं है कि यह किया जा सकता है।

हम यहां भविष्यके बालकोंके लिये भविष्यका मार्ग खोलनेके लिये हैं।

इसके सिवा और कोई चीज कष्ट उठाने लायक नहीं है और श्रीअरविंदकी सहायताके योग्य नहीं है।

१२. बीमारी सत्य परम सामंजस्य और परम आनंद है।

सभी अव्यवस्था, सभी दुःखःकष्ट मिथ्यात्व हैं।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि रोग शरीरका मिथ्यात्व है और फलस्वरूप चिकित्सक उस महान् और उदात्त सेनाके सिपाही हैं जो संसारमें सत्यके लिये लड़ रही हैं।

१३. काम कार्यमें पूर्णताकी अभीप्सा सच्ची आध्यात्मिकता है।

१४. काम तुम जो भी काम करो, जितनी पूर्णतासे कर सकते हो करो। यही मनुष्यके अंदर भगवान्की सबसे अच्छी सेवा है।

१५. काम सबसे अच्छा उपाय यह है कि अपने बारेमें, अपने दोषों और कठिनाइयोंके बारेमें सोचना बंद कर दो।

हम केवल उस महान् कार्यके बारेमें सोचें जो हमें करना है, उस आदर्शके बारेमें सोचें जो श्रीअरविन्दने हमें उपलब्ध करनेके लिये दिया है। कर्मके बारेमें सोचें, हम उसे कैसे करते हैं इसके बारेमें नहीं।

१६. पूर्णता हमें पूर्णताकी प्यास है। लेकिन उस मानवपूर्णताकी नहीं जो अहंकारकी पूर्णता है और दिव्य पूर्णतामें बांधा देती है।

उस एकमात्र पूर्णताकी प्यास है जिसमें शाश्वत सत्यको घरतीपर अभिव्यक्त करनेकी शक्ति है।

१७. कठिनाई अगर प्रभु तुम्हारे लिये दुःख और कठिनाई चाहते हैं तो विरोध मत करो। उसे आशीर्वादके रूपमें लो और वास्तवमें वह आशीर्वाद बन जायगी।

१८. श्रीअरविन्द सोसायटीके पहले वार्षिक अधिवेशनके लिये संदेश : सच्ची सम्पदा है उचित प्रकारसे खर्च करना।

तुम सचमुच अभीर तब होते हो जब अपने धनको अच्छे-से-अच्छे तरीकेसे खर्च करो।

१९. श्रद्धा भागवत कृपापर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास ही, अंतिम विश्लेषणमें, सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है।

१००. अहंकार और प्रेम जबतक अहंकार है, आदमी प्रेम नहीं कर सकता ।

केवल प्रेम ही प्रेम कर सकता है, केवल प्रेम ही अहंकारको जीत सकता है ।

१०१. चैत्य पुरुष यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि जब अंतरात्मा प्रगतिशील व्यक्तिगत रूप धारण करती है तो वह चैत्य पुरुष बन जाती है, क्योंकि अंतरात्मा अपने-आपमें परम पुरुषका भाग होनेके नाते अक्षर और नित्य है । चैत्य पुरुष प्रगतिशील और अमर है ।

आत्म-ज्ञान, आत्म-संयम और दमकी सभी पद्धतियां अच्छी हैं । जो तुम्हें सहज रूपसे आ जाय और जो तुम्हारी प्रकृतिके साथ मेल खाये उसीको चुन लो । एक बार पद्धति चुननेके बाद समझदारीसे ऐसे अचूक अध्यवसायके साथ उसका उपयोग करो जो कठिनाइयों और बाधाओंके आनेसे मुंह नहीं मोड़ता । यह एक लंबा और बारीक काम है जिसे सचाईके साथ शुरू करना और हमेशा बढ़ती हुई, अधिकाधिक कर्तव्य-निष्ठ और संपूर्ण सचाईके साथ जारी रखना चाहिये ।

साधारणतः सरल मार्ग हमें कहीं नहीं पहुंचाते ।

१०२. पूर्णता काममें तुम्हारा आदर्श पूर्णतासे जरा भी कम न हो । तुम निश्चित रूपसे भगवान्के सच्चे यंत्र बन सकोगे ।

१०३. अंतरात्माका मूल और उद्देश्य संप्रदायों और मतोंके अनुसार सिद्धांत भी अलग-अलग हैं और हर एक अपने प्रतिपादनके पक्षमें अच्छी युक्तियां देता है ।

और निश्चय ही हर प्रतिपादनमें कुछ सत्य है और हर स्थिति न केवल संभव है, बल्कि धरतीके इतिहासमें एक बार रह चुकी है ।

मैं सिर्फ अपने ही अनुभवके बारेमें कह सकती हूं । अंतरात्मा

दिव्य है, परम प्रभुका एक नित्य अंश है, इसलिये अपने सिवा और किसी विधानद्वारा उसे सीमित या बाधित नहीं किया जा सकता। इन अंतरात्माओंको भगवान् ने जगत् में अपना काम करनेके लिये प्रकट किया है और हर एक घरतीपर किसी विशेष उद्देश्यसे, किसी विशेष कार्यके लिये, किसी विशेष नियतिके साथ आती है और हर एक अपने साथ अपना ही विधान लाती है जो सिर्फ उसीके लिये अनिवार्य है और सामान्य विधान नहीं बन सकता।

तो स्पष्ट ही संभवनकी अनंततामें सभी कल्पनीय और अकल्पनीय उदाहरण मौजूद हैं।

१०४. निम्न प्रकृतिकी कुरूपता निम्न प्रकृतिकी कुरूपताओंको इस वहाने स्वीकार करना कि वे हैं, अगर यथार्थवादका यही मतलब है तो यह साधनाका भाग नहीं है। हमारा उद्देश्य इन्हें स्वीकार करना और इनमें मजा लेना नहीं है। हमारा उद्देश्य है इनसे पिंड छुड़ाना और आध्यात्मिक सुन्दरता और पूर्णताके जीवनकी सृष्टि करना। जबतक हम कुरूपताओंको स्वीकार करते रहेंगे तबतक यह नहीं हो सकता।

यह जानना कि वे हैं और उन्हें नकारना, उन्हें अपने-आपको छूने न देना एक बात है और उन्हें सकारना और उनके आगे झुक जाना बिल्कुल अलग बात है।

१०५. ऐथलेटिक प्रतियोगिताके लिये पहला होनेकी महत्वाकांक्षाके स्थानपर जितना हो सके अच्छे-से-अच्छा करनेकी इच्छाको बिठाओ।

(१९६२)

सफलताकी इच्छाकी जगह प्रगतिकी लालसाको रखो।

ख्यातिके लिये उत्सुकताके स्थानपर पूर्णताकी अभीप्सा रखो।

शारीरिक शिक्षण शरीरमें चेतना और संयम, अनुशासन और

प्रभुत्व लानेके लिये है, ये चीजें उत्तम और उच्चतर जीवनके लिये आवश्यक हैं।

यह सब मनमें रखो। सचाईके साथ अभ्यास करो और तुम एक अच्छे ऐथलीट (कसरती) बन जाओगे। यह सच्चे मनुष्य बननेकी ओर पहला कदम है।

१०६. सामूहिक काम जब हमें मिल-जुलकर काम करना हो तो हमेशा अपने विचारों, भावनाओं और क्रियाओंमें, असहमतिकी जगह सहमतिकी बातोंपर जोर दो।

हमें उन बातोंको महत्त्व देना चाहिये जो एकता लाती हैं और जहांतक हो सके उन बातोंकी उपेक्षा करनी चाहिये जो अलग करती हैं।

जब भौतिक रूपसे कामके रास्ते अलग-अलग हों तब भी एकता नित्य और अक्षुण्ण रह सकती है, यदि हम मिलानेवाले तात्त्विक विषयों और सिद्धांतोंकी ओर अपनी अभीप्सा और अपने कर्मोंके कभी न बदलनेवाले उद्देश्य, भागवत लक्ष्यकी उपलब्धि को याद रखें।

१०७. फोटोग्राफी आधुनिक फोटोग्राफी एक कला बन गयी है और अन्य कलाओंकी तरह प्रभावकारी रूपसे, सौंदर्यकी सच्ची भावनाके साथ आंतरिक भावनाओं और अंतरात्माको प्रकट कर सकती है।

१०८. नैतिकता साधारण चेतनाकी आवाज एक नैतिक आवाज है जो अच्छे और बुरेके बीच भेद करती है, हमें अच्छेकी ओर बढ़ाती है और बुरा करनेसे रोकती है। यह साधारण जीवनमें उस क्षणतक बहुत उपयोगी है जबतक कि व्यक्ति अपने चैत्य पुरुषसे सचेतन न हो जाय और पूरी तरहसे उसके मार्ग-दर्शनको स्वीकार न कर ले, अर्थात्, अपने-आपको सामान्य मानवतासे ऊपर उठाकर सारे अहंकारसे मुक्त होकर भागवत संकल्पका सचेतन यंत्र न बन जाय।

अंतरात्मा अपने-आप भगवान्का अंश होनेके कारण सब नैतिक धारणाओंसे ऊपर है। वह दिव्य ज्योतिमें स्नान करता और उसे अभिव्यक्त करता है, लेकिन सारी सत्तापर वह तभी शासन कर सकता है जब अहंकारको विलीन कर दिया जाय।

१०९. परम तादात्म्य परम तादात्म्यकी ओर तीन पग :

तुम्हारे पास जो कुछ है दे दो, यह आरंभ है।

तुम जो कुछ करते हो सब दे दो, यह मार्ग है।

तुम जो कुछ हो, सब दे दो, यह है पूर्ति।

११०. बड़े दिन पर

२५. १२. ६२ बड़े दिनका संदेश

सबको शुभ क्रिसमस।

नयी ज्योति तुम्हारे विचार और तुम्हारे जीवनको आलोकित करे : तुम्हारे हृदयपर शासन करे और तुम्हारे कार्यका मार्ग-दर्शन करे।

सबको आशीर्वाद।

१११. नववर्ष ६३ चलो, मागवत मुहूर्तके लिये तैयारी करें।

११२. छात्रावासके बड़े विद्यार्थियोंको यह दिन तुम्हारे लिये एक नये जीवनका आरंभ हो जिसमें तुम ज्यादा-से-ज्यादा अच्छी तरह यह जाननेकी कोशिश करो कि तुम यहां क्यों हो और तुमसे क्या आशा की जाती है।

हमेशा अपनी पूर्णतम और अधिक-से-अधिक सत्य-पूर्णताको उपलब्ध करनेकी अभीप्सामें जीओ।

और आरंभके लिये, अपने-आप अपने ऊपर लगाये गये कड़े अनु-शासनमें ईमानदार, सच्चे, सीधे, उदात्त और पवित्र बननेकी सावधानी रखो।

मैं तुम्हारी सहायता करने और तुम्हें मार्ग दिखानेके लिये हमेशा उपस्थित रहूंगी।

मेरे आशीर्वाद।

११३. आत्म-संयम अगर व्यक्ति अपने ऊपर संयम करने और अपने आवेशोंको वशमें रखनेका निश्चय कर ले, स्थिति ज्यादा स्पष्ट हो जायगी।

जब लोग अपनी निश्चेतनाको हो-हल्ले और अशांतिमें रहने देते हैं तो उनका सारा जीवन ही हो-हल्ला और अशांत बन जाता है।

११४. एकताके द्वारा विजय हम सब, जिनका आदर्श समान रूपसे ऊपर उठानेवाला है, एक होंगे और इस एकतामें और इस एकतासे अंधकार और सर्वनाशकी विरोधी शक्तियोंके आक्रमणोंका सामना करेंगे और उनपर विजय प्राप्त करेंगे। एकतामें ही बल है, एकतामें ही शक्ति है, एकतामें ही विजयकी निश्चिति है।

११५. बच्चोंके लिये प्रार्थना

आश्रमके बच्चोंके लिये एक प्रार्थना

प्रभो, हम तुझसे प्रार्थना करते हैं :

कि हम ज्यादा-से-ज्यादा अच्छी तरह यह समझ सकें कि हम यहां क्यों हैं;

कि हमें यहां जो करना है उसे ज्यादा अच्छी तरह कर सकें;

कि हमें यहां जो बनना चाहिये वह बन सकें।

ताकि तेरी इच्छा सामंजस्यके साथ पूरी हो सके।

११६. विश्वास, निश्चिति विश्वासके साथ हम आगे बढ़ेंगे ;
निश्चितिके साथ प्रतीक्षा करेंगे।

११७. आत्मदान यह कभी न कहो कि "मेरे पास भगवान्‌को देनेके लिये कुछ भी नहीं है।" हमेशा देनेके लिये कुछ तो होता ही है, तुम हमेशा अपने-आपको ज्यादा अच्छी और ज्यादा पूरी तरह दे सकते हो।

११८. प्रेम प्रेम लैंगिक संभोग नहीं है।

प्रेम प्राणिक आकर्षण और आदान-प्रदान नहीं है।

प्रेम अनुरागके लिये हृदयकी भूख नहीं है।

प्रेम सीधा एकमेवसे आता हुआ एक शक्तिशाली स्पंदन है और केवल बहुत पवित्र और बहुत बलवान ही उसे ग्रहण करने और अभिव्यक्त करनेके योग्य होते हैं।

पवित्र होनेका अर्थ है केवल परम प्रभुके प्रभावकी ओर खुला रहना, और किसीकी ओर नहीं।

११९. भगवान् यंत्र? भगवान् कोई सर्वशक्तिमान स्वचालित यंत्र नहीं है जिसे मनुष्य अपने संकल्पका बटन दबा कर चला सके।

फिर भी भगवान्‌को समर्पण करनेवालोंमेंसे अधिकतर ऐसी ही आशा करते हैं।

१२०. ऐथलेटिक प्रतियोगिता जो-जो अपने शरीरको दिव्य जीवनके योग्य बनाना चाहते हैं उनसे मैं कहूंगी कि इस ऐथलेटिक प्रतियोगिताके सुंदर अवसरको न खोओ और यह कभी न भूलो कि हम जो कुछ भी करें उसमें हमें पूर्णताके लिये अभीप्सा करनी चाहिये। पूर्णताकी यह अभिलाषा ही हमें सब कठिनाइयोंके बावजूद लक्ष्यतक ले जायेगी।

१२१. बच्चोंके चिकित्सालय जितने रोगी उतने ही उपचार।

चिकित्सामें सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है शरीरको उचित प्रतिक्रिया करना और रोगको नकारना सिखाना।

१२२. जीवनका सच्चा उद्देश्य जीवनका सच्चा उद्देश्य है :

भगवान्‌के लिये जीना या सत्यके लिये जीना या कम-से-कम अपनी अंतरात्माके लिये जीना ।

और सच्ची सचाई.....

भगवान्‌के लिये जीना, उनसे बदलेमें किसी प्रकारके लाभकी आशा किये बिना उनके लिये जीना ।

१२३. २. १२. ६३. का कार्यक्रम (इस दिन आश्रमका शारीरिक शिक्षण विभाग विद्यालयके जन्मोत्सवके उपलक्षमें एक विशेष समारोह करता है।) बात ठीक ऐसी ही है। कल मैं सारे समय, पूरी शक्ति और पूरी चेतनाके साथ तुम्हारी सहायता करने और तुम्हें संभालनेके लिये, तुम्हारे साथ थी। मुझे मालूम था कि वर्षा ऐसी परीक्षा थी जिसे पास करना जरूरी था।

तुमने विजयके भावके साथ ऐसा किया, और मैं इसके लिये बहुत खुश हूँ। सभीको मेरे पूर्ण संतोषके बारेमें बता दो।

मेरे आशीर्वाद साथ।

१२४. श्रीअरविंद सोसायटीका दूसरा अधिवेशन क्या तुम तैयार हो?

१२५. अभीप्सा मानव प्रकृतिके छिछलेपनसे छुटकर हम सचमुच जाननेवाले ज्ञानके लिये, सचमुच कर सकनेवाली शक्तिके लिये और सचमुच प्रेम करनेवाले प्रेमके लिये अभीप्सा करते हैं।

१२६. नेहरू नेहरूने अपना शरीर छोड़ दिया पर उनकी अंतरात्मा भारतकी चिरकाल जीनेवाली अंतरात्माके साथ एक हो गयी है।

(२७-५-६४)

सोसायटी समाचार

आश्रममें, माताजीकी जन्म-शताब्दीके उपलक्ष्यमें, दुर्गा-पूजा (१९-१०-७७), विजय दशमी (१२-१०-७७), लक्ष्मी-पूजा (२६-१०-७७) और काली पूजा (१०-११-७७) के दिन माताजीके विशेष चित्र बांटे गये।

श्रीअरविंद सोसायटीकी पूर्वीय प्रदेशीय शाखाओंकी सभा आसंसोल में २४ और २५ दिसंबरको होगी। इसके व्यवस्थापक सदस्योंके सहयोग, सुझावोंका खुशीसे स्वागत करेंगे। अधिक जानकारीके लिये निम्नलिखित पतेपर लिखिये : डा० जी. आर. मित्र, चेअरमैन, रिसेप्शन कमीटी, द मदर्स वर्थ सेंटिनरी कन्वेन्शन, ईस्टर्न जोन, जी. टी. रोड; आसंसोल, जिला वर्दवान (प. बं.)।

दाण्डेली (कर्नाटक) में ११ अक्तूबरको श्रीअरविंद और श्रीमां केंद्रने अपनी १२ वीं वर्षगांठ मनायी। डॉ० डी. आर. वेन्द्रे मुख्य अतिथि थे और उन्होंने माताजी तथा श्रीअरविंदकी रचनाओंके बारेमें भाषण दिया। श्री एन. के. कुलकर्णीने श्रीअरविंदके महाकाव्य 'सावित्री' पर भाषण दिया।

मेहदाबाद (जिला खेदा) में ८ से १२ अक्तूबरतक शिविर रहा। डा. गोविंद भाई पटेल जिला जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के कई स्कूल तथा कालेज देखने गये और माताजी तथा श्रीअरविंदके बारेमें वार्ताएं दीं। स्वास्थ्य और आंखोंकी देखभालके बारेमें भी भाषण दिया। नवंबर-दिसंबरमें वह वहीं रहेंगे, अगर उनसे संबन्ध स्थापित करना चाहें तो इस पतेपर लिखिये : द्वारा श्री चन्द्रकान्ता पटेल, श्रीअरविंद अभ्यास वर्तुल, गुरुकुल महिला आर्ट्स कालेज, क्वार्टर नं. ३२, पोरबन्दर-३६०५७६।

बंगलौरकी श्रीअरविंद सोसायटी शाखा साप्ताहिक कार्यक्रमकी व्यवस्था करती है। सितंबरमें इनके विषय थे : समर्पण, श्रद्धा, सत्य

और सावित्री । श्री रामचन्द्र राव (श्रीअरविंद मेमोरियल स्कूल, जयनगर के संस्कृत पंडित) ने वहां बृहस्पतिवारको संस्कृत पढ़ाना स्वीकार किया है । कक्षाएं आरंभ हो गयी हैं ।

श्री उद्दार्ने सितंबर ५ से ७ तक बंगलौरमें माताजीके बारेमें अपने संस्मरण सुनाये । स्कूल तथा कालेजोंमें 'सावित्री' पाठ किया ।

घोषणाएं :

अगर पिछले सालोंका चन्दा देना अभी बाकी है तो सदस्य उन्हें चुका दें और अपनी सदस्यताको जारी रखनेके लिये अगले सालका भी भेज दें । जो लोग बार-बारके वार्षिक नवीकरणसे बचना चाहते हैं वे २५१ रु. भेजकर आजीवन "डोनर मेम्बर" बन सकते हैं । और "डोनर कंट्रीब्यूटिंग मेंबरशिप" के लिये २५०० देने चाहिये । विभिन्न शाखाओं और केंद्रोंमें यह सूचित किया जाय । चिट्ठीमें अपनी सदस्यता संख्या लिखना न भूलें ।

स्कूल या कालेजमें पढ़नेवाला हर एक विद्यार्थी सोसायटीका 'विद्यार्थी सदस्य' बन सकता है । वह अपनी सुविधाके अनुसार चंदा भेज सकता है ।

१९७८ के लिये माताजीके रंगीन चित्र सहित कैलेंडर श्रीअरविंद आश्रम प्रेसमें छापे जा रहे हैं । इसी साल दिसंबरकी १५ तारीखके बाद बांटे जायेंगे । थोक आर्डर (कम-से-कम ५० प्रति) हो तो प्रत्येक कैलेंडरका मूल्य होगा १.५० । सेल्स टैक्स, पैकिंग और डाक-खर्च अतिरिक्त होगा । १०० से अधिक आर्डर्सके लिये भेजने-वालेका नाम मुफ्तमें छपा जायगा । जो सदस्य, शाखाएं और केंद्र ५० से ज्यादा कैलेंडर चाहते हैं वे निम्नलिखित पतेपर तुरंत लिखें : मैनेजर, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२ ।

एक कैलेंडरका दाम होगा २.५० (यानी, पैकिंग और डाकखर्च अतिरिक्त) । गत्तेमें बांधकर रजिस्टर्ड पोस्टसे भेजा जाय तो ३.२५ (शेष आवरण ३ पर)



बनका प्रयोजन धन कमाना नहीं है। धनका प्रयोजन नये सृजन-
के आगमनके लिये पृथिवीको तैयार करना है।

— श्रीमां

राहुल ट्रान्सपोर्ट प्रा. लिमिटेड

मुख्यालय
तखतमल इस्टेट,
अमरावती ४४४६०१
दूरभाष : २२३६

थाना बुकिंग

बंबई कार्यालय

एम. श्री. भाटिया कम्पाऊण्ड,
सवानी ट्रान्सपोर्टके निकट,
पूर्वी राष्ट्रपथ
दूरभाष : ५९६००७

१३२, परसेपोलिस
प्लॉट क्रं. १००
कफ परेड,
बंबई-४००००५

दूरभाष : २१६१०८ व ५२२१६५

‘अभीप्सा’ अखिल भारत पत्रिका मराठी भाषामें पढ़िये ।
संपर्क सूत्र — श्रीअरविन्द सोसायटी, २५-३०२ मोर्शी मार्ग,
अमरावती-४४४६०१



भगवत्कृपापर पूर्ण विश्वास और निर्भरता बनाये रखना ही,
अंतिम विश्लेषणमें, सर्वोत्तम बुद्धिमानी सिद्ध होता है।

— श्रीमाताजी



स्टार आटोमोबाईल सर्विसेज

पेट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर (उ. प्र.)

एवं

भारत आयल कौरियर्स

लक्ष्मणझूला मार्ग

ऋशिकेश-२४९२०१



और लगेंगे । कृपया आर्डर्स सीधा इस पतेपर भेजिये :
शब्द, पांडिचेरी-६०५००२ ।

केंद्रों, शाखाओं, कंट्रीव्यूटिंग सदस्यों और भारतसे बाहर रहनेवाले सदस्योंको जनवरीके आस-पास श्रीअरविंद सोसायटीसे एक कैलेंडर मुफ्त मिलेगा ।

ओरो पब्लिकेशन्स ३१.१.७८ तक निम्नलिखित प्रकाशनोंके लिये मूल्य कम कर रहे हैं :

(१) दि मदर औन ओरोवील (संकलन), पृ० १२२, मूल्य १५.०० ।

(२) वर्निंग ब्रेजियर (माताजीकी 'प्रार्थना और ध्यान' पुस्तकसे संकलन) पृ० २०, मूल्य १.५० ।

(३) मातृमंदिर कार्ड, मूल्य २.०० ।

ऊपर लिखित सेटका असली मूल्य है १८.५०, लेकिन अब डाक-खर्च सहित १५ रुपयेमें मिल जायगा । वी.पी.पी. द्वारा नहीं, मूल्य पेगगी भेजा जाना चाहिये ।

माताजीकी जन्म-शताब्दीके लिये कुछ सुझाव

मुख्य लक्ष्य :

(१) माताजीकी शताब्दीके योग्य बननेके लिये अभीप्सा और प्रार्थना करना । (२) आत्म-समर्पणके भावसे व्यक्तिगत और समष्टि-गत स्तरपर माताजी तथा श्रीअरविंदकी रचनाओंको पढ़कर जीवनमें उतारनेका सच्चा प्रयास करना । (३) माताजी और श्रीअरविंदके प्रति लोगोंमें जागरण उत्पन्न करना । (४) लोगोंमें, विशेष रूपसे युवा लोगोंमें माताजी और श्रीअरविंदका संदेश फैलाना । (५) सर्वांगीण शिक्षाकी नयी गतिका आरंभ करना । इन लक्ष्योंको चरितार्थ करनेके लिये कुछ सुझाव : (क) माताजी तथा श्रीअरविंदकी रचनाओंका पाठ और वादमें ध्यान, (ख) साधना शिविर, (ग) स्वाध्याय कार्यक्रम, (घ) माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षा-पद्धतिके बारेमें वाद-विवाद । इस सिलसिलेमें उन कालेज या विश्व-विद्यालयोंके साथ संपर्क स्थापित करना चाहिये जिन्हें यू. जी. सी. परिपत्र मिला है, (ङ) भाषण । (६) माताजी और श्रीअरविंदके उद्धरणोंको कार्डपर

077488

छपवाकर उन्हें बांटना। (स्कूलके बच्चोंको कार्डपर चित्र खींचनेके लिये प्रोत्साहन दिया जा सकता है।) (७) विभिन्न पत्रिकाओंमें माताजी और श्रीअरविंदकी रचनाएं नियमित रूपसे छपवाना। लेकिन इसके लिये कापीराइट विभागसे स्वीकृति लेना जरूरी है। (८) शैक्षिक संस्थाओंमें लेख लिखने तथा भाषण देनेकी प्रतियोगिता रखना। (९) स्लाइड तथा फिल्में दिखाना। (१०) प्रदर्शनियां। (११) माताजी तथा श्रीअरविंदकी लिखी किताबें बेचना। (१२) माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षापर आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करना। (१३) दूरदर्शन और रेडियो कार्यक्रमकी व्यवस्था करना। (१४) भारतकी समस्याओंका अध्ययन करके, उसकी आध्यात्मिक नियतिको दृष्टिमें रखकर उन्हें हल करनेका प्रयास करना। (१५) माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षापर आधारित संस्थाएं खोलना। (१६) संस्थाओंमें शारीरिक शिक्षा शुरू करना। (१७) माताजी और श्रीअरविंदने रोगके बारेमें जो कहा है उसके अनुसार स्वास्थ्यको बनाये रखना। (१८) संस्कृत भाषाके अध्ययनको प्रोत्साहन देना। (१९) कला, नृत्य, संगीत इत्यादिको प्रोत्साहन देना। (२०) फूलोंकी प्रदर्शनी रखना और माताजीने उनके जो प्रतीकात्मक अर्थ दिये हैं उनका प्रसार करना। (२१) सदस्योंकी संख्या बढ़ाना ताकि माताजी और श्रीअरविंदकी रचनाएं जगत्के कोने-कोनेमें फैलें। (२२) नए केंद्रोंका उद्घाटन। (२३) अपने कार्यमें उचित मनोवृत्ति अपनानेकी कोशिश करना। (२४) प्रतिदिन किसी-न-किसी तरह अपनी सेवा अर्पित करना। (२५) हर एक प्रदेशमें श्रीअरविंद भवनका निर्माण करना।

टिप्पणी : कृपया यह याद रखें कि इस शुभ अवधिमें जो कार्यक्रम हाथमें लिया जा रहा है वह शताब्दीके बाद भी चलता रहेगा।

चनेके

काओंमें

लेकिन

(८)

खना।

(११)

ताजी

प्रस्तुत

रना

तिम

रना

संस्थ

(१७)

नुसार

त्साहन

(२०)

क अर्थ

ताकि

कैले ।

मनो-

-किसी

अरविद

गयक्रम

गा ।

Com-ied
1999-2000

Digitized by eGangotri Foundation Chennai and eGangotri